शुष्क गोधन गोशाला (Dry Dairy)

एक लाभदायक उपक्रम

लेखन एवं संपादन

डॉ० राम स्वरूप सिंह चौहान

डॉ० बिजेंद्र नारायण शाही

भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड

एनआईएडब्ल्यू कैंपस, 42 माइल स्टोन, दिल्ली–आगरा हाईवे

एनएच–2, सीकरी बल्लभगढ़, फरीदाबाद–121 004

शुष्क गोधन गोशाला (Dry Dairy)

एक लाभदायक उपक्रम

लेखन एवं संपादनः
प्रो० राम स्वरूप सिंह चौहान
डॉ० बिजेंद्र नारायण शाही

भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड
एनआईएडब्ल्यू कैंपस, 42 माइल स्टोन, दिल्ली–आगरा हाईवे
एनएच–2, सीकरी बल्लभगढ़, फरीदाबाद–121 004

संकलनकर्ता:
प्रो० रामस्वरूप सिंह चौहान
डॉ० बिजेंद्र नारायण शाही

शुष्क गोधन गोशाला: एक लाभदायक उपक्रम

© 2021, भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड

सम्पादक / प्रकाशक, 2021

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस प्रकाशन का कोई भी भाग, इलेक्ट्रानिक, मैकेनिकल, फोटोकापी, रिकाडिग या अन्य किसी भी माध्यम द्वारा प्रकाशक / संपादक की पूर्व अनुमति के बिना प्रतिलिपि प्रस्तुत या संग्रहीत नहीं किया जा सकता है।

इस पत्रिका में सम्मिलित लेखों में व्यक्त विचार एवं तथ्य लेखकों के अपने है, सम्पादक मंण्डल से उनका कोई सम्बन्ध नहीं हैं।

उद्धरण: चौहान, रामस्वरूप सिंह एवं शाही, बिजेंद्र नारायण 2021। शुष्क गोधन गोशाला: एक लाभदायक उपक्रम। गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)। 1–120

प्रकाशन:

भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड
एनआईएडब्ल्यू कैंपस, 42 माइल स्टोन, दिल्ली–आगरा हाईवे
एनएच–2, सीकरी बल्लभगढ़, फरीदाबाद–121 004

मुद्रक:
बाइट्स एण्ड बाइट्स
मोबाइल: 94127 38797

अध्यक्ष की कलम से.....

शुष्क गोधन गोशाला की परिकल्पना उस गोवंश से है जो दूध नहीं देते। पशुपालक गोपालक ऐसे गोवश को वेराहारा छोड़ देते हैं। ऐसे गोवंश को भी रखकर उनसे लाभदायक स्थिति बनायी जा सकती है। शुष्क गोवंश से गोबर एवं गोमूत्र से अनेकानेक उपयोगी सामान तैयार किये जा सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तिका इसी प्रकार के एक प्रशिक्षण पर आधारित है जो गोपालकों, गोशाला प्रबन्धकों एवं कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। इस पुस्तिका में गोवंश की आवास व्यावस्था, चारा दाना व्यवस्था, रोगों की पहचान एवं निराकरण, पंचगव्य/गोपैथी के सामान तैयार करने आदि विषयों की सटीक जानकारी विषय विशेषज्ञों द्वारा प्रो० रामस्वरुप सिंह चौहान सदस्य भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड के नेतृत्व में दी गायी है।

उन सभी लेखों का संकलन कर एक पुस्तिका का स्वरुप दिया गाया है। मुझे आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तिका गोपालकों, गोशाला प्रबन्धकों, पंचगव्य/गोपैथी के कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। गोशालाओं को स्वावलम्बी बनाने तथा भारत को आत्मर्निभर बनाने की दिशा में यह एक मील का पत्थर बनेगी। मैं इस के लेखन एवं संकलन कर्ताओं के हृदय से धन्यवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि आगे भी इसी प्रकार अपना योगदान एवं सहयोग भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड को करते रहेगें।

अध्यक्ष
भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड

दो शब्द

गाय भारत जैसे कृषि प्रधान देश का मेरुदण्ड़ है। वह मूलधन हैं, ब्याज है और चक्रवृद्धि ब्याज भी है। गाय एक नैसर्गिक जैविक संयत्र है जिससे दूध रुपी अमृत मानव को मिलता है। परन्तु जो गाय दूध नहीं देती, वृद्ध हो जाती है या उन के बछडे, बैल, सॉड आदि का भी महत्व मानव जीवन में अतुलनीय हैं। इन गोवंश के गोमूत्र एवं गोबर का उपयोग कर विभित्र प्रकार के पदार्थ जैसे औषधियों, बायोगैस, बायोफर्टिलाइजर, बायोपैस्टरैपलेन्ट, घूप, हवन के लिए कप, मूर्तियाँ आदि अनेकानेक सामान तैयार किये जा सकते है। कृषि सम्बन्धी अनेक कार्या में बैलों का पुनः उपयोग करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। गोवंश की इसी महन्ता को देखते हुए शुष्क गोधन गोशाला (Dry Dairy) का विचार उत्पन्न हुआ। इसके लिए भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड ने एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन प्रो० रामस्वरुप सिंह चौहान सदस्य, भारतीय जीव–जन्तु कल्याण बोर्ड के नेतृत्व में किया गया है। प्रशिक्षण कार्यक्रम में जिन महानुभावों के व्याख्यान/प्रयोगात्मक कार्य हऐ है उन्हीं का संकलन कर पुस्तक का स्वरूप दिया गया है।

यह शुष्क गोधन गोशाला (Dry Dairy) परिकल्पना की तरफ एक कदम है आशा है इसका लाभ गोपालकों और गोशाला प्रबन्धको को मिलेगा। मैं इस पुस्तिका के लेखक/संम्पादक को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी इसी प्रकार भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड का सहयोग करते रहेंगे।

सचिव
भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड

प्राक्कथन

यह सर्वविदित है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां के लगभग 70 प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर हैं साथ ही यह कहना असंगत ना होगा की खेती का मूलाधार गोवंश ही है इतिहास साक्षी है कि जब तक भारत देश में गोवंश का विकास, संवर्धन तथा उसकी पूजा होती रही, तब तक हम विश्व में आर्थिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से विकास के सर्वोच्च शिखर पर आरुढ़ रहे। भारतीय गोवंश का प्राकृतिक खेती जैविक खेती में भी महत्वपूर्ण योगदान है। गोवंश के द्वारा प्रदत्त मुख्य अवयव बछड़े व बैल के अतिरिक्त गोबर व गोमूत्र भी हैं। गोबर एवं गोमूत्र के प्रयोग से विभिन्न प्रकार की औषधियां, प्राकृतिक खाद, घरेलू सामान, कलाकृतियां, प्राकृतिक कीट नियंत्रक आदि बनाये जाते हैं। शुष्क गोधन गौशाला (Dry Dairy) की परिकल्पना वस्तुतः गोवंश के इन्हीं गुणों के आधार पर की गयी।

वैज्ञानिक शोधों से पिछले 40 वर्षों से अधिक के समय से पता चला है कि देशी गोवंश का गोमूत्र शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाता है। केंसर नियंत्रण में कारगर है तथा एंटी इंफेक्शन, बायोएनहान्सर और शरीर को पुष्ट करने वाला है। और यह केवल शोध ही नहीं बल्कि इस क्षेत्र की सफलता की कथा (Success Story) भी है। जिनका समावेश इस पुस्तक में किया गया है। गोबर गोमूत्र से विभिन्न प्रकार के खाद, गैस, पूजा सामग्री आदि बनाने के बारे में भी जानकारी दी गई है। प्रस्तुत पुस्तक में गोवंश का आवास, चारा–दाना रोग एवं उनका निराकरण, पंचगव्य (गौपेथी), जहर मुक्त खेती आदि विषयों पर वैज्ञानिक जानकारी दी गयी है। जो गोपालकों, गोशाला प्रबंधकों, पंचगव्य विशेषज्ञों, विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगी। हमें आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि लोग गोवंश को बेसहारा छोड़ने की अपेक्षा अपने पास रखकर लाभदायक व्यवसाय के रूप में अपनाना प्रारंभ करेंगे। इस पुस्तक तथा इस विषय पर प्रशिक्षण के लिए भारतीय जीव जंतु कल्याण बोर्ड का हार्दिक आभार।

प्रो० रामस्वरूप सिंह चौहान
डॉ० बी०एन० शाही

विषय सूची

1.	प्रस्तावना–गौपालन का ऐतिहासिक महत्व एवं लाभ *रामस्वरूप सिंह चौहान*	1
2.	गोवंश की आवास व्यवस्था *बी०एन० शाही एवं रामस्वरूप सिंह चौहान*	6
3.	गोवंश की भारतीय नस्ले एवं उनकी विदेशी नस्लों से भिन्नता अन्तर *बी०एन० शाही एवं रामस्वरूप सिंह चौहान*	12
4.	गोवंश के मुख्य रोग एवं उनकी रोकथाम *रामस्वरूप सिंह चौहान*	16
5.	गो–वंश का चारा–दाना प्रबन्धन *बी०एन० शाही एवं रामस्वरूप सिंह चौहान*	33
6.	गोवंश में बीमारी की जाँच कब क्यों और कैसे करायें *रामस्वरूप सिंह चौहान*	44
7.	पंचगव्य पर अनुसंधान, पेटेन्टस एवं विकास *रामस्वरूप सिंह चौहान*	54
8.	गोपैथी (पंचगव्य) *रामस्वरूप सिंह चौहान*	65
9.	भारतीय गाय की कृषि, स्वास्थ्य एवं राष्ट्र विकास में उपयोगिता *रामस्वरूप सिंह चौहान*	76
10.	देसी गऊ वंश द्वारा जहर मुक्त समन्वय सजीव खेती *सुरेन्द्र कुमार चौहान*	89
11.	गोवंश के सामान्य रोग एवं उनकी रोकथाम *सन्दीप कुमार तलवार एवं रामस्वरूप सिंह चौहान*	106
12.	संन्दर्भ ग्रंथ	120

प्रस्तावना–गौपालन का ऐतिहासिक महत्व एवं लाभ

रामस्वरूप सिंह चौहान
प्राध्यापक एंव विभागाध्यक्ष पशु विकृति विज्ञान विभाग
पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)

गौ भारत की राष्ट्रीय समृद्धि और सम्पदा की विशिष्ट प्रतीक रही है। तपोवन संस्कृति की यह महत्वपूर्ण अंग थी। ग्रहस्थों की ही नहीं वरन् आश्रम में रहने वाले ऋषियों की समृद्धि का परिचय भी उनके यहाँ रहने वाली गौओं की संख्या से मिलता है। वेदों, उपनिषदों तथा अनेकानेक प्राचीन शास्त्रों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनमें राजा शास्त्रार्थ में विजयी ऋषियों को अनेक सोने से मढ़ी सीगों वाली गायें देने की घोषणा करते थे। प्राचीन कालीन आर्युवेद के ज्ञाता महर्षि च्यवन के शब्दों में गायें मनुष्यों को अन्न और देवताओं को उत्तम हविष्य देती हैं। इनमें लक्ष्मी का वास है। महाभारत काल में गोसम्पदा को कितना महत्व दिया जाता था यह इसी से सिद्ध होता है कि चतुर्थ पाण्डव सहदेव गोपालन, गो रोग निवारण तथा गो प्रबन्धन में विशेषज्ञ थे। महाभारत में अज्ञातवास के दौरान सहदेव राजा विराट को परिचय देते हुए बतलाते हैं कि वे गौओं की गणना, विषाल संख्या, वर्गीकरण, देखभाल की व्यवस्था के विशेषज्ञ हैं। महाराज युधिष्ठर के पास गौओं के आठ लाख वर्ग थे व प्रत्येक वर्ग में 100–100 गायें थी। इससे भिन्न प्रकार की दूसरी गायों के एक लाख वर्ग तथा तीसरे प्रकार की गायों के दो लाख वर्ग थे। सहदेव गायों की संख्या बढाने तथा उनके रोग निराकरण के विशेषज्ञ माने जाते हैं। उस समय गोलक्षण तथा संरक्षण विज्ञान अत्यंत विकसित था तथा बडे–बडे राजाओं के यहाँ इसकी विशेष व्यवस्था थी। महाभारत कालीन विराट की गोहरण का आख्यान गोसम्पदा के महत्व तथा गोरक्षण व्यवस्था का सटीक ऐतिहासिक प्रमाण है।

धर्म शास्त्र तो गोधन की महानता और पवित्रता का वर्णन करता ही है किन्तु भारतीय अर्थशास्त्र में भी गोपालन का विशेष महत्व है। कोटिलीय अर्थशास्त्र में गोपालन और गोरक्षण का विस्तृत विवरण मिलता है जिस भूमि में खेती न होती हो उसे गोचर बनाने का आदेश अर्थशास्त्र का ही है। इस प्रकार गोधन "अर्थ' तथा "धर्म' दोनों का प्रबल पोषक है। धर्म और संस्कृति का प्रतीक होने के साथ–साथ गाय भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था का भी मेरूदण्ड है। देश में सदैव से गोधन को ही धन माना जाता रहा है। प्राचीन काल में किसी भी वस्तु का मूल्याकंन गौ के द्वारा ही होता था। हमारे यहाँ गौपालन पश्चिमी देशों की भाँति केवल दूध और माँस के लिए नहीं होता। अमृत तुल्य दूध के अतिरिक्त खेत जोतने एवं भार ढोने के लिए बैल तथा भूमि की उर्वरता बनाये रखने के लिए उत्तम खाद भी हमें गाय से ही प्राप्त होती है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही सन् 1929 में भारतीय कृषि रॉयल कमीशन ने लिखा था कि ***"गाय व बैल अपनी सुदृढ़ पीठ पर हमारी अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण भार उठाये हुए हैं"***।

वैदिक काल में खेती बैलों पर ही निर्भर थी। हल खींचने के लिए चार, छः, आठ, बारह या चौबीस बैलों की आवश्यकता पड़ती थी जो हल के आकार के अनुसार निश्चित की जाती थी। उस समय में गाय विक्रय के कार्य के लिए भी प्रयुक्त होती थी व विनिमय

का मुख्य माध्यम गाय ही थी। गाय के बदले वस्तुऐं खरीदी व बेची जाती थीं। गायों के कान छेदे जाते थे व उनमें स्याही से चिन्हित करने की प्रथा थी जो आज भी देखने को मिलती है।

नब्बे के दशक में भारत सरकार के कृषि मंत्री रहे डा० बलराम जाखड के अनुसार "गोवंश आधारित डेरी भैंस की तुलना में अधिक लाभदायक है"। गोवंश ऊर्जा का अनन्त स्रोत है। पैट्रोल/डीजल व मिट्टी के तेल के भंडार 20–25 वर्षों में समाप्त हो सकते हैं जबकि गाय से प्राप्त ऊर्जा अनन्त है जो सतत् उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त खाद से भूमि का संरक्षण भी होता है। गोबर की खाद धरती का प्राकृतिक आधार है। इससे धरती की उर्वरा शक्ति बनी रहती है। गाय के गोबर में कितनी विलक्षण शक्ति है। इसका अनुसंधान देश विदेश में किया गया। गाय के गोबर का लेप मकानों के बाहर दीवालों और छतों पर कर देने से विकिरण की किरणें मकान में प्रवेश नहीं कर सकती। गाय के घी के हवन करने से प्रत्येक प्रकार के हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। गोमूत्र खेती व मानव चिकित्सा के लिए उपयोगी है। इसमें बहुत उत्तम कीटाणुनाशक शक्ति है। गोमाता एक आश्चर्यजनक रसायन शाला है (The Ccow is a wonderful laboratory)।

कुमाँऊ में पंचगव्य तथा पंचामृत का धार्मिक जीवन में तो महत्वपूर्ण स्थान है ही मगर प्रत्येक घर के आँगन में एक सुरक्षित स्थान पर एक बर्तन में गोमूत्र रखा जाता है। कहीं बाहर से घर में प्रवेश करने से पूर्व गोमूत्र छिड़कना तथा उसका पान करना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक समझा जाता था। गोबर तथा पीली मिट्टी से पूरे घर को लीप कर शुद्ध किया जाता है।

भारत में पशुपालन अनादिकाल से एक मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता रहा है। भारत का विषाल गोवशं इस बात का द्योतक है कि देश का इसके प्रति भावनात्मक, धार्मिक तथा आर्थिक लगाव है। पशुपालन एक तेजी से उन्नत होता हुआ व्यवसाय है जो लगभग 8 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराता है जिसमें मुख्य रूप से गरीब, सीमांत कृषक, महिलाऐं तथा युवा वर्ग शामिल हैं। विश्व जनसंख्या का 28 प्रतिशत पशु भारत में मिलता है जिसमें मुख्य रूप से 20 करोड़ गो वंशीय पशु है। आज भारत विश्व में सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश बन गया है। अधिकांश पशु छोटे–छोटे किसानों या भूमिहीन महदूरों द्वारा पाले जा रहे हैं। देश की ग्रामीण आबादी में से 73 प्रतिशत ग्रामीण घरों में पशु पाले जाते हैं। देश की कृषि अर्थव्यवस्था में 33.25 प्रतिशत से अधिक का योगदान पशुपालन से होता है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान मात्र 3.4 प्रतिशत रहा जबकि पशुपालन से यह 9.2 प्रतिशत हुआ। वर्ष 2018-19 में पशुपालन से लगभग दोगुनी वृद्धि दर प्रतिवर्ष देखी गयी। यह ऐसी परिस्थितियों में भी रहा जबकि खर्चों में कृषि के मुकाबले पशुपालन को काफी कम पैसा दिया गया।

हमारे देश में गो वंश की 50 नस्लें हैं जिनकी उपयोगिता दूध तथा भार ढोने के रूप में प्राचीन काल से ही सिद्ध हो चुकी है। मगर दुर्भाग्य यह रहा कि पिछले 60 वर्षो में संकरीकरण के अंधाधुंध प्रयोग से हम अपनी अच्छी नस्ल की गायों को ही खोते चले गये। संकरीकरण का मुख्य उद्देश्य था कि नॉन डिसक्रिप्ट गायें (जो गायें किसी प्रजाति में शामिल नहीं हैं) को विदेशी नस्ल के साँडों के वीर्य से गाभिन कराकर उनका उच्चीकरण किया जाय तथा अपनी देशी प्रजातियों को चयन विधि द्वारा उनसे अधिक उत्पादन लिया जाय। मगर बिना किसी उचित नीति के सभी किस्म के गोवंश का संकरीकरण कर हम

अपनी अच्छी प्रजातियों को खोने के कगार पर हैं। अब समझ आ रहा है कि संकरीकरण पूर्णतया फेल हो चुका है। संकर गाय में यदि विदेशी नस्ल का भाग 62.5 प्रतिशत तथा देशी का भाग 37.5 प्रतिशत रहता है तब तक तो उनका उत्पादन ठीक रहता है। मगर यह काफी लम्बे समय तक कई पीढ़ियों में कायम रखना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। ऐसी कई रिपोर्ट हैं कि यदि संकर पशु में विदेशी नस्त का 75 प्रतिशत या इससे अधिक हिस्सा हो जाय तो उन जानवरों में मृत्युदर काफी बढ़ जाती है तथा ऐसे पशु हमारे यहाँ के वातावरण में जीवित नहीं रह पाते एवं उनमें कई प्रकार की समस्याऐं जैसे बांझपन, देर से बच्चा पैदा होना, नवजात पशुओं में मृत्युदर अधिक होना तथा दूध का उत्पादन कम होना आदि शुरू हो जाती हैं। भारतीय मूल की गाय की कई प्रजातियाँ विदेशों में अच्छा उत्पादन दे रही हैं। देश में कई परियोजनाएँ शुद्ध नस्लों को बनाये रखने व उनमें सुधार के लिए शुरू की गयी हैं, उनमें आशा जनक परिणाम आने की अपेक्षा है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के एक अनुमान के अनुसार हमें 2.5 प्रतिशत की दर से दूध का उत्पादन प्रतिवर्ष बढ़ाना होगा तथा उसे सतत् बनाये रखना होगा। जो भारतीय गोवंश के उचित विकास पर ही निर्भर करेगा।

अतः अब ऐसे उपायों की आवश्यकता है कि जिसमें भारतीय मूल के गोवंश के संवर्धन के लिए उचित कदम उठाये जायें। क्योंकि गोवशं के बिना हमारी जीवन पद्धति या कृषि व्यवसाय दोनों ही अधूरे रह जायेंगे। बैलों से खेती करने पर खेत में मूत्र तथा गोबर भूमि की उर्वरता बढ़ाते हैं जबकि ट्रैक्टर आधारित खेती में प्रदूषण बढ़ता है क्योंकि धुँए में सीसे (लैड) की मात्रा मिट्टी को प्रदूषित करती है। आज यह स्थिति है कि हमारी कृषि में रासायनिक खादों व कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के कारण इनके अवशेष प्रत्येक कृषि उत्पाद में मिलने लगे हैं। जो मानव जीवन के लिए एक गम्भीर खतरा है।

पाश्चात्य देशों में भी यह भूल स्वीकारी गयी है। वहाँ भी कीटनाशकों व रासायनिक खादों का प्रयोग कम करने व जैव आधारित उपाय अधिक प्रयोग करने पर जोर देने लगे हैं। क्योंकि उनके यहाँ इनके हानिकारक प्रभाव सामने आने लगे हैं। मगर उनकी व्यापारिक चालाकी के कारण वही कीटनाशक या रसायन हमारे देश में आयात कर प्रयोग किये जा रहे हैं। यदि गोवंश को बढ़ावा मिले और हम गोबर आधारित खाद का प्रयोग करें तो हमारी खेती भी खराब नहीं होगी व हमें पर्याप्त मात्रा में आमदनी भी होगी क्योंकि गोबर की खाद जमींन में 2–3 वर्ष तक अपना असर दिखाती है। इससे प्रदूषण नाम मात्र को भी नहीं होता है। भूमि की उर्वरा शक्ति के साथ–साथ उसकी जलधारण क्षमता तथा बनावट भी सुधरती है। इससे ह्यूमस तथा सूक्ष्म तत्व भी मिलते हैं। यदि गोबर का प्रयोग बायोगैस के रूप में किया जाये तो ईंधन व गैस दोनों मिलते हैं।

गोवंशों से प्राप्त गोबर का प्रयोग 80–90 प्रतिशत जनता ईंधन के रूप में करती है। इसके कण्डे/उपले बनाकर उन्हें जलाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। गोबर की राख का उपयोग कीटनाशक के रूप में किया जाता है। अतः गाय की उपयोगिता मानव समाज के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसीलिए हमारे हिन्दू समाज में इसे माता मानकर गाय की पूजा की है। महाभारत के अनु. 145 में कहा गया है कि

"लोकान् सिसृक्षणा पूर्व गावः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
वृत्यर्थ सर्वभूतानां तस्मात् ता मातरः स्मृता।।"

अर्थात् गो–माता मातृशक्ति की साक्षात प्रतिमा है जिस दिन विश्व में गायें नहीं रहेंगी, उस दिन विश्व मातृशक्ति से विमुक्त हो जायेगा और उस दशा में कोई प्राणी नहीं बचेगा। सच तो यह है कि दिखने में भले ही उपरोक्त बातें अविश्वसनीय सी लगती हों मगर ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि ब्रिटेन में गायों को दूध उत्पादन के साथ–साथ माँस के लिए भी पाला गया। गोमांस क्रिश्चयन या मुस्लिम समुदाय खाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में देखा गया कि ब्रिटेन के मनुष्यों में ऐसे रोग लगने शुरू हो गये जिनका सीधा सम्बन्ध गोमांस खाने से था। इन रोगों का कोई कारगर इलाज व बचाव भी नहीं था। अतः वहाँ के लोगों ने गोमांस खाना भी छोड़ा है। विदेशों में, विशेष रूप से अमेरिका में प्रयोगशाला में संश्लेशित तकनीक से बनाया हुआ "बोवाइन ग्रोथ हार्मोन" (बी.जी.एच.) प्रयोग किया जाता है। ताकि गायों से अधिक दूध उत्पादन लिया जा सके। यद्यपि इस हार्मोन से दूध का उत्पादन 20 प्रतिशत बढ़ जाता है। परन्तु यह हार्मोन मानव व गाय दोनों के लिए घातक हैं। इस हार्मोन के कारण मनुष्य में कैन्सर तथा अन्य रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। ऐसा पता चला है कि इस हार्मोन को हमारे देश में भी प्रयोग किया जा रहा है जो बहुत ही घातक है। इसे बन्द किया जाना चाहिए। इसके अलावा हमारे यहाँ पशुओं से दूध निकालने के लिए ऑक्सीटॉसिन नामक हार्मोन का टीका पशुओं में धडल्ले से लगाया जा रहा है। इस हार्मोन के अंश दूध में भी आते हैं व ये मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव यथा नपुंसकता, बच्चे न होना, प्रजनन अंगों के रोग आदि डालता है। अतः इसका प्रयोग रोकने की आवश्यकता है। दूसरे हमारे देश में संकरीकरण करके गायों से अधिक दूध उत्पादन लेने की कोशिश शुरू हुई। जिसके घातक परिणाम अब सामने आने लगे हैं।

हालाँकि यह देखा गया है कि भारतीय मूल की गायें कम दूध देती हैं। मगर हम यदि कुछ नस्लों को देखें तो पाते हैं यदि इनका समुचित वैज्ञानिक रीति से प्रजनीकरण किया जाय तो ये गायें संकर व विदेशी नस्ल की गायों से अधिक दूध दे सकती हैं। हमारे यहाँ की साहीवाल गाय को लेकर आस्ट्रलिया में "आट्रेलियन मिल्किंग जेबू" गाय का विकास किया है जो दूध उत्पादन में काफी अच्छी पायी गई है। इसी प्रकार ब्राजील में भारतीय मूल की गायों ने अच्छा उत्पादन किया है। फिर क्यों नहीं हमारे देश में अपनी नस्लों को सुधार कर उनका उत्पादन बढ़ाया जाता है? हमारे वैज्ञानिकों की सोच विदेशी वैज्ञानिक सोच पर आधारित होकर रह गयी है। क्योंकि उनमें अभी भी विदेशों में जाना व वहाँ काम करना अधिक भाता है या विदेशी पत्र–पत्रिकाओं में लेख छापकर अपनी योग्यता देश में व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सिद्ध करनी होती है। अतः उनका सारा ध्यान समुचित प्रोत्साहन के अभाव में इन्हीं सब में लगा रहता है। अपनी देशी गायें जैसे साहीवाल, गिर, देवनी या लाल सिन्धी गायों का विकास दूध उत्पादन के लिए किया जाय तथा भारवाही नस्लों के उत्पादन के लिए नागौरी, अमृतमहल व खिलारी को सुधारा जाय। गाय की कुछ नस्लें ऐसी भी हैं जिनसे दोनों फायदे लिये जा सकते हैं उनमें हरियाणा, थारपारकर, राठी, कांकरेज शामिल है। ये नस्लें दूध व अच्छे बैलों के लिए प्रसिद्ध हैं तथा इनमें प्राकृतिक गर्भाधान के माध्यम से ही प्रजनन किया जाय क्योंकि कृत्रिम गर्भाधान के भी घातक परिणाम सामने आ रहे हैं।

आधुनिकता की दौड़ व पाश्चात्य की चकाचौंध में हम अपनी प्राचीन संस्कृति को भूल बैठे हैं। भगवान कृष्ण गो–पालक के रूप में प्रसिद्धि पायें। गो सेवा का उदाहरण कृष्ण जीवन से अच्छा और कहाँ मिलेगा। उन्होंने ग्वाले के रूप में गो सेवा की व गो दूध, दही,

मक्खन को मानव शक्ति के विकास के लिए प्रयोग किया। जब गायों की संख्या अधिक रहेगी तो उनका मूत्र/गोबर भी अधिक होगा जो भूमि को उपजाऊ बनायेगा। गौ की पूजा हम लोग करते आये हैं क्योंकि इसका मूत्र तक औषधि में प्रयोग होता है। गाय का प्रत्येक उत्पाद मानव के लिए एक उपयोगी वस्तु है। यहाँ तक कि मृत्यु के पश्चात् भी गाय की चमड़ी, हड्डी भी उपयोगी सिद्ध होती है।

भारत के बदलते परिवेश में गौ पालन और अधिक महत्वपूर्ण बनता जा रहा है क्योंकि बढ़ती जनसंख्या के कारण जमीन का बँटवारा हो रहा है व यह छोटे–छोटे टुकड़ों में बँटी जा रही है। जिसमें ट्रैक्टर से कृषि कार्य करना असम्भव रहेगा। वहाँ पर बैल आधारित कृषि व्यवस्था ही अपनाना पड़ेगी। कम जमीन के रहते पशुपालन/गौ पालन ही मुख्य व्यवसाय रह जाता है जिससे खेतीहर मजदूर/छोटे किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं। कम उत्पादन वाली या जो गायें दूध की दृष्टि से अनुपयोगी हो गयी हों उन्हें गौ सेवा सदन/गौशालाओं में रखा जा सकता है। जहाँ उनसे पंचगव्य आधारित आयुर्वेदिक दवाओं का उत्पादन किया जा सकता है। जिससे आय भी अधिक होगी, मानव स्वास्थ्य भी ठीक होगा व हमारी रसायन आधारित चिकित्सा प्रणाली पर निर्भरता भी कम हो जायेगी। वैसे भी एन्टीबायोटिक दवाओं का प्रभाव घटने लगा है तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सन् 2025 तक ये दवाऐं अपना असर खो देंगी। ऐसे में आयुर्वेदिक आधारित दवाऐं ही रोगों के नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी। हमारे देश में 57 प्रतिशत भूमि पर खेती होती है बाकी जमीन बेकार पड़ी है जिसका उपयोग चारागाह के लिए किया जा सकता है।

गौ पालन के फायदे

1. गौ पालन से जहाँ व्यक्ति अपने परिवार के लिए पोषक खाद्य जुटा लेता है वहीं दूध व इससे बने पदार्थ जैसे दही, मक्खन तथा घी बेचकर आमदनी भी कर लेता है व जमीन के लिए खाद भी बन जाती है।
2. कीटनाशकों व रासायनिक खादों का प्रयोग कम होने से खाने पीने की चीजों में पर्यावरण प्रदूषण कम हो जायेगा।
3. गौ दुग्ध तथा गौ मूत्र कई बीमारियों में लाभदायक रहता है।
4. दूध सुपाच्य होता है व उसमें उपस्थित विटामिन व अन्य अवयव रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाते हैं।
5. गोबर विकिरण रोधी है। इसका उपयोग घरों के लेपन में प्रयोग होता है जहाँ इसका विकिरण प्रतिरोधी प्रभाव देखा गया है। यह जापान के हिरोशिमा व नागासाकी नगरों में भी सिद्ध हो चुकी है। भारत पर अणु बम का खतरा मडंरा रहा है, ऐसे में गोवंश से प्राप्त गोबर से दीवारें लेप कर विकिरण से बचने का एक सुगम, सस्ता व अच्छा उपाय और कोई नहीं हो सकता।
6. पशु पालन व कृषि एक दूसरे के पूरक हैं। कृषि उत्पाद पशुओं का भोज्य है तो गोबर कृषि उत्पादन बढ़ाने में काम आता है।
7. गौ पालन को बढ़ावा देने के लिए जहाँ स्वयं सेवी संस्थायें व आम जनता आगे आये व उचित कदम उठाये, वहीं जरूरी है कि सरकार की तरफ से भी इसे प्रोत्साहित किया जाय।

गोवंश की आवास व्यवस्था

बी०एन० शाही एवं रामस्वरूप सिंह चौहान
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)

प्राचीन काल में पशु जंगलों में घास एवं पत्तियॉ खाकर अपना जीवन निर्वाह करते थे, परन्तु जब से मनुष्यों द्वारा उन्हे पालना प्रारम्भ किया गया, पशुओं को विपरीत मौसम के प्रभाव (गर्मी, सीर्दी एवं बरसात इत्यादि) से बचाने हेतु पशुशालाओं के निर्माण पर ध्यान दिया जाने लगा। एक उत्तम डेरी के प्रबन्धन हेतु गौशाला का निर्माण वैज्ञानिक तरीके से किया जाना काफी महत्वपूर्ण है जिससे कि गौपशुओं को मौसम के कुप्रभाव से बचाया जा सके एवं गौपालन को और अधिक लाभकारी बनाया जा सके। अच्छी आवास व्यवस्था एवं सुप्रबन्धन से निम्नलिखित लाभ होता हैः–

- गोपशुओं के दुग्ध एवं अन्य उत्पादन में वृद्धि होता है।
- गोपशुओं पर होने वाला श्रमिकों का व्यय कम होता है तथा मृत्युदर से गिरावट आती है।
- गोपशुओं में होने वाली बीमारियॉ अच्छी व्यवस्था के कारण कम होती है तथा गोवंश स्वस्थ एवं हष्ट–पुष्ट दिखते हैं।
- पशुओं को देखभाल ठीक होती है एवं उन्हे चारा–दाना इत्यादि देने में सुविधा रहती है।

गोषाला भवनों का स्थान निर्धारणः गोशाला भवनों का निर्माण सदैव ऐसे स्थान पर होना चाहिए जो हर दृष्टिकोण से उपयुक्त हो तथा श्रमिकों की कार्य क्षमता बढाने में सहायक हो। गोशाला डेयरी के निर्माण हेतु निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

भूमि एवं स्थान वरणः डेयरी भवनो का निर्माण हेतु कभी भी उर्वरा भूमि को नही चुनना चाहिये। साथ ही भवन ऊॅचे स्थान पर बनाना चाहिऐ ताकि वर्षा का पानी सुगमता से निकल सके।

आवागमनः गोशाला का निर्माण मुख्य मार्ग के समीप होना चाहिये ताकि दुग्ध एवं अन्य उत्पादों को सरलता से बाजार तक पहूँचाया जा सके तथा अन्य आवश्यक सामग्री डेयरी पर सुगमता से लाई जा सके। इसके अतिरिक्त श्रमिकों की सुगमता का भी ख्याल रखना चाहिए।

तेज हवाओं एवं सूर्य की किरणों से बचावः गोशाला का निर्माण इस प्रकार से होना चाहिये कि उत्तर दिशा से अधिक से अधिक एवं दक्षिण दिशा से कम से कम सूर्य की धूप प्राप्त हो।

पानी एवं विद्युत आपूर्तिः गोशाला भवनों में सदैव स्वच्छ, ताजा एवं भरपूर पानी सगुमता से उपलब्ध होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्युत आपूर्ति की निरन्तरता अत्यन्त आवश्यक है।

गौशाला का तापमानः सामान्यतः 20–25 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान पर गायें अच्छे रहन–सहन के साथ अच्छा उत्पादन भी देती हैं। देशी नस्लों की गायें तो अधिक तापमान भी सहन कर लेती हैं मगर संकर/विदेशी नस्ल की गायों का उत्पादन तो तापमान बढने पर तुरन्त कम हो जाता है और वे बीमार भी हो जाती हैं। अतः यह अति आवश्यक है कि गौशालाओं

का तापमान अधिक नहीं रहना चाहिए। इसके लिए अच्छे आवास की व्यवस्था होनी आवश्यक है। यदि स्थान खुला है तो वहां वृक्ष होने चाहिए जिनकी छाया में गायें रह सकें। अन्यथा छप्पर/एसबैस्टस/पक्की छत से ढका आवास बनवाना चाहिए।

गौशाला में वायुः गायों को शुद्ध वायु मिलना अत्यन्त आवश्यक है। सामान्यतः यह सुनिश्चित कर लें कि गौशाला में प्रवेश करते समय दम न घुटे व सांस लेने में तकलीफ न हो। गौशालायें प्रायः हवादार या खुली हुई होती हैं। फिर भी इस बात का ध्यान रखें कि गोबर व मूत्र की सफाई समय–समय पर होती रहे जिससे वातावरण में खराब गैस एकत्रित न होने पायें व गायों को स्वच्छ हवा मिलती रहे। जाड़ों इत्यादि में जब गायें बन्द कमरों में रखी जाती हैं तो उनमें रोशनदान व खिड़की का खुला होना आवश्यक है अन्यथा अन्दर स्वच्छ हवा नहीं जा पायेगी।

गौशाला में प्रकाश व्यवस्थाः गौशाला में प्रकाश की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक गाय को पर्याप्त प्रकाश मिले। यदि कमरे बन्द हैं तो रोशनदान, खिडकी, दरवाजे ऐसे हों जिनसे धूप व प्रकाश अन्दर आता रहे। सबसे अच्छा तो यह रहता है कि गौशाला में छाया व प्रकाश (खुला स्थान) बराबर हो ताकि गायें कभी छाया में अन्दर व कभी बाहर खुले स्थान में रह सकें। प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था होने पर उस स्थान की स्वच्छता भी बनी रहती है। पर्याप्त प्रकाश के अभाव में कई बार गाय चारा–दाना भी ठीक से नहीं खा पाती है। जंगली पशुओं से बचाव हेतु उपाय किया जाना चाहिये।

पषुषाला मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैः–

(क) पषुषाला विधि (Animal Shed System): इसके अन्तर्गत गोपशुओं को शेड में रखा जाता है एवं वही उन्हे चारा–दाना इत्यादि खिलाया जाता है तथा साथ ही उनके दुग्ध निकालने की व्यवस्था भी उसी शेड में की जाती है। इसी शेड में गोपशुओं को चारा एवं पानी के नाद का भी प्रबन्ध किया जाता है।

पशुशालाऐं मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं, प्रथम एक लाईन वाली तथा द्वितीय दो लाईनों वाली। यदि पशुओं की संख्या 12 या उससे कम हो तो एक लाईन वाली पशुशाला बनया जाना उचित होता है। पशुओं की संख्या अधिक होने पर दो लाईनों वाली पशुशाला बनाना चाहिए। दो लाईनों वाली पशुशालाऐं भी दो प्रकार की होती हैं।

i- **मँह से मँह विधिः** इसमें पशु एक दूसरे की ओर मँह करके बॉधे जाते हैं।

ii- **पँछ से पँछ विधिः** इस विधि में पशुओं का मँह बाहर की ओर एवं पूछ आमने सामने होती है। यह विधि मँह से मँह विधि से अधिक उपयुक्त मानी जाती है।

(ख) पषु एवं दुग्धषाला विधि (CattleAnd Milking Shed): इनके अन्तर्गत पशुशाला एवं दुग्धशाला हेतु दो अलग–अलग कक्ष होते है। दुग्धशाला में पशुओं को केवल दुग्ध निकालते समय लाया जाता है तथा दुग्ध निकलाते समय उन्हे भीगा हुआ संतुलित दाना दिया जाता है। दुग्ध निकलाने के उपरान्त पशुओं को पुनः उनके पशुशाला शेड में पहँचा दिया जाता है जिसमें वह अपना चारा–पानी इत्यादि ले सके।

(ग) खुले बाड़ों में रखना (Open Shed System): इस विधि के अन्तर्गत गोपशुओं को अपने बाड़े में खुला ही रखा जाता है। गोपशुओं को चारा एवं पानी भी बाड़ों में खुला ही रखा जाता है। गोपशुओं को चारा एवं पानी भी बाड़ों में दिया जाता है। केवल दुहान के समय

गोपशुओं को बॉधकर दुग्धशाला में दुग्ध निकाला जाता है। यह विधि उन गोशालाओं के लिये उपयोगी है जिनमें गोपशुओं की संख्या अधिक होती है। इससे रखरखाव पर कम खर्च आता है।

खुले बाड़े में प्रति पषु स्थान (वर्ग):

पषु	ढकी जगह	खुली जगह	चारा नॉद की लम्बाई (इन्चों में)
गाय	20–30	80–100	20–24
भैस	25–35	80–100	24–30
बच्चे	15–20	50–60	15–20
ग्याभित पशु	100–120	180–200	24–30
सांड	120–140	200–250	24–30

गोषाला निर्माण हेतु सामान्य बातें:–

गोशाला की छत यदि सम्भव हो तो एस्बैस्टस के चादरों की बनानी चाहिये। किनारों पर छत की ऊॅचाई 3.3–3.6 मीटर (11–12 फुट) एवं मध्य की ऊॅचाई 5 मीटर (15.3 फुट) होनी चाहिये।

गोशाला में औसत नाँद की माप निम्न प्रकार होनी चाहिये

नॉद की लम्बाई	1.15 मीटर (3 फुट 10 इंच)
नॉद की चौड़ाई	0.75 मीटर (2 फुट 6 इंच)
दीवार की चौड़ाई	0.13 मीटर (5 इंच)
नॉद की भीतरी दीवार की ऊॅचाई	0.25 मीटर (9 इंच)
नॉद के भीतरी दीवार की चौड़ाई	0.65 मीटर (2 फुट 2 इंच)
नॉद के भीतरी दीवार की वाह्य ऊॅचाई	0.30 मीटर (1 फुट)

गोशाला में मलमूत्र नालियों की चौड़ाई 45 से०मी० (1.5–2.0 फुट) तथा नाली की अधिकतम गहरी 15–20 से०मी० (6 से 8 इंच) होनी चाहिये। नाली की ढाल प्रति 3 मीटर की लम्बाई पर 2.5 से०मी० अवश्य रखनी चाहिये।

गोशाला के अतिरिक्त पशुओं के लिये डेयरी फार्म पर निम्नलिखित भवनों की आवश्यकता होती है:–

गाय के ब्यॉने का कक्ष: ब्याने के कक्ष का क्षेत्रफल 10–14 वर्गमीटर अथवा 100–160 वर्गफुट होना चाहिये। इस प्रकार के कक्ष का प्रयोग केवल गाय के ब्यॉने की अवस्था में करना चाहियें।

बछड़ा कक्ष: विभिन्न आयु वर्ग के बछड़ों के लिये विभिन्न कक्षों की आवश्यकता होती है। सुप्रबन्धन के लिये इन्हे तीन श्रेणियों में बॉटा जा सकता है।

प्रथम श्रेणी– 1 वर्ष तक के सभी छोटे बच्चे

द्वितीय श्रेणी– 1 वर्ष से अधिक आयु वाले बछड़े

तृतीय श्रेणी– 1 वर्ष से अधिक आयु वाली बछियाँ

एक वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के लिये प्रति बच्चा 3–3.5 वर्गमीटर अथवा 30–35 वर्गफुट तथा 1 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को 3.65–4.00 मीटर स्थान की आवश्यकता होती है।

सुस्त गायों की शाला: ब्याने के कक्ष के समीप सुस्त गायों (Dry cow) को रखने हेतु प्रत्येक सुस्त गाय के लिये 6.0–7.0 वर्गमीटर स्थान की आवश्यकता होती है।

अलगाव कक्षः बीमार पशुओं हेतु 13–15 वर्गमीटर अथवा 150–160 वर्गफुट वाले रोशनदान युक्त कक्ष बनाना चाहिये।

खाद बनाने के लिये गोबर को दूर गड्ढे में इक्ट्ठा करना चाहिये। औसतन प्रति गाय के लिये एक घनमीटर आयतन के गड्ढे की आवश्यकता होती है। गोबर के सहज प्रबन्धन के लिये दो गड्ढे बनाने चाहिये जिसमें एक गड्ढा भर जाने पर वह खाद में परिवर्तित होने तक दूसरा गड्ढा गोबर एकत्र होने के लिये प्रयोग में लाया जा सके। बाड़ों से गड्ढो की दूरी कम से कम 50 मीटर होनी चाहिये। आवश्यकतानुसार गोबर से वर्मी खाद भी बनाई जा सकती है।

एक वर्ष का कार्यक्रमः कब, क्या और कैसे करें।

1. जनवरी–फरवरी

जनवरी, फरवरी मासों में ठन्ड अधिक पड़ती है। अतः गौवंश को ठन्ड से बचायें। अत्याधिक ठन्ड से गाय के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके लिए गौवंश को छायादार ढके स्थान पर रखें। रात में अलाव जला सकते है या गौवंश के ऊपर कपड़ा/कम्बल डाल सकते है। इस समय विशेष रूप से बनायी गयी झूलों का प्रयोग किया जा सकता है। गौवंश को विशेष रूप से छोटे बछड़े/बछडियों को तथा अधिक उम्र के गौवंश को भीगने से बचायें। गौशाला में सीलन न होने दें। चारा व दाना पर्याप्त मात्रा में दें। चारा–दाना पर्याप्त मिलते रहने से गौवंश के शरीर में ऊर्जा बनी रहती है। दिन में धूप निकलने पर गौवंश को कुछ समय धूप में अवश्य रहने दें। रात्रि में गौशाला में खिडकी, दरवाजों, रोशनदानों को ढक दें जिससे ठन्ड अन्दर न आये मगर दिन में हवा निकालने के लिए उन्हें खोलकर रखें। इस प्रकार यदि गौवंश की सेवा होती रहेगी तो उनमें बीमारी भी कम होगी। यदि फिर भी गाय बीमार पड़ती हैं तो तुरन्त उपचार प्रारम्भ करें व चिकित्सक की सलाह लें।

2. मार्च–अप्रैल

इस समय ठन्ड में गर्मी का मौसम बदलता है व हवाऐं तेजी से चलती हैं जिससे गायों को बचाना चाहिए। छायादार स्थान की व्यवस्था करना, पर्याप्त पानी व चारे की व्यवस्था करना तथा प्रारम्भ में ही गर्मी से बचाने की व्यवस्था करना जैसे प्रमुख कार्य हैं जो इस समय किये जाने चाहिए। इस समय फसल की कटाई होती है अतः चारे–दाने की पर्याप्त व्यवस्था रहती है। यदि गायें चरागाहों में चरने जाती हैं तो इस बात का ध्यान रखें कि चरते समय अधिक दाना न खा लें। विशेष रूप से गेंहूँ, चना आदि की कटाई के समय गाय चरते समय काफी मात्रा में दाना खा जाती है जिससे इनमें अफारा हो सकता है। अफारे से बचाने के लिए गौवंश को कम चारा–दाना दें ताकि पेट थोड़ा खाली रहे व गैस निकलने को पर्याप्त जगह रहे। अफारा होने पर पशु चिकित्सक की सलाह लें व उचित दवाओं (ब्लॉटोसिल/टिम्पॉल) से उपचार करें। यदि पेट में अत्यधिक गैस हो तो कोख (रूमैन) में छेद कर गैस निकाली जाती है, ताकि पेट में अत्यधिक गैस से फेफडों पर दबाव न पड़े। कई बार अफारा जान लेवा भी हो जाता है। अतः ऐसे समय में सावधानी रखनी चाहिए।

3. मई–जून

मई–जून में गर्मी बहुत पड़ती है अतः गायों को धूप व गर्मी से बचाना चाहिए। देशी गायें तो अधिक गर्मी सहन कर लेती हैं मगर विदेशी व संकर गायें अधिक गर्मी में बीमार पड़ जाती है उन्हें लू या हीटस्ट्रैस हो जाता है जिससे उनका उत्पादन कम हो जाता है कभी–कभी मर भी जाती हैं। अतः इससे बचने के लिए अन्य किसी भी प्रकार की छाया/ठन्डक या पंखे/कूलर का इन्तजाम करना चाहिए। गर्मी से सताये गये गौवंश का तापमान कम हो जाता है व सुस्त हो जाता है। अधिक गर्मी से सताये गये गौवंश की प्रजनन क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था के दौरान भ्रूण के विकास व बच्चेदानी पर भी गर्मी का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, व कभी–कभी गर्भपात हो जाता है। गर्मी में हरे चारे का प्रबन्ध रखना चाहिए व गायों को पानी खूब उपलब्ध कराते रहना चाहिए ताकि गर्मी का प्रभाव कम हो जाय। इस मौसम में सांय व प्रातः के समय कीटों का प्रकोप अधिक होता है, अतः कीड़ों को भगाने/मारने की व्यवस्था करनी चाहिए। इस मौसम में गायों में थनैला रोग होने की संभावना बढ़ जाती है अतः जो गायें दूध नहीं दे रही हैं तथा ब्याने के करीब है उन्हें एन्टीबायोटिक दवा थन में तथा माँस पेशी में सुई द्वारा अवश्य दें। यह उपचार कम से कम 5 दिन अवश्य करें। अन्य बीमारियों से बचाने के लिए गौशालाओं में सफाई कर चूने का छिड़काव करायें। गौवंश को पेट के कोड़े मारने की दवा दें। ग्याभिन गाय में पेट के कीड़े मारने की दवा देते समय सावधानी रखें क्योकिं इससे गर्भपात भी हो सकता है। इस समय गौवंश में खुरपका मुँहपका के टीके लगवायें। जो भी गौवंश 6 माह से बड़ा है उनमें सभी में टीके लगने चाहिए। इसी समय गलघोटूं के टीके भी लगवायें। उसके बाद लंगड़ी ज्वर के टीके लगवायें। ध्यान रखें, प्रत्येक टीके में कम से कम 10 दिन का अन्तर हो।

4. जुलाई–अगस्त

इस समय वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। कई बार वर्षा के कारण गौवंश तनाव व दबाव में आ जाते हैं जिससे दुग्ध उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वर्षा से बचने के लिए पर्याप्त आवास की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि मई–जून मास में टीकाकरण छूट गया हो तो वर्षा प्रारम्भ होने से पहले टीके अवश्य लगवा लें। दाने में खनिज लवणों पर ध्यान दें। पीने को साफ पानी दें। गौशाला में व आस पास के क्षेत्रों में पानी न भरने दें। थनैला रोग से बचाने के लिए गायों को दुहते समय थोडे गर्म–गुनगुने पानी से अयन की सफाई करें। इन महीनों में गायें ब्याती भी अधिक हैं अतः उनकी समुचित देखभाल रखें। पैदा होते ही बछडों/बछडियों की नाल किसी तेज धार वाली चीज से काटें व संक्रमणहारी दवाऐं लगा दें ताकि वह पके नहीं। बछडें/बछडियों को उनके वजन के अनुसार खीस पिलायें। सामान्यतः यह शरीर भार के दसवें हिस्से के बराबर होता है। इन महीनों में कीटों का भी प्रकोप रहता है अतः कीटों को भगाने/मारने पर भी ध्यान देना चाहिए।

5. सितम्बर–अक्टूबर

इन महीनों में कीटों का प्रकोप बहुत होता है जिनके काटने से गौपशु तनाव में आ जाते हैं व उनका दूध उत्पादन कम हो जाता है। अतः कीटों से बचाने की व्यवस्था करनी चाहिए। वर्षा का पानी एकत्र होने से कीचड़ हो जाती है। गौपशुओं को कीचड़ में न रहने दें। सूखे स्थान पर रखें। पीने को साफ पानी दें। पेट के कीड़े मारने की दवा दे सकते हैं। यह ध्यान रहे कि यह दवा हर 6 माह पर देनी है व ग्याभिन गायों में नहीं देनी है।

हरे चारे की व्यवस्था ठीक रखें। इस समय के हरे चारे से "साइलेज" या "हे" बना सकते हैं।

6. नवम्बर–दिसम्बर

इस समय से ठन्ड प्रारम्भ हो जाती है अतः गौपशुओं को ठन्ड से बचाने के प्रबन्ध करने चाहिए। साथ ही 10–10 दिन के अंतराल पर खुरपका–मुँहपका, गलघोटूं तथा लंगड़ी ज्वर का टीका लगवाना चाहिए। पिछले महीनों में ब्यायी गायें यदि गर्मी में आ जाती हैं तो उन्हें ग्याभिन करायें। इस समय हरे चारे के साथ–साथ भूसे का भी प्रबन्ध करें। गौशाला की सफाई फिनाइल से कराकर चूने का छिड़काव करायें। बीमार गाय को अलग से रखने की व्यवस्था करें। पशु चिकित्सक की सलाह लें।

इस प्रकार यदि गौशाला का प्रबन्धन किया जायेगा तो गायों में बीमारियां भी कम होंगी व उनसे उत्पादन भी अधिक लिया जा सकेगा। सभी गौवंश का वर्ष में एक बार क्षय रोग, जोहनीज रोग व ब्रुसोलोसिस रोग के लिए परीक्षण करा लेना चाहिए। इसके लिए पास के पशुचिकित्सक से सम्पर्क करें या भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर व राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों से सम्पर्क किया जा सकता है, जो निःशुल्क या रियायती दर पर परीक्षण करते हैं। साँडों में तीन अन्य बीमारियों यथा ट्राइकोमोनियोसिस, कैम्पाइलोबैक्टीरियोसिस तथा आई0बी0आर0 के लिए परीक्षण कराना चाहिए। यदि साँड इन 6 बीमारियों में से किसी एक से भी ग्रसित मिलता है तो उसे प्रजनन हेतु प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

इस प्रकार गौवंश की देख रेख करने पर उनका स्वास्थ्य ठीक व उनमें मृत्यु दर काफी कम हो जायेगी व गौशाला भी लाभ में रहेगी।

गोवंश की भारतीय नस्ले एवं उनकी विदेशी नस्लों से भिन्नता अन्तर

बी०एन० शाही एवं रामस्वरूप सिंह चौहान
पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहॉ की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगों पर निर्भर हैं। हमारे देश में पशु पालन कृषि व्यवसाय के साथ जुड़ा हुआ एक मुख्य व्यवसाय है। इससे मनुष्यों को पौष्टिक भोजन (दूध, मॉस व अण्डा) ही नही वरन खेती के लिए खाद, रोजगार एवं ग्रामीण आबादी के लिए अतिरिक्त आमदनी का साधन भी प्राप्त होता है। छोटे एवं सीमान्त कृषक तथा खेतीहर मजदूर देश के दुगध उत्पादन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

मवेशियों में गायो की महत्ता सबसे अधिक है। भारत में गावों से लेकर शहरों तक गाय को आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक पशु के रूप में स्वीकार किया जाता है। गायां को भारत में श्रद्वा की दृष्टि से भी देखा जाता है। पशुओं का ऐसा समूह, जिसकी उत्पत्ति तथा शरीर की बनावट और आकरिकी समान हो, एक नस्ल के पशु कहलाते हैं। वर्तमान में भारत में गायों की 50 नस्लें पाई जाती है, जिन्हे उपयोगिता एवं आवश्यकता के आधार पर इन्हे 3 भागों में विभातिज किया गया है।

1. दूधारू नस्ल : अच्छा दूध देने वाली परन्तु इनकी सन्ताने खेती के कार्यो हेतु अधिक उपयोगी नही होती।
2. द्विकाजी : दूधारू नस्लों से दुग्ध उत्पादन कम होता है परन्तु इनकी संताने खेती कार्य हेतु उपयेागी होती है।
3. भारवाही नस्ल : दुग्ध उत्पादन काफी कम होता है परन्तु इनकी सतंनों का उपायोग कृषि कार्य हेतु अत्यधिक किया जाता है।

भारतीय गोवंष की विषेषताएः

विदेश नस्लों की तुलना में स्वदेशी नस्लों में रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक पायी जाती है। साथ ही स्वदेशी नस्लों में वातावरण के प्रति अनुकुलता, विपरीत परिस्थितियों को सहन करने वाले एवं सूखा तथा दुर्भिक्ष के प्रति अनुकुलित होती हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी नस्लों की तुलना में भारतीय नस्ल की गायें स्वभाविक रूप से A2 गुणवत्ता युक्त दुग्ध का उत्पादन करती है जो मनुष्यों के लिये काफी लाभकारी है। देशी गाय के दुग्ध में संयुग्मित लिनोलिक एसिड, ओमेगा–3 फैटी एसिड और सेरेब्रोसाइड जैसे कुछ उपयोगी घटकों का उच्च स्तर होता है। इसके अतिरिक्त गाय के दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर का उपयोग पंचगव्य बनाने में किया जाता है जो कि प्रतिरक्षा प्रदान करता है। स्वदेशी गायो के गोबर में बहुत सारे उपयोगी बैक्टीरिया होते है जो रोगजनक उपभेदों के कारण होने वाली बीमारियों को रोक सकते हैं और इसे प्राकृतिक शोधक के रूप में भी उपयोग में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गाय का गोबर सूक्ष्म वनस्पतियों का एक समृद्ध स्रोत है जिसे प्रोबायोटिक्स के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गो मूत्र (स्वदेशी नस्ल के) का उपयोग कृषि में जैव कीटनाशक, उपज बढ़ाने एवं मिट्टी को उपजाऊ बनाने

के आलावा, रोगों को ठीक करने में, मच्छरों को नियंत्रित करने, कीटाणुशोधन एवं मछली के भोजन के रूप में किया जा सकता है। इसी तरह गाय के गोबर का उपयोग किण्वन एवं गैसीकरण प्रक्रियाओं के माध्यष्म से उर्जा उत्पादन में किया जाता है।

स्वदेषी एवं विदेषी गायों में मुख्य अन्तर निम्नानुसार हैः

तुलना का आधार	स्वदेषी गाय	विदेषी गाय
कूबड़ (Hump)	गाय एवं बैलों में कूबड़ होता है।	इनकी पीठ सीधी होती है एवं कूबड़ अनुपस्थित होता है।
शरीर का आकार (Body Size)	मध्यम एवं छोटा आकार	आकार में लम्बे एवं बड़े
माथा (Forehead)	गोल एवं नुकीला माथा	चपटा माथा
गलकम्बल (Dewlap)	लटका हुआ एवं पूर्ण विकसित गलकम्बल	कम विकसित गलकम्बल
कान (Ear)	नुकीले कान	गोल कान एवं उनके उपर बाल होते हैं।
त्वचा (Skin)	पतली, मुलायम, चमकदार एवं बालयुक्त त्वचा	मोटी एवं रूखी त्वचा
सिंग (Horns)	पूर्ण विकसित सिंग	छोटे अथवा अनुपस्थित सिंग
थन (Udder)	छोटे से मध्यम आकार के थन	बड़े, पूर्ण विकसित थन जिससे घाव लगने की सम्भावना ज्यादा होती है।
दो ब्यातों के बीच अन्तर (Calving Interval)	दो ब्यातों के बीच ज्यादा अन्तर होता है।	कम अन्तर होता है।
ध्वनि (Sound)	स्पष्ट तेज एवं मधुर ध्वनि	कर्कश तेज और कुछ हद तक दबी हुई ध्वनि
रोग प्रतिरोधक शक्ति (Immunity)	मजबूत प्रतिरक्षा क्षमता	कमजोर प्रतिरक्षा क्षमता
रोग संचरण (Disease Transmission)	आम तौर पर ये रोग नही फैलाते हैं।	यह बहुत सारी बीमारियॉ फैलाते हैं।
पसीना (Sweating)	ये बहुत अधिक पसीना बहाते है जो इनके शरीर से विषाक्त पदार्थो को निकालने में मद्द करता है।	स्वदेशी की तुलना में इन्हे कम पसीना आता है।
घूमना (Walking)	चारागाह एवं पानी की तलाश में लम्बी दूरी तक चल सकते हैं।	लम्बी दूरी तक नही चल सकते
सहनशीलता (Tolerance)	उच्च तापमान एवं वातावरण के अन्य बदलाओं के प्रति अनुकूलित हैं।	ये वातावरण में उच्च तापमान एवं अन्य बदलाओ के प्रति अनुकूलित नही हैं।

भारतीय गायों की प्रमुख नस्लेः

साहीवालः

इसे लोला, मुल्तानी एवं मोंटगोमरी आदि नामों से भी जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति पाकिस्तान के जिला–मोंटगोमरी से माना जाता है। साहीवाल नस्ल की गाये भारत में कही भी पाली जा सकती हैं, परन्तु उत्तर भारतीय क्षेत्र हेतु उपयुक्त माने जाने वाली नस्लों में प्रमुख है। इस नस्ल के पशु पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा एवं राजस्थान के कुछ इलाकों में पाये जाते हैं। इस नस्ल का पशु लाल/भूरे रंग होती है। शरीर लम्बा टांगे छोटी होती है। इनका माथा चौड़ा, छोटे सिंग और गर्दन के नीचे की त्वचा भारी एवं लटकी होती है। कुछ गायों में हिलने वाले सिंग भी पाये जाते हैं। इनके एक व्यात में औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 2300 लीटर (1600 लीटर– 2700 लीटर) तक होती है।

लाल सिन्धीः

लाल सिंधी नस्ल मुलतः कराची एवं सिंध प्रान्त पाकिस्तान की उत्पत्ति मानी जाती है। भारत में इसके संगठित झूण्ड उड़ीसा, तमिलनाडू, बिहार, केरला, असम तथा उत्तराखण्ड में पाये जाते हैं। इस नस्ल के पशु विभिन्न प्रकार की जलवायु में अपने आपको अनुकूल बनाये रखने की क्षमता रखते हैं तथा विभिन्न रोगों के लिये प्रतिरोधी होते हैं। यह गहरे लाल रंग का पशु है जो कि आकार में साहीवाल से काफी मिलता जुलता है। पशुओं का आकार मध्यम और ठोस होता है। गायें अत्यन्त सीधी होती है। गर्दन छाटी तथा मोटी होती है। गलकम्बल बड़ा, पतला तथा मुलायम होता है। शरीर की तुलना में इनके कुबड़ बड़े आकार के होते है। इनका एक ब्यॉत में औसत दुग्ध उत्पादन 1800 लीटर (1100 से 2600 लीटर) होता है।

गिरः

इनका मूल स्थान गुजरात के दक्षिण काठियावाड़ का गिर क्षेत्र है। यह भारत की सबसे पुरानी नस्ल मानी जाती है। इन पशुओं का शरीर सुव्यवस्थित एवं गठिला होता है। इनके शरीर का रंग सफेद होता है जिस पर चारों ओर गहरे लाल या कथई रंग के धब्बे होते है। सिर का साधारण लम्बा परन्तु आभास में स्थुल होना इस नस्ल का अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण है। ललाट अत्यन्त उभरा होता है एवं गलकम्बल बड़ा होता है। इसके एक ब्यॉत में औसत दुग्ध उत्पादन 1900 लीटर (800–3300 लीटर) होता है। इस नस्ल के बैल छोटे आकार के होने पर भी भारवाही पशु के रूप में बहुत काम करते हैं।

थारपारकरः

इसे थारी, सफेद सिंधी, भूरी, सिंधी आदि नामों से जाना जाता है। इसका मूल स्थान थार रेगिस्तान सिंध पाकिस्तान में माना जाता है। भारत में यह भारत पाकिस्तान की सीमा पर राजस्थान से लेकर गुजरात के कच्छ तक पाया जाता है। यह मूलतः राजस्थान के जोधपुर, बारमेर एवं जसलमेर जिले में पायी जाती हैं। पशुओं का कद मझोला मँह लम्बा एवं ललाट उभरा होता है। इनका रंग सफेद माथा चाड़ा एवं चपटा कान चौड़े एवं लटकने वाले होते हैं। इस नस्ल के पशु बहुत मजबूत तथा कम आहार पर निर्वाह करने वाले होते है। ये विपरीत परिस्थितियों को सहन करने वाले सुखा तथा दुर्भिक्ष के आदि होते हैं। इनके एक ब्यॉत में औसत दुग्ध उत्पादन 1750 लीटर (900 से 2150 लीटर) पाया जाता है।

राठीः

यह मूलतः बिकानेर, गंगानगर एवं जसलमेर में पायी जाती हैं। राठी नस्ल का राठी नाम "राठस" जनजाति के नाम पर पड़ा है। इस नस्ल के पशु भूरे रंग के होते हैं जिसमें सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इनका चेहरा सीधा एवं चौड़ा मध्यम कूबड़, सिंग छोटे एवं कान मध्यम आकार के होते है। इनका शरीर हरियाणा पशुओं से मिलता जुलता है। यह आकार मे अपेक्षाकृत कुछ छोटे होते हैं। वातावरण के प्रति सहनशील तथा कम चारे पर गुजारा करने वाले होते हैं। एक ब्यॉत में औसत दुग्ध उत्पादन 1500 लीटर (1050 से 2800 लीटर) पाया जाता है। राठी नस्ल के बैल शक्तिशाली तथा हल्के काम के लिये उत्तम होते हैं।

हरियाणाः

इनका मूल स्थान हरियाणा का रोहतक, हिसार, जिन्द एवं गुड़गॉव क्षेत्र हैं तथा यह राजस्थान एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में भी पाली जाती है। इस नस्ले के पशु ऊॅचे कद एवं गठिले बदन के होते हैं। इनका रंग सफेद मोतियॉ हल्का भूरा होता है। इन पशुओं का मँह संकरा ललाट चपटा सिंग एवं कान छोटे, कद मझोला, गर्दन सुर्दढ़, गलकम्बल एवं कूबड़ छोटा होता है। गौरवमय चेहरा जो हमेशा उठा रहता है इस नस्ल का प्रमुख लक्षण है। इनका औसत दुग्ध उत्पादन 1000 लीटर (700 से 1750 लीटर) पाया जाता है। इस जाति के बैल कृषि कार्यो एवं भार वाहन के लिये बहुत उत्तम होते हैं। यह उत्तर भारत क्षेत्र की प्रमुख द्विकाजी नस्ल हैं।

गोवंश के मुख्य रोग एवं उनकी रोकथाम

रामस्वरूप सिंह चौहान
पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)

1. मुँह–खुर रोग

यह एक तीव्र ज्वर वाला, अत्यधिक छूत का विषाणुजनित रोग है जिसमें रोमान्थक पशुओं के मुॅह की ष्लेश्मिक झिल्ली, खुरों के बीच के स्थान, कारोनरी पटटी इत्यादि में फफोले बन जाते हैं। सामान्यतः रोगग्रसित वयस्क पशुओं में मृत्युदर तो नहीं होती मगर पिछले कुछ वर्षो में ऐसा देखा गया है कि मुँह खुर रोग के विषाणु तथा अन्य रोग जैसे गलघोंटू के जीवाणु मिलकर पशु को अधिक क्षति पहुँचाते हैं जिससे मृत्युदर काफी बढ गयी है। दूसरे जानवरों की रोग प्रतिरोधक क्षमता में पर्यावरण प्रदूषण के कारण कमी हुई है जो रोग की तीव्रता बढ़ने में मुख्य भूमिका अदा करती है।

कारण

इस रोग का कारण एक अत्यन्त सूक्ष्म, गोल विषाणु हैं, जो कि पिकोरना विषाणु समूह का सदस्य है। हमारे देश में खुरपका मॅहपका रोग मुख्यता ए, ओ, सी, व एशिया–1 द्वारा उत्पन्न होता है। खुरपका मँहपका रोग के कई अन्य सहायक कारक हैं। नम वातावरण, पशु की अन्दरूनी कमजोरी, पशुओं का आवागमन, लोगों का आवागमान, आसपास के क्षेत्रों में रोग का प्रकोप, रोग नियंत्रण इत्यादि का सीधा संबंध रोग की तीव्रता से है। किसी एक प्रकोप में कई प्रकार के विषाणु मिल सकते हैं। अंधिकाश रूप से "ओ' प्रकार का विषाणु ही रोग करता पाया गया है।

लक्षण

हल्के से तीव्र ज्वर (102–105° फा), जीभ, मसूढ़ों, ओठों, नथुनों, ओठों के संधि स्थल इत्यादि स्थानों में फफोंले बनना इस रोग के महत्वपूर्ण लक्षण हैं। रोगी पशुओं के मुँह से अधिक लार गिरती है तथा चपचपाहट की घ्वनि उत्पन्न होती है। भूख कम लगना, जुगाली कम करना, अधिक प्यास, कमजोरी भी इस रोग का लक्षण है। कुछ दिनों के पश्चात पैरों में भी घाव उत्पन्न हो जाते हैं तथा रोगी पशुओं में लंगडापन दिखाई पड़ता है रोगग्रस्त पशुओं की ध्यान पूर्वक चिकित्सा न करने पर खुर गिरना, निमोनिया, जठर आंत्र रोग, मवादयुक्त घाव इत्यादि जटिलताएं भी हो जाती है। थन पर के फफोलों से थनैला रोग भी हो जाता है। स्वस्थ पशुओं में श्वाँस लेने में कठिनाई होती है। यह रोग 10–15 दिनों तक रहता है।

निदान

मुँह तथा पैरों के घावों को देखने के पश्चात रोग निदान हेतु कुछ रोगों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इनका तुलनात्मक निदान करने के पश्चात ही खुरपका मँहपका रोग का निश्चयात्मक निदान संभव हो सकता है। कम्पलीमैंट फिक्शेसन परीक्षण द्वारा रोग का निश्चयात्मक निदान हो सकता है। रोग निदान हेतु जिह्वा या थूथन के फफोलों तथा उनसे निकलने वाले द्रव्य को 50 प्रतिशत गिलसरीन में एकत्र किया जाता है। इसके

पश्चात बोतल को सील करके विशिष्ट प्रयोगशालाओं में भेज दिया जाता है। जहाँ कि विषाणु टाइपिंग हो सके। शवपरीक्षण के समय रोग निदान हेतु निम्न सामग्री विषाणु पृथक्कीकरण हेतु एकत्र करना चाहिए।

1. क्षति ग्रस्त जिह्वा/थूथन का एक अंश
2. हृदय का एक अंश

ऊतक विकृति अध्ययन हेतु उपरोक्त क्षतिग्रस्त अंगों के अंश 10 प्रतिशत फार्मेलीन में एकत्र किए जाते हैं।

उपचार

खुरपका मँहपका एक विषाणु जनित रेाग है। तथा इसका कोई उपचार नहीं है। द्वितीय प्रकार के जीवाणुओं को रोकने हेतु धावों को सल्फा तथा जीवाणुनाशक औषधियों द्वारा साफ किया जाता है। घावों की सोडियम कारबोनेट 4 प्रतिशत, पोटेशियम परमैगनेट 1 प्रतिशत या फिनाल से घोना लाभदायक होता है। रोगकाल में रोगी पशुओं को कोमल तथा सरलता से पचने वाला भोजन देना चाहिए। यदि किसी पशु को थनैला हो गया तो उसका भी उपचार करना चाहिए।

बचाव व रोकथाम

खुरपका मँहपका रोग को रोकने का विश्वस्त उपाय इससे बचाव द्वारा होता है।

भारत और विश्व के अनेकों देशों में खुरपका मँहपका रोग के टीकों पर शोध कार्य द्वारा कई प्रकार के टीके विकसित किए गए हैं हमारे देश में इस रोग के निम्न टीकों का पहले प्रयोग किया गयाः

1. क्रिस्टल वायलेट टीका
2. एल्यूमिनियम हाइड्राक्साइड टीका
3. पालीवैलेंट अक्रिय सेल कल्चर जेल खुरपका मँहपका टीका जिससे भारतवर्ष में पाए जाने वाले खुरपका मँहपका रोग का विषाणु स्ट्रेनो के प्रति प्रतिरक्षा उत्पन्न होता है टीके को 40 मि0ली0 मात्रा अधोत्वचा विधि द्वारा गर्दन के नीचे की ढीली त्वचा में लगायी जाती है। प्रारम्भ में 4–6 महीनों में दो बार टीका लगवाना चाहिए परन्तु इसके पश्चात प्रतिवर्ष टीका लगवाना चाहिए। टीकाकरण को समयबद्ध तरीके से करना चाहिए।

2. गलघोंटू

गलघोंटू गोपशु और भैंसों का एक तीव्र संक्रामक जीवाणुजनित रोग है जिसमें रोगी पशुओं को तेज बुखार के साथ साँस घुटने की शिकायत, जहरवाद के कारण शरीर में जगह–जगह अत्याधिक रक्तस्राव होते हैं। रोग से प्रतिवर्ष हजारों पालतू पशुओं की मृत्यु हो जाती है। यह रोग विश्व के समस्त भागों में होता है। जीवाणु जनित रोगों में गलघोंटू रोग से हमारे देश में प्रतिवर्ष कई करोड़ रूपयों की हानि होती है। भारत के समस्त प्रान्तों में वर्षा प्रारम्भ होने पर गलघोंटू रोग के अनेकों प्रकोप होते हैं। इससे पीड़ित पशुओं में से 70 से 100 प्रतिशत तक की मृत्यु हो जाती है।

कारण

इस रोग का कारण पास्चुरेल्ला मल्टोसीडा तथा मैनहीमियां हीमोलाटिका नामक

जीवाणु हैं। ये जीवाणु छोटे, अचल, ग्राम निगेटिव दण्डाणु होते हैं जोकि रंगने से द्विवध्रुवीय (बाईपोलर) दिखाई देते हैं।

लक्षण

जीवाणु के शरीर में सक्रिय होने व लक्षण उत्पन्न होने में कुछ घंटों से 3 दिन का समय लग सकता है। कारक जीवाणुओं की उग्रता के आधार पर विभिन्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं जिन्हें निम्नलिखित समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. **अतितीव्र प्रकारः** यदि जीवाणु अत्याधिक उग्र हों और पशुओं की रोग प्रतिरोधी क्षमता में कमी हो तो अतितीव्र प्रकार का रोग उत्पन्न होता है। जीवाणु रक्त में पहुँच कर तीव्रता से विभाजित होता है और शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचता है। अन्त में कुछ घंटों में पशु की मृत्यु हो जाती है। प्रभावित पशु को तेज बुखार आता है व उसकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार में पशु में कोई मुख्य क्षत स्थल दिखायी नहीं पड़ते, अतः कई बार रोग निदान करने में भी कठिनाई आती है।
2. **तीव्र प्रकारः** इस प्रकार की बीमारी में विभिन्न अंगों में रक्तस्राव होता है तथा फेफड़ों में निमोनिया उत्पन्न होता है। रोगी पशुओं में श्वाँस कष्ट, तीव्र ज्वर, भोजन के प्रति अरूचि एवं दुग्ध उत्पादन में कमी हो जाती है। सिर, गर्दन, गला और वक्ष में अधोत्वचीय शोध के कारण सूजन उत्पन्न हो जाती है। विशेष रूप से गले में पानी भर जाने से साँस लेने में कठिनाई उत्पन्न होती है व जानवर घड़–घड़ की आवाज करते है इसीलिए इस रोग को "गलघोंटू" कहते है।
3. **चिरकालिक प्रकारः** जब जीवाणुओं में उग्रता बहुत कम होती है तो पशुओं में इस प्रकार का रोग उत्पन्न होता है। इस प्रकार की बीमारी में द्वितीय प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं तथा 3–4 माह में पशुओं की मृत्यु हो जाती है।

निदान

पशुओं के रक्त, सीरम द्रव और निःस्राव को स्लाइड पर स्मीयर बनाकर तथा मीथाईलीन ब्लू द्वारा रंगने पर द्विध्रुवीय जीवाणु (बाई पोलर) देखे जा सकते हैं।

उपचार

रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पर्याप्त मात्रा में सल्फा और जीवाणुनाशक औषधियों द्वारा रोगी पशुओं का उपचार करने से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। रोगी पशुओं के शरीर भार के अनुसार सल्फामेजाथीन घोल (33.5 प्रतिशत) की 100–300 मि.ली. मात्रा का त्वचा के नीचे बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। इस औषधि के उपचार से अच्छे परिणाम मिलते हैं। स्ट्रेप्टोमाइसिन का टीका शरीर भार के अनुसार दिया जाता है। इस औषधि के उपचार से भी सल्फा औषधि के समान अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। पेन्सलीन और स्ट्रेप्टोमाइसिन का मिश्रित रूप से प्रयोग करने पर भी अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। टेट्रासाईक्लीन्स सुई द्वारा शरीर भार के अनुसार दी जाती है। टेट्रासाईक्लीन किसी भी विधि द्वारा दी जा सकती है। सामान्यतः आधी मात्रा रक्त नलिका में व आधी मात्रा त्वचा के नीचे दी जाती है। इससे रोग नियंत्रण में मदद मिलती है। इन प्रतिजैविक दवाओं के साथ–साथ ताकत की दवाऐं व विटामिन भी दिये जाने आवश्यक है। कई बार स्टीरोइड भी देने पड़ते हैं।

उपरोक्त विधि द्वारा उपचार देने के अतिरिक्त उत्तम प्रबन्ध, स्वच्छ पानी और पोषक भोजन का प्रबन्ध करना चाहिए। पशुशालाओं में अत्यधिक नमी नहीं होनी चाहिए तथा वायु

के आवागमन का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। जो रोग को बढ़ने से रोकने में कारगर उपाय हैं।

बचाव एवं रोकथाम

गलघोंटू रोग से बचाव हेतु टीके का उपयोग करना चाहिए। एच.एस. आयल एडजुवेंट वैक्सीन का टीका *पास्चुरेल्ला मल्टोसिडा* के घोल का फार्मलीन युक्त धोवन है जोकि पैराफीन तथा लैनोलिन में बनाया जाता है। इस टीके का प्रयोग गोपशु तथा भैंसों में किया जाता है। परन्तु इसका उपयोग रोग प्रकोप के समय नहीं करना चाहिए। यह टीका अतः माँसपेशियों (इन्ट्रा मस्कूलर) विधि द्वारा दिया जाता है। सामान्यतः टीके की 2–3 मि.ली मात्रा गर्दन की माँसपेशी में सुई द्वारा दी जाती है। टीका लगाने के 21 दिन पश्चात् रोगप्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है जोकि छः माह तक गलघोटू रोग से बचाव करती है। गलघोंटू का टीका प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु से पूर्व मई या जून के महीनों में सभी पशुओं को अवश्य लगवा देना चाहिए।

3. लंगड़ी ज्वर (ब्लैक क्वार्टर रोग)

यह एक तीव्र संक्रामक जीवाणु विष जनित रोग है जिसमें रोगी पशुओं को ज्वर, माँसपेशियों की सड़न युक्त सूजन, जहरवाद तथा अत्यधिक मृत्युदर होती हैं।

लंगड़ी ज्वर प्रायः कम आयु के गोवंशीय पशुओं का रोग है। भारत के कई प्रांतों जैसे कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु तथा राजस्थान में यह गोपशुओं का प्रमुख रोग है। उत्तरी भारत में इस रोग का प्रकोप यदाकदा ही हुआ है। गर्म और नम जलवायु वाले राज्यों में यह रोग खूब फैलता है। इसीलिए वर्षाऋतु में इसका काफी प्रकोप होता है।

कारण

रोग का विशिष्ट कारक *क्लासट्रीडियम सोवियाई* नामक जीवाणु है। इस जीवाणु के किनारे गोलाकार होते हैं। यह जीवाणु ग्राम पोजीटिव, गतिशील तथा केन्द्रीय से किनारे तक स्पोर वाले बीजाणु बनाते हैं।

लक्षण

जीवाणु शरीर में प्रवेश के 15 दिनों के बाद रोग करने योग्य होते है। रोगी पशुओं में अचानक ज्वर हो जाता है। तत्पश्चात् पुटठों, गर्दन, जाँघों आदि की माँस पेंशियों में चरचराहट ध्वनि उत्पन्न होती है। रोग के प्रमुख लक्षण लंगड़ापन, ज्वर, सुस्ती, भोजन के प्रति अरूचि तथा माँसपेशियों में सूजन है। इस क्षेत्र की त्वचा हरी या नीली हो जाती है। नाक से झाग निकलते हैं। दो या तीन दिनों पश्चात् रोगी पशु की मृत्यु हो जाती है।

निदान

रोग निदान निम्न तथ्यों के आधार पर किया जाता हैः

1. **रोग का इतिहासः** लगभग 6 माह से 2 वर्ष की आयु के पशुओं को तेज ज्वर आने से रोग होने की शंका की जा सकती है। रोग उस समय भी अधिक होता है जब वातावरण में नमी अधिक होती है। झुण्ड के एक या दो पशुओं को ही रोग होता है।
2. **लक्षणः** तेज ज्वर लंगडापन, पुट्ठों की माँसपेशियों को दबाने से चरचराहट की ध्वनि उत्पन्न होना आदि इस रोग के मुख्य लक्षण हैं जिनके आधार पर रोग को पहचाना जाता है।

बचाव व रोकथाम

प्राकृतिक रूप में रोग के प्रति प्रतिरक्षा नहीं होती है, परन्तु जैसे–जैसे पशुओं की आयु बढ़ती है पशु रोग के प्रति कम संवेदनशील होते हैं। लंगड़िया ज्वर के विभिन्न टीके उपलब्ध हैं। जिसमें पालीविलैन्ट टीका काफी उपयोगी पाया गया है। इस टीके में *क्लास्ट्रीडियम सोवियाई* और *क्लाट्रीडियम सेप्टीकम* जीवाणुओं को मिश्रित किया जाता है। तथा गो एवं अन्य रोमन्थक पशुओं में लगाया जा सकता है। रोग प्रकोप के काल में टीका नहीं प्रयुक्त किया जाता है। गोपशुओं में 5 मि.ली. मात्रा अधोत्वचा विधि द्वारा दी जाती है। लगभग दो सप्ताहों में प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है तथा एक वर्ष तक रहती है। वर्षाऋतु आने से पूर्व प्रतिवर्ष 6 माह से 2 वर्ष की आयु के गोपशुओं को टीका लगवा देना चाहिए। जिन क्षेत्रों में रोग के होने की बहुत अधिक संभावना है वहाँ बछड़ों को भी 3 सप्ताह की आयु में ही टीका लगवा देना चाहिए। बचाव के लिए निम्नलिखित स्वच्छता उपाय भी करने चाहिए:

1. मृत पशुओं के शव को गढ्डा खोदकर चूने में दबा देना चाहिए।
2. यदि पशु की मृत्यु खेतों में हुई हो तो शव के आस–पास की मिटटी की उठाकर चूने में मिश्रित करके रोगी पशु के शव के साथ गढ्डे में दबा देना चाहिए।
3. स्वस्थ पशुओं को उन चरागाहों से दूर रखना चाहिए, जहाँ से रोग का संक्रमण हुआ हो।
4. यदि रोगी पशु की मृत्यु पशुशाला में हुई हो तो वहाँ की खूब सफाई कर देना चाहिए। जिन पशुओं में लंगड़ी रोग के लक्षण दिखाई देने लगें उन की चिकित्सा करनी चाहिए। इसके लिए ऐन्टिसीरम का प्रयोग किया जा सकता है तथा पेनिसिलिन की सुईयाँ रोगी पशुओं को लगानी चाहिए। आरियोमाइसिन का प्रयोग भी रोग की चिकित्सा में सफलता पूर्वक किया जा सकता है। मगर एक बार रोग के लक्षण उत्पन्न होने पर रोगी पशु को बचाना कठिन है।

4. दस्त

गोपशुओं के नवजात बछडें/बछड़ियों में प्रायः प्रथम एक मास की उम्र तक दस्त होने की शिकायत होती है जो कई प्रकार के विषाणु तथा जीवाणुओं से हो सकते हैं। इसमें प्रभावित बछड़ों में मरोड़ के साथ दस्त होते हैं। मल पतला व बार–बार होता है। पीछे पुट्ठों व पूँछ पर मल चिपका रहता है जिस पर मक्खियाँ भिन्न भिनाती हैं। अन्ततः रोगी बछड़े की मृत्यु हो जाती है।

कारण

इस रोग के कई कारण हो सकते हैं जो एकल रूप में तथा संयुक्त रूप में रोग उत्पन्न करते हैं। 1. रोटा विषाणु, 2. कोरोना विषाणु, 3. रियो विषाणु, 4. *ईश्चैरिकिया कोलाई,* एवं 5.सालमोनैला जीवाणु

प्रायः ऐसा माना जाता है कि पहले विषाणु (रोटा या कोरोना) नवजात बछड़े/बछड़ियों की आंत की कोशिकाओं में क्षति करते हैं जिससे जीवाणुओं को उसमें घुसने का अवसर मिल जाता है व जीवाणु व इनके विष सभी मिलकर बीमारी की तीव्रता को बढ़ा देते है।

लक्षण

इस बीमारी में बछड़ों को पीले रंग के, दुर्गन्ध युक्त पतले दस्त होते हैं। कभी–कभी मल के साथ–साथ गैस भी निकलती है। पतला गोबर पूँछ व नितम्ब पर चिपक जाता है

जिस पर मक्ख्यां भिन भिनाती हैं। प्रभावित बछड़ा कमजोर हो जाता है तथा उसे भूख भी कम लगती है। रोगी बछड़े की मृत्यु निर्जलीकरण के कारण हो जाती है।

निदान

इस रोग का निदान लक्षणों व विकृति के आधार पर किया जाता है। रोगी पशु के मल से जीवाणु/विषाणु पृथक किये जा सकते हैं या इसमें एन्टीजन की उपस्थिति पता की जा सकती है। इसके लिए एलिसा, डाट इम्यूनोबाइन्डिग ऐसे आदि परीक्षण किये जा सकते हैं।

उपचार

रोगी बछड़े/बछड़ियों का उपचार एन्टीबायोटिक दवा से किया जाता है। निर्जलीकरण की समस्या को ठीक करने के लिए ग्लूकोस सैलाइन को अन्तः शिरा विधि द्वारा दिया जाता है।

बचाव व रोकथाम

इससे बचाव के लिए फार्म पर सफाई रखें। संक्रमणहारी दवाओं से फर्श की सफाई करनी चाहिए। बछड़ों का दूरी पर रखें ताकि चाटकर एक से दूसरे से बीमारी न फैले।

5. न्यूमोनियां

न्यूमोनियां सभी प्रकार के पशुओं का एक गंभीर रोग है जो सर्दी लगने, भीगने अथवा कई प्रकार के जीवाणु, विषाणु, परजीवी व फफूँदी से हो सकता है तथा इसमें नांक से पानी गिरना, साँस लेने में कष्ट होना, फेफडे खराब होना आदि मुख्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। अधिकांशतः न्यूमोनियां छोटे बछडें/बछड़ियों में ही देखा गया है जिससे इनमें काफी मृत्युदर होती है।

कारण

1) जीवाणुः जैसे *पाश्चुरैला, ई. कोलाई* आदि; 2) विषाणुः जैसे बी.एच.वी.–1, पी.आई.–3, आदि; 3) *क्लेमाइडिया सिटेसियाई;* 4) परजीवी जैसे *डिक्टायोकोलस वीवीपैरस;* 5) *मायकोप्लाज्मा माइकोइड्स;* 6) दवाऐं/जहर आदि से ड्रैन्चिग; एवं 7) फँदीः जैसे *एसपर्जीलस फ्यूमीगेटस*।

न्यूमोनियां अधिकतर नवजात बछड़े/बछड़ियों में ठन्ड लगने से या भीगने से शुरू होता है जिसमें फिर विभिन्न प्रकार के जीवाणु/विषाणु फेफड़ों में क्षति करते हैं। बड़े पशुओं में फँदी जन्य या परजीवी जन्य न्यूमोनियां अधिक होता है मगर इसकी आवृति काफी कम होती है।

लक्षण

न्यूमोनियां से प्रभावित पशुओं में ज्वर आता है व उनकी नांक से पानी गिरता है। जानवर साँस लेने में कठिनाई महसूस करता है तथा कभी–कभी घड़–घड़ की आवाज या सीटी बजने की सी आवाज साँस लेने के साथ उत्पन्न होती है। कमजोरी के कारण प्रभावित पशु चारा–दाना खाना–पीना छोड़ देता है व जमीन पर बैठ जाता है। यदि समय से उपचार न किया जाय तो प्रभावित पशु की मृत्यु हो जाती है।

निदान

न्यूमोनियां का निदान लक्षणों व विकृति से किया जा सकता है। स्टैथस्कोप की मदद से स्वाँस में होने वाली आवाजों को सुनकर न्यूमोनियां का पता लगाया जा सकता है। इस

रोग से प्रभावित पशु के रक्त का परीक्षण करने पर सफेद रक्त कोशिकाऐं बढ़ी हुई मिलती हैं।

उपचार

न्यूमोनियां का उपचार प्रतिजैविक दवाओं से किया जाता है। प्रभावित पशु को टैट्रासाइक्लिन, सिप्रोप्लोक्सिन या एम्पीसिलिन दवाऐं दी जाती हैं। साथ में कुछ ताकत की दवाऐं यथा विटामिन, आदि देनी चाहिए। प्रभावित पशु को ठन्ड से बचाने के लिए उपाय करने चाहिए।

बचाव व रोकथाम

पशुओं को ठन्ड से बचाना चाहिए क्योंकि ठन्ड लगने से न्यूमोनियां होने की संभावना काफी बढ़ जाती है। विशेष रूप से सर्दी के मौसम में पशु के ऊपर कपड़ा/कम्बल या टाट डाल देना चाहिए। पशुघर को गर्म करने के लिए लकड़ी/कोयला या हीटर प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार बरसात के मौसम में नवजात बछड़े/बछड़ियों को भीगने से बचायें। जब पशुघर की सफाई करते हैं तो प्रायः यह देखा गया है कि पानी के फव्वारे से पशु/बछड़े आदि भी भीग जाते हैं जिसको रोका जा सकता है। बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें व इनके चारे/दाने की व्यवस्था भी अलग से करें।

6. थनैला रोग

पालतु पशुओं के स्तनशोथ को थनैला कहते हैं जोकि अनेकों प्रकार के जीवाणुओं, विषाणुओं, फफूँदियों आदि द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग में थन तथा अयन कठोर एंव पीड़ायुक्त हो जाता है तथा दूध के रंग में परिवर्तन, कतरे व थक्के हो जाते हैं। चिरकालिक रोगियों में थन कठोर हो जाता है और रोग प्रभाव से थन बेकार हो जाते हैं तथा उससे दूध निकलना बन्द हो जाता है।

थनैला दुधारू पशुओं का आर्थिक दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रोग है जिसका प्रभाव डेयरी उद्योग पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। थनैला से दुग्ध उत्पादन में तो कमी आती ही है। साथ ही साथ दुग्ध में उपस्थित वसा की मात्रा में भी कमी आ जाती है। थनैला द्वारा उत्पन्न स्थायी क्षतियों के कारण बिना उत्पादन वाले पशुओं के खानपान का भार भी हमें वहन करना पड़ता है। जनस्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी इस रोग का वहुत अधिक महत्व है क्योकि इस रोग के कुछ जीवाणु जैसे *स्ट्रेप्टोकोकस पायोजेनिस* तथा *स्टैफाईलोकोकस आरियस* मनुष्यों में भी रोग पैदा कर सकते है। ये जीवाणु रोगी पशुओं के दूध से मनुष्यों तक जा पहुँचते है। कई बार क्षय रोग के जीवाणु भी थनैला रेाग से प्रभावित पशुओं द्वारा दूध में पहुँचते है और यदि दूध को अच्छी प्रकार से उबाला न जाए जो मनुष्यों में क्षय रोग होने का भय रहता है।

कारण

संक्रामक थनैला रोग अनेकों जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। अधिकतर गोपशुओं और भैसों में यह रोग *स्ट्रेप्टोकोकस एगेलेक्सी* द्वारा होता है। अन्य जीवाणुओं से भी थनैला रोग उत्पन्न होता है। थनैला रोग उत्पन्न करने में अयन में लगने वाली चोटों तथा घावों का बहुत अधिक महत्व रहता है क्योंकि थनों में संक्रमण घावों या चोटों द्वारा ही होता है। कई बार दूध पीने वाले बछड़े थन को काट कर घाव कर देते है। जिनके द्वारा जीवाणुओं के आक्रमण के फलस्वरूप थनैला उत्पन्न हो जाता है। दूध निकालने वाली मशीन के कपों,

ग्वालों के हाथों तथा पशुशालाओं व दुग्धशालाओं के बर्तनों द्वारा भी संक्रमण का प्रसार होता है। एक्टोनोमायसीज पायोजिनीस से एक विशेष प्रकार का थनैला रोग होता है जिसे **ग्रीष्म कालीन थनैला रोग** कहते हैं। यह रोग कालांतर में उग्र रूप धारण करता है तथा अयन में मवाद पड़ जाता है। व दूध की जगह हल्के पीले रंग का गन्दा, पानी युक्त स्राव बाहर निकलता है। इस तरह का थनैला रोग उन गायों में अधिक होता है जो दूध नहीं दे रही होती हैं।

लक्षण

रोगी पशुओं के दूध में फाइब्रिन थक्के तथा दूध के रंग में परिवर्तन थनैला के सर्वप्रथम लक्षण होते हैं। दुग्ध दोहन के समय गाय को कठिनाई होती है। अयन में सूजन, कठोरता, अयन गर्म होना तथा लाल रंग का होना आदि लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। पशु चारा नहीं खाता तथा कभी कभी उसे बुखार भी उत्पन्न हो सकता है।

निदान

थनैला रोग के निदान हेतु अनेकों परीक्षणों का उपयोग पशु चिकित्सालयों तथा प्रयोगशालाओं में होता है। निदान के प्रमुख परीक्षण निम्न लिखित हैं।

1. भौतिक परीक्षणः थनैला के रोगी पशु के दूध में थक्के हों तो दूध का रंग भी परिवर्तित जैसे लाल या पीला हरा होगा।
2. स्ट्रिप कप परीक्षणः इस परीक्षण द्वारा थनैला के प्रारम्भिक रोगी पशुओं का निदान किया जा सकता है। दूध की प्रथम 2 या 3 घारायें थन से कम में डाली जाती हैं। यदि किसी पशु के दूध में थक्के दिखाई पड़े तों पशु को अन्य से तुरन्त अलग कर के अन्य परीक्षण करना चाहिए।
3. कैलीफोर्निया थनैला परीक्षणः इस परीक्षण का आधार थनैला रोगियों के दुग्ध में श्वेत रक्त कोशाओं की गणना में तथा दूध की क्षारीयता में वृद्धि हो जाती है। शोथीय द्रव दूध में मिश्रित हो जाता है। जिससे दूध में क्षारीयता भी बढ जाती है। परीक्षण हेतु एक प्लास्टिक पैडल प्रयोग किया जाता है। जेा कि चार भागों में विभाजित होता है। जिसमें थनों से सीधे दूध डाला जाता है। दूध के नमूनों में बराबर मात्रा में थायमोल ब्लू रसायन डालकर हिला कर मिश्रित किया जाता है। रोगग्रस्त पशुओं में दूध का रंग हरा नीला हो जाता है। रेाग के फलस्वरूप क्षारीय पी0 एच0 पर थाइमोल व्लू हरे नीले रंग की हो जाती है। जिससे परीक्षण में रंग परिवर्तन होता है।
4. व्हाइट साइड परीक्षणः यह परीक्षण भी दूध में श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या में बृद्धि के आधार पर निर्भर होता है। दूध की 5 बूँदें एक ऐसी कांच की प्लेट पर डाली जाती है जिसकी निचली सतह काली होती है। इसमें 4 प्रतिशत सोडियम हाईड्राक्साइड रसायन की दो बूँदे मिलाकर झाडू की एक सीक से डालकर 25 सेकेण्ड तक तीव्रता से मिश्रित करते हैं। तीव्र थनैला रोग में मिश्रण गाढ़ा हो जाता है तथा चिरकालिक रोगियों के दूध में परीक्षण के फलरूवरूप श्वेत कतरे बन जाते हैं।
5. **क्लोराइड परीक्षणः** यह परीक्षण थनैला रोगियों के दूध में क्लोराइड की अधिक मात्रा पर निर्भर रहता है।

थनैला रोग के निदान के हेतु नमूने एकत्र करनाः रोगी एवं मृत दोनो ही पशुओं से थनैला के निदान पदार्थ एकत्र करके प्रयोगशाला भेजे जाते हैं। रोगी पशुओं से दूध के नमूने निम्न प्रकार से एकत्र किये जाते हैं।

1. गुनगुने पानी से अयन को साफ करना चाहिए
2. अयन की जीवाणुनाशक औषधि में भीगे एक कपड़े से खूब अच्छी तरह से पोछना चाहिए।
3. अयन को सुखाना चाहिए।
4. थन के छिद्र पर टिंचर आफ आयोडीन लगाकर इसे सुखाना चाहिए।
5. स्वच्छ परीक्षण नलियों बोतलों पर दाहिना अगला दाहिना पिछला, बाया अगला तथा बाँया पिछला का लेबल लगाना चाहिए।
6. विभिन्न थनों से दूध इन बोतलों में एकत्र करके तथा उन पर कार्क या ढक्कन लगाकर तुरन्त प्रयोगशाला परीक्षण हेतु भेज देना चाहिए। यदि परीक्षण करने में विलम्ब हो तो नमूनों को फ्रिज में रख देना चाहिए। नमनों हेतु 5 मि0 ली0 दूध पर्याप्त होता है।

उपचार

थनैला रोग की चिकित्सा हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि रोग का प्रारम्भिक अवस्था में निदान करके रोग कारण का पता लगाकर उसकी चिकित्सा की जाए। ग्राम पाजीटिव जीवाणुअें का पेन्सलीन तथा ग्राम निगेटिव जीवाणुओं का स्ट्रेप्टोमाइसिन से उपचार किया जाता है। आरियोमाइसिन टेरामाइसिन तथा सल्फा औषधियों से भी रोग का उपचार किया जाता है।

जीवाणुनाशक औषधि का चुनाव औषधि संवेदनशीलता परीक्षण पर निर्भर करता है। *कारनीबैक्टीरियम पायोजेनीस* द्वारा उत्पन्न थनैला रोग को उपचार सल्फोनामाईड या किसी टेट्रासाईक्लीन द्वारा किया जाता है। इस उपचार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि थन से निस्वंर दूध भी निकाला जाय।

फँदीजनित थनैला की चिकित्सा हेतु आयोडीन तेल या मरथीयोलेट लाभप्रद रहता है। मरथीयोलेट के 1 प्रतिशत घोल की 20 मि0 ली0 मात्रा 2–3 दिनों तक देनी चाहिए। समस्त थनैला रोगियों में जिन्हें औषधि दी जाती है थन से दूध निकालना अत्यन्त आवश्यक होता है। आवश्यकता हेाने पर सायफन द्वारा भी दूध निकाला जा सकता है।

बचाव व रोकथाम

चूँकि थनैला रोग का कोई एक विशिष्ट कारक नहीं है तथा यह अनेकों जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है अतः थनैला रोग के प्रति टीका विकसित करना कठिन है। थनैला रोग के नियत्रंण के लिए स्वच्छता संबंधी उपाय सर्वाधिक उपयोगी है। थनों को दूध दूहने के पूर्व तथा पश्चात् जीवाणु नाशक औषधियों से धोना चाहिए। थनैला के बचाव के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि पशुओं के थनों को चोंटों, घावों आदि से बचाना चाहिए। यदि थन या अयन पर चोट लगी हो तो उसका चिकित्सक द्वारा तुरन्त उपचार करवाना चाहिए। गोशालाओं में गायों की चेचक को भी नियंत्रित रखना चाहिए। थनैला के रोगियों का निदान करके उनका उपचार करना चाहिए। थनैला ग्रसित पशुओं का दूध बछियों या अन्य नवजात शिशुओं केा नहीं पिलाना चाहिए। पशुशालाओं में खूब स्वच्छता रखनी चाहिए।

दूध दुहने वाली मशीन की भी खूब सफाई रखनी चाहिए। उत्तम प्रबन्ध व्यवस्था से थनैला को बहुत कम किया जा सकता है।

7. क्षय रोग या तपेदिक

यह स्तनधारी पशुओं का अधिक समय तक चलने वाला संक्रामक रोग है जो *माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस* नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है जिसमें फेफड़ों तथा अन्य अंगों पर गांठें बन जाती हैं। जिन के केंन्द्र में मरे ऊतकों का ढेर तथा कैल्शियम जमा हो जाते है और उसके चारों ओर विभिन्न प्रकार की कोशिकाऐं जमा हो जाती हैं। क्षय रोग, बहुत अधिक महत्वपूर्ण रोग है क्योंकि यह पशुओं से मनुष्यों में भी हो जाता है।

कारण

क्षय रोग का कारण *माइकोबैक्टीरियम टयूबरकुलोसिस* नामक जीवाणु है। इस जीवाणु के दो प्रकार हेाते हैं– 1. *माइकोबैक्टीरियम टयूबरकुलोसिस* एवं 2. *माइकोबैक्टीरियम बोविस*।

खोजों से ज्ञात हुआ कि मनुष्यों में लगभग 15 प्रतिशत क्षय रोग पशुओं द्वारा ही फैलता है। रोगी पशुओं के मल, मूत्र, लार और दूध में रोग कारक जीवाणु पाए जाते हैं जिनसे यह मनुष्यों में फैल जाता है। हमारे देश में पशुओं में क्षय रोग की आवृति लगभग् 3–4 प्रतिशत है। इस रोग से सभी प्रकार के पशु गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर आदि प्रभावित होते हैं। क्षय रोग मुख्य रूप से विदेशी या संकर नस्ल के गोपशुओं में अपेक्षाकृत अधिक होता है।

लक्षण

क्षय रोग में पशुओं में विभिन्न प्रकार की क्षतियाँ उत्पन्न है। अतः विभिन्न प्रकार के लक्षण भी उत्पन्न होते हैं विभिन्न जाति के पशुओं में ही नहीं अपितु एक ही जाति के पशुओं में भी भिन्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न हेाते हैं। कई बार लक्षण बिलकुल ज्ञात ही नहीं हो पाते हैं अतः लक्षणों के आधार पर रोग निदान अत्यन्त जटिल होता है। सामान्यतः रोगी पशुओं में कमजोरी, भोजन के प्रति अरूचि, दुर्बलता का निरन्तर बढना, हल्का ज्वर इत्यादि लक्षण होते हैं। अधिकाँश गोपशुओं में रोग चिरकालिक होता है। पशुओं की सामान्य अवस्था खराब हेाती है। पशुओं में बुखार नहीं होता है। गोपशुओं के क्षय रोग में ष्वसन संस्थान, अयन, जनन अंगों, पाचन संस्थान तथा रक्त परिवहन तंत्र भी प्रभावित होते हैं। नवजात बछडों में जन्मजात क्षयरोग भी देखा जाता है। इस रोग में पशुओं को साँस लेने में कठिनाई होती है। विभिन्न अन्तराल पर सूखी खाँसी आती है। आले द्वारा परीक्षण करने पर फेफड़ों की रेल्स ध्वनि सुनाई देती हैं। गले में छूकर देखने पर पशुओं को पीड़ा तथा खाँसी उत्पन्न होती है। अयन के ऊपर की लसीका गांठों में सूजन होती है। लसिका गांठों में गांठें बन जाती हैं व पुरानी होने पर उनमें कैल्शियम जमा हो जाता है।

निदान

क्षय रोग के प्रभावकारी नियंत्रण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस रेाग का सही और शीघ्र निदान हो। निम्न आधार पर रोग निदान किया जाता हैः

1. **इतिहासः** पशु झुण्ड, विशिष्ट क्षेत्र के इतिहास से रोग के निदान में सहायता मिलती है। कई गौशालाओं में क्षय रोग के प्रकोप का इतिहास पाया जाता है।

2. **क्लिनिकल परीक्षणः** पशुओं का गंभीरता पूर्वक निरीक्षण करके क्षय रोग की शंका की जा सकती है। वाह्य लसीका ग्रथियों को छूकर परिक्षण करने से, रोग के लक्षण, ऑस्कलटेंशन, एक्सरे इत्यादि, द्वारा निदान में सहायता मिलती है।

3. **शव परीक्षणः** पशुओं के शवपरीक्षण करने पर गांठें मिलती हैं। जिनमें कैजियेशन तथा कैल्सीफिकेशन होता है। अतः ऊतक विकृति विज्ञान द्वारा विशिष्ट क्षतियाँ अवश्य अध्ययन करना चाहिए तथा जील नील्सन विधि द्वारा एसिड फास्ट जीवाणुओं की उपस्थिति को प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

4. **जीवाणु परीक्षणः** इस विधि द्वारा शरीर के विभिन्न स्रावों उत्सर्जनों व ऊतकों में क्षय रोग जीवाणु की उपस्थिति का परीक्षण किया जाता है।

5. **ट्यूबरकुलीन परीक्षणः** इस परीक्षण में 0.1 मिली टयूबरकुलीन, सावधानीपूर्वक त्वचा की भीतरी पंक्तियों में टयूवरकुलीन सिरिंज की सहायता से लगायी जाती है। गोपशुओं में यह सुई पूँछ की त्वचा या भग या गरदन में लगायी जाती है। लगभग 48–72 घंटों बाद प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाता है। साधारणरूप से स्वस्थ पशुओं में कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई देती है। परन्तु क्षय ग्रस्त पशुओं में गर्म, पीड़ायुक्त सूजन सुई लगाने वाले स्थान पर उत्पन्न हो जाती है। इस परीक्षण के परिणाम को देखते समय परीक्षण द्वारा उत्पन्न प्रतिक्रिया पर घ्यान केन्द्रित किया जाता है। त्वचा की मोटाई नापने पर यह सामान्य से दुगुनी या अधिक होती है।

उपचार

क्षय रोग के चिकित्सा की संस्तुति नहीं दी जाती है क्योकि

1. अभी तक कोई ऐसी औषधि की खोज नहीं हुई जोकि शरीर के प्रत्येक संस्थान मे पहुँच कर टयूबरकिल पर आक्रमण कर सकें।
2. चिकित्सा आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं है।
3. रासायनिक उपचार हेतु यह आवश्वयक होगा कि पशु चिकित्सक प्रत्येक संदिग्ध रोगी पर निकट से दृष्टि रखें। यह कार्य उस समय तक करना पड़ेगा जब तक वह पशु जीवित है।
4. अप्रभावी चिकित्सा प्रयत्नों से औषधि प्रतिरोध उत्पन्न हो जाता है।

बचाव एवं रोकथाम

क्षय रोग नियंत्रण हेतु विभिन्न विधियाँ है, जो इस प्रकार हैंः

टीका

इस रोग के बचाव के लिए बी.सी.जी. का टीका लगाया जाता है। परन्तु कई कारणों से इसे स्वीकार नहीं किया गया है।

1. बी.सी.जी. के हल्के प्रकार की प्रतिरक्षा उत्पन्न हेाती है।
2. जिस पशु को एक बार बी.सी.जी. का टीका लग जाता है वह टयूबरकुलीन परीक्षण में पॉजीटिव हो जाता है। ऐसे पशुओं में रोग निदान हेतु ट्यूबरकुलीन परीक्षण का उपयोग नहीं हो पाता है।

8. कैंन्सर

गोपशुओं में मुख्य रूप से सींग का कैंन्सर होता है जिसे स्क्वामस सैल कारसिनोमा कहते हैं। इसके अलावा त्वचा व थनों पर पेपीलोमा तथा जिगर में पित्तनली का कैंन्सर प्रमुख हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में मूत्राशय का कैंन्सर ब्रेकन फर्न के कारण होता देखा गया है।

कारण

हाँलंकि पशुओं में कैंन्सर का कोई निश्चित कारण नहीं है। गोपशुओं में सींग का कैंन्सर धूप में उपस्थित पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से होता है। मुख्य रूप से यह बैलों में देखा गया जिनको बधिया कर दिया जाता है। अतः कुछ वैज्ञानिक इसे हार्मोन में आयी गड़बड़ी का परिणाम मानते हैं। हमारे यहाँ बैलों के सीगों को पेन्ट या काले तेल से रंग दिया जाता है। यह रंगाई कैंन्सर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है क्योंकि इनमें कैंन्सर बनाने वाले रसायन रहते हैं। सीगों के पास रस्सी या जूआ बंधने के कारण भी वहां लगातार काफी समय तक निंरतर दबाव/खुरचन आदि होती रहती है जो धीरे–धीरे कैंन्सर का रूप ले लेती है। थनों तथा त्वचा पर मस्से या पेपीलोमा एक प्रकार के विषाणु के प्रकोप से होते हैं। जिगर के तथा पित्तनली के कैंन्सर में अफलाटॉक्सिन तथा यकृत कृमि फेसियोला महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। जबकि मूत्राशय का कैंन्सर ब्रेकन फर्न नामक घास से पहाड़ी क्षेत्रों के गोपशुओं में देखा गया है।

लक्षण

कैंन्सर से प्रभावित जानवर कमजोर होता जाता है व सूखता रहता है। फलस्वरूप प्रभावित पशु का वजन कम हो जाता है। यदि सींग का कैंन्सर हो तो सींग टूट जाता है या कमजोर होकर गिर पड़ता है। वहाँ से खून बहता है व सींग की जड़ में कमजोर किस्म के ऊतक जो कैन्सर के होते हैं काफी बढ़ जाते हैं। जानवर का उत्पादन कम हो जाता है। चल–फिर नहीं पाता तथा कमजोर होकर एक तरफ जमीन पर गिर पड़ता है। जिगर के कैंन्सर में प्रभावित पशु को दस्त आते हैं व कुछ दिन में ही जानवर इतना कमजोर हो जाता है कि खडा नहीं रह पाता। थनों या त्वचा पर मस्से जैसे पेपीलोमा सामान्यतयाः कोई खास हानिकारक प्रभाव नहीं डालते। यदि थन के अग्र भाग में हैं तो दूध निकालने में परेशानी करते हैं।

निदान

लक्षण तथा विकृति के आधार पर निदान किया जाता है। पूर्ण निदान के लिए सूक्ष्म विकृति विज्ञान की आवश्यकता होती है। जिससे पता चलता है कि किस प्रकार का और कितना खतरनाक कैंन्सर है।

उपचार

शल्य चिकित्सा द्वारा कैंन्सर की गांठ को शरीर से निकाल दिया जाता है। बाद में रसायन चिकित्सा या रेडियोचिकित्सा की जाती है।

बचाव व रोकथाम

इनकी आवृति बहुत कम है तथा किसी निश्चित कारण का भी पता नहीं है। अतः कोई खास बचाव व नियन्त्रण के उपाय नहीं सुझाये जा सकते। फिर भी जिगर के कीड़ों का बचाव करना चाहिए।

9. संक्रामक गर्भपात (ब्रूसैलोसिस)

यह मुख्य रूप से गोपशुओं तथा मनुष्यों का एक जीवाणु जनित रोग है, जोकि ब्रूसैला प्रजाति के जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग में प्रजनन अंगों, भ्रूण की झिल्लियों की सूजन, गर्भपात, बाँझपन तथा अन्य अंगों में स्थानीय क्षतियाँ उत्पन्न हैं। ब्रूसैलोसिस रोग पशुओं से मनुष्यों में फैलता है अतः इस रोग का जन स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है। केवल गाय तथा भैंस में ब्रूसैलोसिस रोग से भारत में प्रतिवर्ष अनुमानतः 24 करोड़ रूपयों की आर्थिक हानि होती है। प्रजनन योग्य गाय तथा भैंस में ब्रूसैलोसिस रोग की आवृति 3–4 प्रतिशत पायी गयी है। रोग व्यापकीयता के अनुसार लगभग 30 लाख पशु इस रोग से ग्रसित हैं जिसमें से तिहाई पशुओं में गर्भपात होता है व इस प्रकार 10 लाख बछडों की हानि होती है। संक्रमण ग्रसित पशुओं की प्रजनन क्षमता में 20 प्रतिशत की कमी होती है अर्थात लगभग 6 लाख पशुओं पर इसका प्रभाव पड़ता है। पुनः ब्रूसैलोसिस से 25 प्रतिशत दुग्ध उत्पादन में कमी होती है।

कारण

इस रोग का कारण ब्रूसैला प्रजाति के *ब्रूसैला एबॉर्टस* एवं *ब्रूसैला मेलीटेंनसिस* नामक जीवाणु हैं।

लक्षण

जीवाणु शरीर में प्रवेश करने के पश्चात बीमारी उत्पन्न करने में 3 सप्ताह से 6 माह तक का समय लेते है। इस रोग में गोपशुओं में गर्भपात, स्थायी या अस्थायी बाँझपन, जेर (अपरा) न गिरना, बृषण शोथ, थनैला, जोड़ों में सूजन, दुर्बल बछडों का जन्म होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ब्रूसैलोसिस में संक्रमण के पश्चात अधिकाँश गायेां में गर्भकाल के अन्तिम तृतीय भाग (6–9 माह) में गर्भपात होता है। संवेदनशील गायों के झुण्डों में 90 प्रतिशत तक गर्भपात हो सकता है। कुछ पशुओं में गर्भपात के बाद जेर नहीं गिरती है। सर्वाधिक गर्भपात प्रथम तथा द्वितीय गर्भकाल में होते हैं जबकि इन पशुओं से सबसे अधिक उत्पादन प्राप्त होने की आशा होती है।

निदान

ब्रूसैलोसिस रोग का निदान निम्न आधार पर किया जाता है।

1. **रोग का इतिहासः** पशुओं में गर्भपात, जेर रूकना, बाँझपन इत्यादि से रोग का संदेह किया जाता है।
2. **क्षतियाँः** गर्भपात होने के पश्चात जेर मे विशिष्ट प्रकार की क्षतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह चमड़े की तरह का हो जाता है। इस प्रकार की विकृति किसी अन्य रोग में नहीं देखी जाती हैं।
3. **एग्लूटिनेषन परीक्षणः** ट्यूब एग्लूटिनेशन परीक्षण तथा रेाजबंगाल प्लेट एग्लूटिनेशन परीक्षण द्वारा रक्त के सीरम का परीक्षण किया जाता है। समस्त विश्व में इस परीक्षण का ब्रूसैलोसिस निदान हेतु अत्यधिक उपयोग किया जाता है। परीक्षण के परिणाम की विवेचना के लिए टीका लगे पशु में 1:80 सीरम को तथा बिना टीका लगे पशु में 1:40 सीरम को रोग ग्रसित माना जाता है।
4. **जीवाणु का पृथकीकरणः** रोगी पशुओं के ऊतकों तथा स्रावों से जीवाणु का पृथकीकरण किया जाता हैं। भ्रूण के चतुर्थ पेट के पदार्थों, जेर, गर्भाशय के स्रावों एवं वीर्य से भी

जीवाणु का पृथकीकरण किया जाता है। इन पदार्थो में जीवाणुओं को इम्यूनोपरोक्सीडेज या इम्यूनोफ्लोरीसेंन्स द्वारा प्रदर्शित भी किया जा सकता है।

5. **गिनीपिग इनोकुलेषन तथा एग्लूटिनेषन परीक्षणः** जेर के ऊतक को गिनीपिग में इनाकुलेट किया जाता है तथा इस पशु में क्षतियाँ उत्पन्न होने से पूर्व ही गिनीपिग में रोग का निदान एग्लूटिनेशन परीक्षण द्वारा किया जा सकता है।
6. **कम्पलीमेंट फिक्षेसन परीक्षणः** यह एक विश्वसनीय निदानात्मक परीक्षण है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कम्पलीमेंट फिक्सींग प्रतिपिण्ड रोगी पशुओं के रक्त में एग्लूटिनिन बनने से पूर्व बन जाती है अन्यथा एग्लूटिनेशन ही सरल, शीघ्र परिणाम देने वाला परीक्षण माना गया है।
7. **दुग्ध सीरम परीक्षण या मट्ठा परीक्षणः** यह परीक्षण भी रोग निदान हेतु अत्यधिक संवेदनशील तथा उपयोगी है।
8. **ब्रूसैला रिंग परीक्षण या एर्बाटस बैंग रिंग परीक्षणः** इस परीक्षण द्वारा गोपशुओं में ब्रूसैलोसिस का निदान किया जाता है। परीक्षण हेतु *ब्रूसैला एबॉर्टस* के रंगीन प्रतिजन को 2 मि.ली. पूर्ण दूध में मिश्रित करते हैं। परीक्षण नली को थोड़ी देर रखने के पश्चात रंजित जीवाणु कोशिकाएं दूध की क्रीम के साथ ऊपर की ओर आ जाती हैं। यदि पशु ब्रूसैला संक्रमण से ग्रसित होगा तो बैगनी रंग की तह बन जाती है। इस घनात्मक परीक्षण में जीवाणुओं का एग्लूटिनिन द्वारा एग्लूटिनेशन हो जाता है तथा रंजित जीवाणु के समूह वसीय पिण्डों के साथ दुध की सतह पर पहुँच जाते हैं। ऋणात्मक परिणामों में दुध का रंग हल्का बैगनी या क्रीम रंग का श्वेत रहता है। इस परीक्षण का उपयोग गायों के झुण्डों में रोग निदान हेतु किया जाता है।

उपचार

इस रोग का पशुओं में कोई उपचार नहीं है। मनुष्य में लम्बे समय तक एन्टीबायोटिक दवाऐं चिकित्सक की सलाह से ली जा सकती हैं।

बचाव व रोकथाम

ब्रूसैलोसिस रोग से बचाव निम्न उपायों को अपनाकर किया जा सकता हैः

1. **टीकाः** कॉटन स्ट्रेन–19 नामक टीके का उपयोग रोग के बचाब हेतु किया जाता है। संक्रामक उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को मंद य कमजोर करके इस टीके का निर्माण किया जाता है। यह टीका 4–8 माह की आयु के गोपशुओं को लगाया जाता है। परन्तु भारतीय पशुओं में 6–12 माह की आयु में भी लगाया जा सकता है। कॉटन स्ट्रेन–19 टीका बछडों की अपेक्षा अधिकतर बछियों को लगाया जाता है। टीके को 5 मि.ली. मात्रा अधोत्वचा विधि से लगायी जाती है। बछियों में टीका लगाने का प्रमुख उद्देश्य यह है कि टीका लगी बछियों का ऐसा झुण्ड उत्पन्न किया जाए जो गर्भपात के संक्रमण को सहन कर सके। प्रौढ़ गायों को टीका लगाने से गर्भपातों की संख्या कम हो जाती है। प्रजनन कार्य हेतु प्रयोग होने वाले साँडों में यह टीका नहीं लगाना चाहिए। जिस किसी गौशाला या पशु झुण्ड में बुसैला रोग का पता चले तो नियंत्रण हेतु सभी वयस्क मादा पशुओं में यह टीका लगा देना चाहिए, ताकि रोग नियन्त्रित हो सके।

2. **स्वच्छता:** चूँकि गर्भपात के समय हुए स्रावों, मृत बछड़ों व जेर द्वारा जीवाणुओं का प्रसार होता है। अतः इन पदार्थो का विशेष सावधानी के साथ गोशालाओं से बाहर गढ्ढों में दबा देना चाहिए।

10. पुराना कीटाणु अतिसार

जोहनीज रोग गोपशुओं का एक विशिष्ट चिरकालिक संक्रामक रोग है जोकि *माइकोबैक्टीरियम पैराट्यूबरकुलोसिस* द्वारा उत्पन्न होता है तथा जिसमें लगातार पतले दस्त, बढ़ती हुई दुर्बलता, आँत की दीवार का मोटा होना, मुख्य रूप से पाया जाता है तथा अन्त में रोगी पशु की मृत्यु हो जाती है। पशुओं के संक्रामक रोगों में जोहनीज रोग का आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व है। इस रोग से पशुओं की मृत्यु से अधिक हानियाँ अस्वस्थता दर, पशुओं की मंद वृद्धि, धीरे–धीरे पशु के शरीर का भार घटना, दुग्ध और माँस उत्पादन में कमी, दुर्बलता के कारण माँस परीक्षण के समय पशुओं के माँस को रद्द करना तथा घटिया किस्म के ऊन उत्पादन से होती है। इस रोग की हमारे देश में 3–4 प्रतिशत व्यापकीयता देखी गयी है। भारत के लगभग समस्त प्रान्तों में जोहनीज रोग का गोपशु में प्रकोप होता पाया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में संगठित क्षेत्र की पशुशालाओं में रोग की आवृति अधिक है जोकि 30 प्रतिशत तक पायी गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भारत में इस रोग का प्रवेश पश्चिमी देशों से आये पशुओं द्वारा हुआ है।

कारण

रोग का कारण *माइकोबैक्टीरियम पैराट्यूबरकुलोसिस* नामक एक जीवाणु है इस जीवाणु की मुख्य रूप से दो उप–प्रजातियाँ हैं, गोपशुओं की तथा भेड़ों की। यह जीवाणु क्षय रोग के जीवाणु *माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस* से कुछ छोटा तथा उसी की तरह मोटा होता है।

लक्षण

रोग का ऊष्मायन काल बहुत लम्बा होता है जो सामान्यतः 2–6 वर्षो या और अधिक लम्बा होता है। 10–20 प्रतिशत रोगग्रस्त पशुओं में तीव्र दस्त तथा कमजोरी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। कभी–कभी झुण्ड में यदाकदा कोई पशु रोग के लक्षण प्रदिर्शित करता है। कुछ पशु जोहनीज रोग परीक्षण करने पर प्रतिक्रिया तो दिखाते हैं परन्तु ऐसे जानवरों का शव परीक्षण पर कोई क्षति नहीं दिखाई देती है। रोगी पशुओं में चिरकालिक बदबूदार दस्त उत्पन्न हो जाते हैं। जिसमें गैस के बुलबुले भी होते हैं। पशु सामान्य रूप से खाते हैं। परन्तु दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। निरन्तर दस्तों के कारण रोगी पशु कमजोर हो जाता है और यह कमजोरी निरन्तर बढ़ती रहती है व रोगी पशु की चमड़ी हड्डियों से लग जाती है तथा हड्डियाँ दिखने लगती है। भेड़ों में रोग के लक्षण गोपशुओं की तरह के ही होते है। परन्तु इनमें प्रायः दस्त कम होते हैं। बकरियों में यह रोग बहुत उग्र रूप धारण कर लेता है। जिससे बकरियों के झुण्ड़ों में इस रोग से बहुत अधिक मृत्यु हो सकती है।

निदान

1. **रोग का इतिहास:** युवा और वयस्क पशुओं में निरन्तर दस्त आना तथा कमजोरी बढना। ये दस्त सामान्य उपचार से ठीक नहीं होते हैं।
2. **रोग के लक्षण:** बदबूदार पतले दस्त तथा निरन्तर बढती हुई कमजोरी रोग के प्रमुख लक्षण हैं। रोग की अन्तिम अवस्था में पशु अत्यन्त दुर्बल हो जाते हैं तथा अस्थियों का ढाँचा दिखता है।

3. **शव परीक्षण क्षतियाँः** बड़ी आँत की दीवार बहुत मोटी हो जाती है तथा इसमें विशिष्ट प्रकार की बलियाँ व गांठें दिखाई देती हैं। जो दुबारा फैल नहीं पाती है।
4. **मल परीक्षणः** रोगी पशुओं के दस्त का परीक्षण कर के उसमें रोग के जीवाणु प्रदर्शित किए जा सकते हैं इस के लिए एसिड फास्ट रंग दिया जाता है तथा उपकला कोशिकाओं में लाल रंग के छोटे दण्डाणु दिखाई देते हैं। इस परीक्षण द्वारा रोग का शीघ्र निदान किया जा सकता है परन्तु इस विधि से केवल 30–50 प्रतिशत रोगी पशुओं का पता लगाया जा सकता है।
5. **मलाषय पिंच परीक्षणः** मलाशय से दीवार का एक छोटा ऊतक निकालकर उसमें रोग के एसिड फास्ट जीवाणु प्रदर्शित किए जाते हैं। मलाशय पिंच द्वारा भी सभी रोगियों का निदान संभव नहीं है। इसके लिए ये परीक्षण कई बार दोहराये जाते हैं।
6. **जोहनीज परीक्षणः** *माइकोबैक्टीरियम पैराट्यूबरकुलोसिस* को कृत्रिम द्रव्य माध्यम में उगाकर दण्डाणु को छानकर जोहनीज नामक पदार्थ बनाया गया है जिस का उपयोग जोहनीज रोग के निदान में किया जाता है। गोपशुओं में इसका डबल इन्ट्राडरमल परीक्षण किया गया है।

इस परीक्षण हेतु पशु की गर्दन के मध्य में 10 वर्ग सेन्टीमीटर क्षेत्र के बालों को ब्लेड से साफ करने के पश्चात् इस स्थान को खूब स्वच्छ कर लिया जाता है। त्वचा के मोड़ को मजबूती से अंगूठे तथा अंगुली के बीच पकड़ कर 0.1 मि.ली. जोहनीन की सुई लगाते हैं। यह सुई खाल में ही लगायी जाती है तथा सही सुई लगने के पश्चात् त्वचा में एक छोटी मटर के दाने की तरह सूजन उभर आती है। सुई लगने के 72 घंटे पश्चात् उस स्थान पर जलन, कठोरता, सूजन के लिए निरीक्षण किया जाता है।

त्वचा की माप सुई लगाने के 72 घंटों पश्चात् वर्नियर कैलीपर्स द्वारा की जाती है। जोहनीज रोग से ग्रसित पशुओं में त्वचा की माटाई 48 घंटें के पश्चात बहुत बढ़ जाती है। स्पर्श करने से यह क्षेत्र अधिक गरम, कठोर तथा सूजन युक्त हो जाता हैं। फैली हुई, सूजन इस प्रतिक्रिया की प्रमुख उपलब्धि है। त्वचा की मोटाई दो गुनी से अधिक हो जाती है।

उपचार

जोहनीज रोग की कोई प्रभावकारी चिकित्सा उपलब्ध नहीं है। लाक्षणिक चिकित्सा से रोग के लक्षणों और दस्तों को तीव्रता को बढ़ने से रोका जा सकता है। परन्तु इससे झुण्ड़ में संक्रमण के फैलने का भय और अधिक हो जाता है। क्योंकि चिकित्सा से रोग पूर्णरूपेण ठीक नहीं होता है। अतः प्रभावित पशुओं को अलग करके ही अन्य पशुओं में संक्रमण फैलने से रोका जा सकता है।

बचाव व रोकथाम

जोहनीज रोग के जीवित दण्डाणुओं से निर्मित टीके का प्रयोग रोग की रोकथाम के लिए होता है। यह टीका अधोत्वचा विधि द्वारा लगाया जाता है तथा प्रति टीके में 5–10 मि.ली. दवा लगायी जाती है। टीके को लगाने से पूर्व लेनोलिन नामक एडजुवेंट में मिश्रित करते हैं। इस टीके के उपयोग से सर्वप्रथम हानि यह है कि पशुओं को रोग का टीका लगाया जाता है वे रियेक्टर बन जाते हैं। ऐसे पशुओं में जोहनिन परीक्षण नहीं किया जा सकता है तथा ये "ट्यूबरकुलिन' के प्रति भी संवेदनशील हो जाते हैं। इस प्रकार जोहनीज रोग तथा क्षय रोग के प्राकृतिक रोगी पशुओं में अन्तर करना कठिन हो जाता है।

विभिन्न रोगों से बचाव के लिए यह टीकाकरण कार्यक्रम अपनाने का प्रयत्न करें।

क्रम संख्या	आयु/गोवंष वर्ग	टीका
1.	बछड़े/बछड़िया 5–6 महीने की आयु	खुरपका मुँह पका का टीका।
2.	बछड़े/बछड़िया 6–7 महीने की आयु	गलघोटू का टीका।
3.	बछड़े/बछड़िया 9–10 महीने की आयु	खुरपका मुँह पका का टीका।।
4.	बछड़े/बछड़िया 1 वर्ष की आयु	1. गलघोंटू का दूसरा टीका 2. लंगडी ज्वर की टीका वर्षा से 3. पहले ब्रुसैलोसिस का टीका
5.	प्रति 6 महीने पर	खुरपका मुँहपका का टीका
6.	प्रतिवर्ष	1. गलघोंटू का टीका, वर्षा से पहले 2. लंगडी ज्वर का टीका

गो–वंश का चारा–दाना प्रबन्धन

बी०एन० शाही एवं रामस्वरूप सिंह चौहान
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)

प्रत्येक गोशाला फार्म को लाभदायक बनाने हेतु यह परम आवाश्यक है कि हम वर्ष भर हरे चारे की उपलब्ध को सुनिश्चित करें जिससे हमे चारा बाहर से न खरीदना पड़े। हरे चारे एवं दाने की आवश्यकता निसन्देह गोवंश की संख्या तथा उनकी अवस्था पर निर्भर करती है।

प्रत्येक वर्ग के गोवंश के लिए प्रति 100 कि0ग्रा0 शरीर भार पर 2.5–3.0 कि0ग्रा0 शुष्क पदार्थ देना चाहिए। इस शुष्क पदार्थ (Dry matter) की पूर्ति 25 प्रतिशत दाने से तथा शेष 75 प्रतिशत चारे से पूरी करनी चाहिये। हरे एवं शुष्क चारों की अनुपात क्रमशः 2:1 होना चाहिए। अतः साधारण भाषा में दूध देने वाली गायो को 40 कि0ग्रा0 प्रतिदिन, सूखी गायो को 30 कि0ग्रा0 प्रतिदिन, 2–3 वर्ष के आयु वाले पशुओं को 20 कि0ग्रा0 प्रतिदिन, 1–2 वर्ष वाले पशुओं को 10 कि0ग्रा0 प्रतिदिन 1 से 2 वर्ष के बच्चों को औसतन 5 कि0ग्रा0 प्रतिदिन ताजा हरे चारे तथा सूखे चारे 75:25 में आवश्यकता होती है। इस हरे चारे के अतिरिक्त गाय में 3.0 कि0ग्रा0 दूध पर 1.0 कि0ग्रा0 दाने की आवश्यकता होती है। साथ ही गोपशुओं के शरीर के रखरखाव के लिए 1.0 कि0ग्रा0 अतिरिक्त दाना की आवश्यकता होती है।

गौपशुओं को खिलाए जा सकने वाले कुछ सामान्य खाद्य अवयव

हराः रबीः जई, बरसीम, रिजका
खरीफः ज्वार, मक्का, एम.पी.चरी, बाजरा, लोबिया व ग्वार
वार्षिकः दूब घास, नैपियर घास, पैरा घास
सूखा चाराः गेहूं का भूसा, पुआल, अरहर का भूसा, मक्के या ज्वार की कडबी
दानेः मक्का, जौ, जई
खलः मूंगफली, सरसों, सोयाबीन, बिनौला
चोकरः गेहूं का चोकर, तेल निकला घूटा

गौशालाओं में नांद कठोर, अपारगम्य तथा अम्ल एवं क्षार रोधी होनी चाहिए जिससे कि चारे–दाने के अवयव उससे बाहर रिसकर न जायें तथा इसकी सफाई रोजाना अवश्य होनी चाहिए। कई बार ऐसा देखा गया है कि चारा डालते समय नांद में कूड़ा–करकट/कीड़े मकोडे पड़े रहते हैं। अतः नांद की अच्छी तरह सफाई करें, फिर उसमें चारा–दाना डालें।

गौ पालन के लिए हरे चारों का उत्पादन

गौपशु के आहार में हरे चारे का बहुत महत्व है। हरे चारों को गौपशु बड़े चाव से खाते हैं। इनमें सूखे चारों की अपेक्षा पोषक तत्वों की मात्रा भी अधिक होती है। विषेष रूप से इनमें विभिन्न विटामिनों की, जो कि शरीर की अनेकों क्रियाओं के लिए अति महत्वपूर्ण एवं आवश्यक तत्व हैं, मात्रा प्रचुरता में पाई जाती है। ये ऊर्जा व प्रोटीन से भी भरपूर होते हैं तथा आसानी से पाच्यशील भी होते हैं। अतः हरे चारों का प्रयोग कर गौपशु आहार में दानों की मात्रा को कम किया जा सकता है। चूंकि दाने अपेक्षाकृत महंगे मिलते हैं तथा

किसान को बाजार से खरीदने पड़ते हैं। अतः गौपशु आहार में हरे चारों का प्रयोग करके गौपशु के खाने के खर्च को घटाया जा सकता है तथा बाजार पर निर्भरता कम की जा सकती है। साधारणतः हरे चारों में खनिज तत्वों की मात्रा भी अपेक्षाकृत अधिक होती है इस प्रकार हरे चारों का प्रयोग करके गौपशुओं को खनिजों की कमी के कारण होने वाली अनेकों बीमारियों से भी बचाया जा सकता है।

हरा चारा पशुओं के आहार में विशेष महत्व रखता हैं। इनसे पोषक तत्व रातव की अपेक्षा कम दरों पर प्राप्त होते हैं। वर्ष भर हरे चारे बोने एवं काटने का समय की सारणी निम्नानुसार वर्णित हैः–

	चारे का नाम	बोने का समय	काटने का समय
(क)	**रबी की फसले**		
	बरसीम	प्रथम सप्ताह अक्टूबर	जनवरी से अप्रैल
	रिजका (लूर्सन)	अक्टूबर एवं नवम्बर	जनवरी से जून
	जई	अक्टूबर एवं नवम्बर	जनवरी से अप्रैल
	सरसों (हरी)	अक्टूबर एवं नवम्बर	जनवरी से अप्रैल
(ख)	**जायद फसलें**		
	अगेती मक्का	अन्तिम सप्ताह फरवरी	अन्तिम सप्ताह अप्रैल
	अगेती ज्वार	अन्तिम सप्ताह फरवरी	अन्तिम सप्ताह अप्रैल
	अगेती लोबिया	अन्तिम सप्ताह फरवरी	अन्तिम सप्ताह अप्रैल
	अगेती ग्वार	अन्तिम सप्ताह फरवरी	अन्तिम सप्ताह अप्रैल
	अगेती बाजरा	अन्तिम सप्ताह फरवरी	अन्तिम सप्ताह अप्रैल
(ग)	**खरीफ फसले**		
	मक्का	अन्तिम सप्ताह जून	अगस्त
	ज्वार	अन्तिम सप्ताह जून	अगस्त
	लोबिया	अन्तिम सप्ताह जून	अगस्त
	ग्वार	अन्तिम सप्ताह जून	अक्टूबर
	सूडान घास	अप्रैल	वर्षभर

विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए फसल चक्र

अपने देश की जलवायु हर क्षेत्र में एक जैसी नहीं है। कहीं बहुत अधिक ठंडा है तो कहीं बहुत अधिक गर्मी। इसी प्रकार कहीं बारिश बहुतायत में होती है तो कहीं सूखा रहता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टियाँ भी अलग–अलग प्रकार की हैं। अतः यह आवश्यक नहीं है कि एक प्रकार की फसल दूसरे क्षेत्र के लिए भी अनुकूल हो। उत्तर के क्षेत्रों में सर्दी के मौसम में रबी में बरसीम, जई, सेंजी आदि फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं। जबकि पूर्व या दक्षिणी क्षेत्रों में जहां पर सामान्यतया न्यूनतम तापमान 12°–15° सें0 से नीचे नहीं आ पाता है, ऐसे क्षेत्रों में हरे चारे की फसलें जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का, मकचरी, संकर हाथी घास, गिनी, पारा, रोडस आदि घासें लगभग पूरे साल उगाई जा सकती हैं। इसी प्रकार कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सूखा सहन कर सकने वाली फसलें जैसे सूडान घास, ज्वार, बाजरा, अंजन, घास, ब्लयूपैनिक घास आदि अच्छी तरह पैदा हो सकती हैं। मक्का, जई, लोबिया, मूंग तथा मखमली घास की फसल को पानी के लिए अच्छे

निकास वाली भूमि की आवश्यकता होती है, जबकि पैरा घास, गिनी घास, सैटारिया तथा संकर हाथी घास के लिए नमी वाली जमीन अच्छी होती है। लूसर्न के लिए अच्छी उपजाऊ भूमि तथा सूखी जलवायु की आवश्यकता होती है। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, अपने देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए निम्नलिखित फसल चक्र अपनाए जा सकते हैं:–

क. उत्तरी क्षेत्र

1. मक्का+लोबिया, मक्का+लोबिया, बरसीम+सरसों।
2. मीठा सूडान+लोबिया (3 कटाई), बरसीम+जई (5 कटाई)।
3. मक्का+लोबिया, ज्वार+ग्वार, सरसों, जई+मटर।
4. मीठा सूडान+लोबिया (3 कटाई), सरसों, जई+मटर (2 कटाई)।
5. एम0पी0 चरी+मकचरी+बाजरा+लोबिया (3 कटाई) बरसीम+जई (5 कटाई)।
6. मक्का+लोबिया, मक्का+लोबिया, मक्का+लोबिया+मकचरी, जई+ सरसों।
7. मई में मक्का+लोबिया के बीच में संकर हाथी घास की रोपाई तथा सितम्बर बरसीमस+रसों के बीच में संकर हाथी घास की अन्तक्रृषि (8–9 कटाई)।
8. संकर हाथी घास+लूसर्न (बहुवर्षी) के बीच में रोपाई (हर तीन–चार साल बाद दोबारा बोएं) (8–8 कटाई साल)।

ब. मध्य तथा पश्चिमी क्षेत्र

1. ज्वार+बाजरा+ग्वार (2 कटाई), लूसर्न (वार्षिक) 6 कटाई।
2. ज्वार+ग्वार (2 कटाई), मक्का+लोबिया, मक्का+लोबिया, मक्का+ लोबिया।
3. गर्मी के मौसम में ग्वार, लोबिया के बीच में संकर हाथी घास की रोपाई (7–8 कटाई)।
4. पैरा घास+सेन्ट्रोसीमा प्यूचसेन्स या स्आइलो सेंथेस ग्रेसिलस (8–9 कटाई)।

स. पूर्वी क्षेत्र

1. मक्का + लोबिया/राइस बीन, मकचरी + ज्वार + ग्वार/राइस बीन, मक्का + लोबिया, बरसीम + सरसों + जई (3–4 कटाई)।
2. मक्का + लोबिया, ज्वार + बाजरा + मकचरी + लोबिया (2 कटाई), बरसीम + सरसों + जई (3–4 कटाई)।
3. मीठा सूडान+बाजरा+मक्का+लोबिया (2 कटाई), मक्का+मकचरी+ ज्वार+लोबिया/राइस बीन (2 कटाई) जई+मटर।
4. गर्मी के मौसम में लोबिया/राइस बीन तथा सर्दी के मौसम में बरसीम के साथ संकर हाथी घास अन्तः कृषि (8–9 कटाई)।
5. मक्का + लोबिया, दीना घास (2 कटाई), बरसीम + सरसों + जई (2 कटाई)।
6. पारा घास + सेन्ट्रोसीमा प्यूवसेन्स (8–9 कटाई)।

द. दक्षिणी क्षेत्र

1. मक्का+लोबिया, मक्का+लोबिया, मक्का+ मकचरी+ज्वार+लोबिया (2 कटाई), मक्का+लोबिया।
2. मीठा सूडान+बाजरा+ज्वार+लोबिया (2 कटाई), ज्वार+लोबिया, मक्का+ लोबिया, मक्का+लोबिया।
3. गर्मियों में लोबिया के साथ संकर हाथी घास गिनी घास की अन्तक्रृषि (8–9 कटाई)।
4. पारा घास+सेन्ट्रोसीमा प्यूवसेन्स या स्टाइलो सेन्थेस ग्रेसिलस (8–9 कटाई)।

इन फसल चक्रों से अधिकतर फसल चक्र 500 किलो हरा चारा या 100 किलो शुष्क

पदार्थ, 10 किलो पाच्य प्रोटीन (डी0एस0पी0) और 64 किलो सम्पूर्ण पाच्य पोषक तत्व (टी0डी0एन0) प्रतिदिन/प्रति हैक्टेयर भूमि पर पूरे साल दे सकते हैं। इस संतुलित तथा पौष्टिक हरे चारे से 5–6 लिटर दूध प्रतिदिन देने वाली 12 गायों का निर्वाह बड़ी आसानी से हो सकता है। बरसीम तथा लूसर्न वाले फसल चक्रों से 7–8 लिटर दूध प्रतिदिन बिना किसी दाना (रातिब मिश्रण) के ही कायम रखा जा सकता है।

हरे चारे का संरक्षण व भंडारण

गौपशुओं से अच्छा उत्पादन पाने के लिए हरे चारे का प्रयोग बहुत ही लाभदायक होता है। परन्तु यह संभव नहीं है कि वर्ष भर किसान को हरा चारा उपलब्ध हो। अतः यह प्रयास करना चाहिए कि जब हरा चारा आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध हो तब उन्हें किसी तकनीक द्वारा, उनकी पोषकता को हानि पहुंचाए बिना, संरक्षित कर लिया जाए। इसके लिए मुख्यतः दो प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है। "हे' बनाकर, जिसमें हरे चारे को सावधानीपूर्वक सुखा लिया जाता है अथवा साइलेज बनाकर, जहां हरे चारे की कुट्टी काटकर किसी गड्ढे में भरकर उसका अचार बना लिया जाता है।

"हे' बनाना

"हे' बनाने के लिए जई एक उत्तम चारा है। इसके लिए जई को (जब दानों में दूध जैसा द्रव भरा होता है) काटकर मय पत्तियों के खेत में सुखा लेते हैं। बीच–बीच में सावधानीपूर्वक ढेर को उलट–पुलट कर लेनी चाहिए। थोड़ा सूख जाने पर गांठ बनाकर तिपाई की तरह खड़ा कर देना चाहिए। इससे हवा भी मिलती रहती है। इस प्रकार चारा सूख भी जाता है और पत्तियां भी नहीं झड़तीं तथा रंग भी हरा बना रहता है। दलहनी फसल जैसे बरसीम व लूसर्न का "हे' गौपशुओं के लिए बहुत पौष्टिक रहता है। "हे' बनाते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिएः–

1. "हे' बनाने के लिए फसल में जब ँल आ जाएं तभी काटना चाहिए।
2. "हे' ऐसे मौसम में बनाएं जब धूप खूब तेज निकल रही हो तथा वर्षा के आने की संभावना न हो।
3. "हे' को सावधानीपूर्वक उलटना–पुलटना चाहिए जिससे कि पत्तियां टूटकर न गिरें। पत्तियों में (तनों की अपेक्षा) प्रोटीन तथा कैरोटीन भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं।
4. "हे' के लिए पतले तने वाले चारों का प्रयोग किया जाना चाहिए। मक्का, ज्वार, बाजरा के तने मोटे होते हैं। अतः आसानी से सूखना मुश्किल है। इसलिए इनका "हे' अच्छा नहीं बनता है।
5. यदि चारा अच्छी तरह नहीं सूखा है और नमी रह गई है तो इसमें फँदी लगने की पूरी संभावना होती है। फँदी लगा "हे' गौपशु को कभी भी नहीं खिलाना चाहिए। यह जहरीला होता है।

साइलेज

साइलेज एक प्रकार का संरक्षित हरा चारा है। साइलेज बनाने के लिए हरे चारे को काटकर किसी गोल गड्ढे में भर देते हैं। गड्ढे को सतह से थोड़ा ऊपर तक भरने के पश्चात् अच्छी तरह बन्द कर देते हैं जिससे कि उसमें बाहर से हवा बिल्कुल न जा सके। लगभग 2–2.5 माह में साइलेज बनकर तैयार हो जाता है। इसकी गन्ध हल्की खट्टी–सी होती है। इसे गौपशु को हरे चारे की कमी के समय हरे चारे के स्थान पर प्रयोग किया

जा सकता है। जिन ऋतुओं में हरे चारे पर्याप्त मात्रा में मिलते हों, उस समय इन्हें कठिनाई वाले समय के लिए साइलेज बनाकर संरक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार साइलेज एक चारे के बैंक के रूप में कार्य करता है। वर्तमान में अपने देश में गौपशुपालकों द्वारा हरे चारे से साइलेज बनाने का प्रचलन बहुत कम है, परन्तु पाश्चात्य देशों में यह कार्य बहुतायत से किया जाता है। साइलेज बनाने में निम्न सावधानियां बरतनी चाहिएः–

1. साइलेज बनाने के लिए गड्ढा ऐसे स्थान पर बनाना चाहिए कि उसमें वर्षा का पानी न घुस सके।
2. साइलेज बनाने के लिए हरे चारे को ऐसी अवस्था में काटना चाहिए जब वह न तो पूरी तरह पका हो, न ही एकदम कच्चा हो। हरे चारे की साइलेज बनाने के लिए सबसे उचित अवस्था ँल या कच्चा दाना वाली होती है।
3. चारे को छोटे–छोटे टुकड़ों की कुट्टी के रूप में काटकर गड्ढे में भरना चाहिए। कुट्टी को गड्ढे में दबा–दबाकर भरना चाहिए, जिससे कि कुट्टी के बीच हवा न रहे।
4. गड्ढे में चारे को जमीन के तल से 1–2 फुट ऊपर तक भरकर मिट्टी–गोबर से लीप देना चाहिए।

साइलेज को बनाने में मुख्य रूप से मक्का, ज्वार आदि हरे चारे की फसलें उत्तम मानी जाती हैं। हरी घासें, जैसे सूडान, नैपियर, हाथी घास आदि का भी साइलेज बनाया जा सकता है। दलहनी फसलें जैसे बरसीम, लूसर्न व लोबिया को भी साइलेज बनाने में प्रयोग किया जा सकता है परन्तु इनमें थोड़ा सा भूसा या पुआल मिला देना चाहिए। इससे साइलेज अच्छी गुणवत्ता का बनेगा। यदि साइलेज ठीक प्रकार से नहीं बना है तो उसमें फँदी लग जाती है तथा चारे का रंग काला पड़ जाता है। इस तरह के फँदी वाले, सड़े व काले रंग के साइलेज को गौपशु को नहीं खिलाना चाहिए क्योंकि इस तरह का साइलेज विषैला व जहरीला होता है। साइलेज का स्वाद चूंकि खट्टा होता है अतः हो सकता है कि प्रारम्भ में गौपशु इसको खाने में झिझके, लेकिन धीरे–धीरे गौपशु को यह बहुत स्वादिष्ट लगने लगता है और इसको गौपशु पेट भरके खाने लगता है। दुधारू गौपशु को साइलेज दूध निकालने के पश्चात् खिलाएं, जिससे कि दूध में साइलेज की गंध न आ पाए।

साईलेज एवं "हे" का संघठन (प्रतिषत में):

नाम	पानी	प्रोटीन	बसा	कार्बेहाइडेट	रेषा	भस्म
"हे"	15.0	9.2	2.8	38.62	38.6	5.8
साइलेज (मक्का)	81.8	1.0	0.4	9.1	6.5	2.2
साइलेज (ज्वार)	62.0	2.0	0.7	20.5	10.5	4.2

गाय के लिए संतुलित आहार

गौ पालन में सकल लागत का अधिकांश (70–75 प्रतिशत तक) भाग केवल गौपशु की आहार व्यवस्था में ही खर्च हो जाता है। इस प्रकार गौपालन व्यवसाय में उसका पोषण व आहार व्यवस्था अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

गौपशु की आहार व्यवस्था में दो बातों का सर्वाधिक ध्यान रखना होता है। पहला गौपशु की पोषण सम्बन्धी आवश्यकता और दूसरा उसके लिए आवश्यक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता। गौपशु के लिए पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा अनेक कारणों पर निर्भर करती

है जैसे कि गौपशु की प्रजाति, उसकी आयु, शरीर भार, दैहिक स्थिति (यथा गर्भावस्था, दुग्धोत्पादन अवस्था, वर्धन अवस्था, वृद्धि दर, दूध की मात्रा आदि)। गौपशु की पोषण सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं को मुख्यतः निम्न दो भागों में बांटा जा सकता है:

1. निर्वाह के लिए
2. उत्पादन के लिए

गौपशुओं का निर्वाह आहार

जिन दिनों गाय दूध नहीं दे रही हो या बैल खेती आदि का कोई कार्य नहीं कर रहे हों तो ऐसे समय में उनकी पोषण की आवश्यकताएं न्यूनतम होती हैं, जो केवल अच्छे चारागाह में 6 से 8 घंटे प्रतिदिन चराकर पूरी की जा सकती हैं। यदि चारागाह निम्न स्तर का है, तो उनको पेड़ों के पत्ते अथवा ज्वार की कडबी आदि खिलानी चाहिए। यदि चरने की सुविधा उपलब्ध न हो तो एक वयस्क पशु को 5.5–6 किग्रा भूसे अथवा पुआल के साथ 1–1.5 किग्रा दाना मिश्रण या 800 ग्रा0–1 किग्रा मूंगफली/सोयाबीन/सरसों की खली या 6 किग्रा बरसीम का हरा चारा खिलाना चाहिए। यदि मक्का या ज्वार का हरा चारा उपलब्ध हो तो उनको 20–25 किग्रा चारा देना काफी रहेगा।

ग्याभिन गाय एवं प्रथम बार ग्याभिन बछियों का प्राशन

प्रथम बार ग्याभिन हुई बछियों को पोषक तत्वों की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक होती है, क्योंकि इस अवधि में बछियों का स्वयं का शरीर भी वृद्धि कर रहा होता है। इस श्रेणी की बछियों के लिए खाद्य पदार्थों की उपलब्धता के आधार पर सम्भावित कुछ आहार तालिका 1.1 में दिए गए हैं।

तालिका 1.1: प्रथम बार ग्याभिन बछियों (300–400 किग्रा शरीर भार) के लिए आवश्यक दैनिक आहारों (मात्रा किग्रा में) के कुछ उदाहरण

खाद्य पदार्थ	आहार 1	आहार 2	आहार 3
बरसीम का चारा	15–20	–	–
भूसा/पुआल/कडबी	2–3	–	4–5
मक्का/ज्वार/जई का हरा चारा	–	30–40	–
दाना मिश्रण	2	2	3–4

प्रौढ़ ग्याभिन गायों के लिए आहार में मिश्रित दाने की मात्रा, प्रथम बार ग्याभिन बछियों के लिए बताई गई मात्रा की लगभग 2/3 मात्रा कर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त गर्भावस्था के अन्तिम महीने में गौपशुओं के आहार में मिश्रित दाने की मात्रा बढ़ाकर कुल आहार की (शुष्क भार आधार पर) लगभग दो–तिहाई भाग कर देनी चाहिए। इससे गाय अपनी पूर्ण क्षमतानुसार दूध देगी। गर्भकाल के अन्तिम सप्ताह में अधिक चोकर वाला दाना या दाने के स्थान पर केवल चोकर खिलाना चाहिए। बच्चे के जन्म के बाद मादा के आहार में चोकर के स्थान पर मिश्रित दाने की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिए। लगभग एक सप्ताह के बाद संतुलित आहार की आवश्यक मात्रा खिलाने से गौपशुओं में उदरीय व्याधियां उत्पन्न होने की संभावना कम रहती है तथा दुग्ध उत्पादन पूर्ण क्षमतानुसार होता है।

अच्छी परिस्थितियों में गाय 12 से 14 माह के अन्तराल पर ब्या जाती है। इस प्रकार वह लगभग दस माह तक दूध देती है तथा लगभग 2 से 4 माह तक वह बिना दूध दिए

ग्याभिन अवस्था में रहती हैं। कभी–कभी यह अन्तराल बढ़कर 4 से 6 माह भी हो सकता है। इस अवधि में दाना मिश्रण की मात्रा, ग्याभिन बछियों की तुलना में लगभग 2/3 कर देना चाहिए।

दूध देने वाली गाय का प्राशन

दुधारू गौपशु को आहार, उसकी अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ उसके द्वारा किए जा रहे दुग्ध उत्पादन के लिए भी दिया जाता है। दूध देने वाली गाय का दैनिक आहार तय करने के लिए मुख्यतः निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिएः

1. गौपशु का शरीर भार
2. दुग्ध उत्पादन की मात्रा व दूध में वसा का प्रतिशत
3. उपलब्ध चारा व दाना तथा उनकी पौष्टिकता
4. गौपशु की ब्यांत
5. जलवायु यथा तापमान व आर्द्रता

अच्छी नस्ल की गाय का औसत भार 300–400 किग्रा होता है। मौटे तौर पर दुधारू गौपशु को प्रति 100 किग्रा शरीर भार के लिए 3–3.5 किग्रा शुष्क आहार मिलना चाहिए। जिसका लगभग 60 प्रतिशत भाग दाना मिश्रण से, 20 प्रतिशत हरे चारे से तथा शेष 20 प्रतिशत शुष्क चारे के रूप में देना चाहिए। इस प्रकार 350 किग्रा की गाय को लगभग 10.5–11.5 किग्रा व 500 किग्रा की भैंस को 15–18 किग्रा शुष्क आहार मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रथम व द्वितीय ब्यांत वाली आयु में गौपशु का शरीर भी बढ़ रहा होता है, ऐसे में उसे अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार कम आयु के गौपशु की आहार ग्रहण क्षमता कम होती है। अतः उसे अधिक पौष्टिक आहार खिलाना चाहिए ताकि उसकी आवश्यकताएं आहार की कम मात्रा से ही पूर्ण हो सकें।

इसके अतिरिक्त अधिक तापमान व आर्द्रता के मौसम में भी गौपशु की आहार ग्रहण क्षमता घट जाती है। चूंकि अधिक रेशेदार खाद्य खिलाने से शरीर से ऊर्जा का ह्रास अधिक होता है, अतः अधिक तापमान व आर्द्रता वाले मौसम में गौपशु को दाना मिश्रण अधिक मात्रा में देना चाहिए। गायों के दूध में औसतन 4–5 प्रतिशत वसा होती है। गाय को प्रति 3 किलोग्राम दूध के लिए एक किलोग्राम दाना दिया जाना चाहिए। अधिक दूध देने वाले गौपशुओं के लिए दाने की मात्रा इससे भी अधिक देनी पड़ती है। तालिका–1.2 में 5, 10 तथा 15 किलोग्राम दूध प्रतिदिन देने वाली गायों के लिए संतुलित आहारों के कुछ व्यावहारिक उदाहरण दिए गए हैं। 15 किलोग्राम से अधिक दूध देने वाली गाय को 20–30 किलोग्राम पौष्टिक चारे के साथ भरपेट अच्छे प्रकार का दाना मिश्रण खिलाना चाहिए।

तालिका 1.2: दूध देने वाली गायों के लिए संतुलित आहार (मात्रा किग्रा में)

खाद्य अवयव	शरीर भार (किग्रा)			
	300	350	400	450
	5 किग्रा प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन			
आहार संख्या–1				
दाना मिश्रण	2.0	2.0	2.5	2.5
भूसा/पुआल/कडबी	3.5	4.5	6.0	7.5
हरी बरसीम	8.0	11.0	11.0	15.0

आहार संख्या–2				
दाना मिश्रण	3.5	3.5	4.0	4.0
भूसा / पुआल / कडबी	5.0	6.5	7.5	9.0
आहार संख्या–3				
दाना मिश्रण	1.5	1.5	2.0	2.0
हरा चारा	30.0	35.0	32.0	40.0
आहार संख्या–4				
ब्रसीम	25.0	27.0	28.0	30.0
भूसा / पुआल / कडबी	6.0	7.0	8.0	8.5
10 किग्रा प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन				
आहार संख्या–1				
दाना मिश्रण	3.5	3.5	4.0	4.0
भूसा / पुआल / कडबी	3.0	3.5	4.0	6.0
हरी बरसीम	10.0	15.0	20.0	20.0
आहार संख्या–2				
दाना मिश्रण	5.0	5.0	5.5	5.5
भूसा / पुआल / कडबी	4.0	5.0	6.0	7.5
आहार संख्या–3				
दाना मिश्रण	3.0	3.0	3.5	3.5
हरा चारा	25.0	30.0	35.0	40.0
आहार संख्या–4				
ब्रसीम	35.0	35.0	40.0	40.0
भूसा / पुआल / कडबी	5.0	6.0	7.0	8.0
15 किग्रा प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन				
आहार संख्या–1				
दाना मिश्रण	–	5.0	5.5	5.5
भूसा / पुआल / कडबी	–	2.5	4.0	5.5
हरी बरसीम	–	20.0	20.0	20.0
आहार संख्या–2				
दाना मिश्रण	–	6.5	7.0	7.5
भूसा / पुआल / कडबी	–	3.5	4.5	6.5
आहार संख्या–3				
दाना मिश्रण	–	4.5	5.0	5.0
हरा चारा	–	25.0	30.0	35.0
आहार संख्या–4				
ब्रसीम	–	45.0	50.0	50.0
भूसा / पुआल / कडबी	–	5.0	6.0	7.0

बछड़े / बछिया का जन्म से प्राशन

जन्म के बाद चार घण्टे के अन्दर बछड़े/बछिया को मां का दूध अवश्य पिलाना चाहिए। गाय के बच्चा देने के बाद उसका पहले 3–4 दिनों का दूध, बाद के दूध से भिन्न होता है। इसे अंग्रेजी में "कोलस्ट्रम' व हिन्दी में "खीस' कहते हैं। यह साधारण दूध से अधिक गाढ़ा होता है तथा गर्म करने पर फट जाता है। इसमें लगभग सभी पोषक तत्वों की मात्रा दूध की अपेक्षा ज्यादा होती है। इसके अतिरिक्त खीस में ऐसे तत्व भी पाए जाते हैं जिनसे बछड़े/बछिया में रोगों से लड़ने की क्षमता आती है। यह खीस नवजात बच्चे को जीवन के प्रथम 3–4 दिनों तक अवश्य देना चाहिए। यदि किसी कारणवष किसी गाय का खीस उपलब्ध न हो तो नवजात बछड़े/बछिया को किसी अन्य ब्यायी गाय की खीस पिलानी चाहिए। जन्म के 3–4 दिन के बाद साधारण दूध पिलाना प्रारम्भ कर देना चाहिए। दूध की मात्रा बछड़े/बछड़ी के शरीर भार पर निर्भर करेगी। बछड़े/बछिया को जीवन के प्रथम तीन सप्ताह में शरीर भार का लगभग दसवें भाग के बराबर की मात्रा में दूध को दो बराबर भागों में बांटकर सुबह–शाम पिलाना चाहिए। चौथे व पांचवे सप्ताह में यह मात्रा कम करके शरीर भार के 1/15 भाग एवं छठे से नौंवे सप्ताह में इस मात्रा को और कम करके शरीर भार का 1/20 भाग के बराबर की मात्रा में दूध पिलाना चाहिए। पांचवें सप्ताह के बाद शुद्ध दूध बन्द करके, उन्हें क्रीम निकाला (सप्रेटा) दूध दिया जा सकता है। दूध की मात्रा को धीरे–धीरे इस प्रकार कम करते हैं कि 60 दिन के बाद बछड़े/बछिया का दूध पूरी तरह बन्द किया जा सके। बछड़े/बछियों के लिए दूध के स्थान पर दुग्ध प्रतिस्थापक (तालिका–1.3) भी दिया जा सकता है।

तालिका 1.3 : बछड़े/बछियों के लिए दुग्ध प्रतिस्थापक

खाद्य अवयव	मात्रा (प्रतिशत)	खाद्य अवयव	मात्रा (प्रतिशत)	खाद्य अवयव	मात्रा (प्रतिशत)
गेहूं	10	बिनौला तेल	7	ब्यूटिरिक अम्ल	0.3
अलसी की खली	50	अलसी का तेल	3	साइट्रिक अम्ल	1.5
सूखा दूध	18.2	शीरा	10	विटामिन मिश्रण	0.015

बछड़े/बछिया को जीवन के दूसरे सप्ताह से ही हरी नरम घास या अन्य वनस्पति तथा "प्रारम्भिक दाना मिश्रण' (तालिका–1.4) खिलाना प्रारम्भ कर देना चाहिए। इससे उनकी शुष्क प्रकार के भोजन को खाने की आदत पड़ती है जो उनमें पहले उदर या रूमेन के शीघ्र विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

तालिका 1.4: बछड़े/बछियों के प्रारंभिक व वृद्धि काल के लिए कुछ दाना मिश्रण (मात्रा प्रतिशत में)

खाद्य अवयव	प्रारम्भिक दाना मिश्रण			वृद्धिकाल के लिए दाना मिश्रण+		
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
मक्का दला हुआ	50	25	0	30	15	0
गेहूं की चोकर	20	48	76	45	60	77
मूंगफली/सोयाबीन की खल	27	24	21	22	22	20
लवण मिश्रण	2	2	2	2	2	2
सादा नमक	1	1	1	1	1	1

+उक्त मिश्रण अन्य श्रेणियों के गौवंश के लिए भी उपयुक्त हैं।

प्रजनन के लिए प्रयुक्त नर (सांड) का प्राशन

प्रजनन के लिए प्रयुक्त होने वाले नर (सांड) के आहार में विषेष सावधानी बरतनी चाहिए। एक ओर जहां उसको सुपाच्य, सुस्वादु आहार मिलना चाहिए, वहीं यह भी आवश्यक है कि वह आवश्यकता से अधिक न खाए अन्यथा मोटापे के कारण उसकी प्रजनन क्षमता कम हो सकती है। प्रजनन के लिए प्रयुक्त सांडों के लिए कुछ व्यावहारिक आहारों के उदाहरण नीचे तालिका–1.5 में दिए जा रहे हैं:

तालिका 1.5– प्रजनन के लिए प्रयुक्त नर का आहार (मात्रा किग्रा में)

खाद्य अवयव	आहार 1	आहार 2	आहार 3
बरसीम का चारा	–	10	–
भूसा/पुआल/कडबी	2	9–10	8
मक्का/ज्वार/जई का हरा चारा	30–40	–	2–2.5
मिश्रित दाना	–	–	2–2.5

जब अच्छी गुणवत्ता का हरा चारा उपलब्ध हो तो सांड को लगभग 40 किग्रा हरा चारा व 2 किग्रा भूसा या पुआल मिलाकर देना चाहिए। बरसीम आदि द्विदलीय चारा उपलब्ध होने पर लगभग 10 किग्रा बरसीम व 9–10 किग्रा भूसा अथवा पुआल देना चाहिए। हरा चारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध न होने पर लगभग 8 किग्रा भूसे के साथ 2–2.5 किग्रा दाना मिश्रण व 2 किग्रा हरा चारा देना चाहिए।

बैलों का प्राशन

बैलों का आहार उनसे लिए जा रहे कार्य पर निर्भर करता है। जिन दिनों बैलों से कोई काम नहीं लिया जा रहा हो तो उनकी पौषणिक आवश्यकताएं बहुत कम हो जाती हैं और उनको केवल निर्वाह आहार की आवश्यकता होती है। लेकिन कार्य लेने वाले समय में बैलों की पोषणिक आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं। भारी और हल्के काम के अनुसार कार्यरत बैलों के लिए आहारों के कुछ व्यावहारिक उदाहरण तालिका–1.6 में नीचे दिए जा रहे हैं:

तालिका 1.6: कार्यरत बैलों का आहार (मात्रा किग्रा में)

खाद्य अवयव	भारी काम (5 से 8 घण्टे प्रतिदिन)			
	आहार 1	आहार 2	आहार 3	आहार 4
दाना मिश्रण	5.0	3.0	–	3.0
भूसा/पुआल/कडबी	8.0	–	6.5	8.0
मक्का/ज्वार/जई का हरा चारा	–	35.0	33.0	14.0
	हल्का काम (1 से 3 घण्टे प्रतिदिन)			
दाना मिश्रण	3.0	1.5	–	1.5
भूसा/पुआल/कडबी	8.0	–	8.0	8.0
ब्रसीम	–	35.0	20.0	10.0

पषु पोषण के सामान्य सिद्वान्तः–

1. पशु को संतुलित एवं नियमित आहार दिन में 2 बार लगभग 10 घण्टों के अन्तराल पर देना उचित होता है। साथ ही आहार के प्रकार में बदलाव धीरे–धीरे किया जाना चाहिये।
2. प्रत्येक गो–वंशीय पशु को 2.5 कि0ग्रा0 शुष्क पदार्थ प्रति 100 कि0ग्रा0 शरीर भार

पर देना चाहिए तथा शुष्क पदार्थ की आावश्यकता का दो तिहाई भाग चारे से जिसमें सूखे एवं हरे चोर सम्मलित हो एवं एक तिहाई दाना से दिया जाना उचित होता है।

3. पशुओं को जीवन निर्वाह हेतु 1.0–1.5 कि0ग्रा0 दाना तथा दुग्ध उत्पादन हेतु गायो में 3.0 लीटर दूध एवं भैसों को 2.5 लीटर दुग्ध पर 1.0 कि0ग्रा0 अतिरिक्त दाना देना चाहिये।
4. वृद्धि करने वाले पशुओं, प्रजनक साड़ों तथा कृषि कार्यो हेतु प्रयोग में आने वाले बैल को आवश्यकतानुसार 1.0–2.0 कि0ग्रा0 दाना देना उपयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त गर्भवती गाय व भैसों को अन्य आवश्यकताओं के अतिरिक्त 1.0–1.5 कि0ग्रा0 दाना दिया जाना चाहिये।

गोवंश में बीमारी की जाँच कब क्यों और कैसे करायें

रामस्वरूप सिंह चौहान
पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)

पशुपालक एवं किसान सामान्यतया गाय–दूध के लिए तथा बैल भार ढोने के लिए पालते हैं। यदि पशु स्वस्थ रहें तो पशुपालक भी प्रसन्न रहते हैं क्योंकि उन्हें पशुओं से पूरा उत्पादन मिलता है व भरपूर आर्थिक लाभ होता है। मगर ऐसा हर समय संभव नहीं हो पाता। अक्सर देखा गया है कि पालतू पशु किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं। बीमार होने से पशु की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है व पशु पालक को निम्नलिखित मदों में हानि उठानी पड़ती है।

1. पशु उत्पादन कम होने। बन्द होने से हानि
2. बीमार पशु के उपचार तथा रख–रखाव का खर्च
3. पशु चिकित्सक की फीस आदि का खर्च
4. पशुपालक व उसके परिवारी जनों का तनाव ग्रस्त रहना
5. पशु के ठीक न होने अथवा मरने की स्थिति में सम्पूर्ण हानि

उपरोक्त मदों में हानि होने से अन्ततः पशुपालक आर्थिक कठिनाई में पड़ जाते हैं। इससे बचने के लिए गोवंश की नियमित जाँच करायी जानी चाहिए ताकि उनमें उत्पन्न किसी भी बीमारी का पूर्वाभास हो जाये। गोवंश में बीमारी की जाँच होने से उससे बचने के उपाय शीघ्र अपनाये जा सकते हैं तथा बीमारी पर होने वाले खर्चे व हानि से भी बचा जा सकता है। यदि समय रहते बीमारी का उपचार ठीक हो जाता है तो पशु के उत्पादन पर भी अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि मूक पशु अपनी बीमारी के विषय में स्वयं तो बोल नहीं सकता। अतः हमें अपने विवेक से ही उसकी बीमारी का पता लगाना होता है। ऐसे में नियमित प्रयोगशाला जाँच का महत्व काफी बढ़ जाता है। जिससे बीमारी का पता चलने पर त्वरित कार्यवाही की जा सकती है व होने वाली हानियों से बचा जा सकता है।

जाँच कब करायें:

- जब पशु के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा हो। दूध देने वाले पशुओं का दूध उत्पादन कम हो रहा हो अथवा पशु चारा कम खा रहे हों, पानी कम पी रहे हों या चलने, उठने–बैठने में कठिनाई महसूस करते हों।
- जब पशु को बुखार हो व बेचैनी महसूस करता हो।
- जब भार ढोने वाले पशु ठीक से कार्य सम्पादन नहीं कर पा रहे हों।
- जब नये पशु खरीद कर अपने घर या बाड़े में रखे हों।
- जब पशु में बीमारी का कोई लक्षण जैसे दस्त, कब्ज, दर्द, चारा न खाना, बुखार, त्वचा पर क्षतस्थल आदि दिखता हो।
- प्रति वर्ष या प्रति 6 महीने के अन्तराल पर नियमित जाँच

जाँच क्यों करायें?

- पशु की तथा पशु से रक्त, मूत्र, मल अथवा मरने के पश्चात् ऊतक व अंगों की जाँच कराने से पशु की बीमारी का पता चलता है जिससे उस पशु का तो उचित उपचार त्वरित हो सकता है तथा अन्य संम्पर्क में आये पशुओं का भी उस रोग से बचाव किया जा सकता है।
- रोग की जाँच होने से उचित उपचार पर खर्च कम आता है क्योंकि पशु चिकित्सक सिर्फ उसी रोग को ठीक करने सम्बन्धी दवा देते हैं। यदि बिना जाँच के उपचार कराया जाये तो उस समय कई प्रकार की दवायें दी जाती है जिन पर अनावश्यक खर्च होता है।
- पशुओं में कई प्रकार के संक्रामक व छूत के रोग होते हैं जो शीघ्रता से एक से दूसरे पशु में फैल सकते हैं व पूरे गांव या एक क्षेत्र के पशुओं में बीमारी उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में शुरूआती जाँच से बीमारी का पता चलने पर उसे अन्य स्वस्थ्य पशुओं में फैलने से रोका जा सकता है।
- कई प्रकार की बीमारी ऐसी हैं जो पशुओं से मनुष्य में हो सकती हैं। अतः त्वरित निदान व जाँच से पता चलने पर उन रोगों पर नियंत्रण के उपाय अपनाकर मनुष्यों में पशु जन्य रोग होने से बचाव किया जा सकता है।
- जब नये पशु खरीदें तो उनमें रोग की जाँच अवश्य करानी चाहिए ताकि उनके द्वारा कोई भी नया रोग आपके अन्य पशुओं में न फैल सके। नये पशु भी ठीक प्रकार से उत्पादन लक्ष्य के अनुसार कर सकें।
- मुक्त विश्व व्यापार के समय में पशुपालकों को यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि उनके पशु रोग ग्रस्त नहीं हैं व जो भी दूध व दूध से बने उत्पाद बाजार में जा रहे हैं वे स्वस्थ्य पशु से लिये गये हैं। अन्यथा बाजार में कड़ी प्रतिस्पर्धा के चलते पशु उत्पाद बेचना व उनका उचित मूल्य प्राप्त करना कठिन हो जायेगा। पशु की नियमित जाँच से इस समस्या से बचा जा सकता है।
- पशुओं में नियमित जाँच से विभिन्न रोगों के टीकाकरण कर पशुओं के प्रभाव का भी पता चल सकता है। कई बार जाँचने पर टीकाकरण के प्रभाव का भी पता चल सकता है। जिससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि टीकाकरण के फलस्वरूप पशु में उचित रोग प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न हो चुकी है अथव नहीं।
- नियमित जाँच से पशुओं में होने वाली बीमारियों के पूर्वानुमान में भी मदद मिलती है।
- कई प्रकार के रोग ऐसे हैं जो नर पशु से मादा में व मादा से नर पशु में फैल सकते हैं। यह विशेष रूप से कृत्रिम गर्भाधान के समय और महत्वपूर्ण हो जाता है। यदि रोग ग्रस्त नर पशु से वीर्य लिया गया है तो उससे काफी संख्या में मादा पशु रोग ग्रस्त हो सकते हैं। अतः नर व मादा पशु दोनों की जाँच अवश्य होनी चाहिए ताकि रोगों को फैलने से रोकने में मदद मिले।

जाँच कैसे करायें:–

- पशुओं में रोग की जाँच कराने के लिए अपने नजदीक के पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें जो पशु से विभिन्न नमूने यथा रक्त, सीरम, मल, मूत्र, त्वचा की खुरचन आदि लेकर प्रयोगशाला भिजवा सकते हैं।
- पशुपालक स्वयं भी पशु के मल (गोबर) का नमूना किसी साफ कागज की पुड़िया में

या काँच/प्लास्टिक की शीशी में लेकर प्रयोगशाला ला सकते हैं जिससे पशु के पेट में परजीवियों की जाँच की जा सकती है। गोबर के नमूने एकत्रित करने के लिए सीधे पशु के मलाशय से कुछ गोबर लिया जा सकता है अथवा ताजे किये हुए गोबर में से बीच का कुछ भाग नमूने के लिए लिया जा सकता है। गोबर के नमूने के साथ मिट्टी या अन्य कूड़ा–करकट नहीं आना चाहिए।

- पशुपालक पशु रोगों में जाँच के लिए पशुचिकित्सक की सलाह से प्रयोगशाला से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। जो त्वरित कार्यवाही कर पशुओं में बीमारी की जाँच करवायेंगे व उसकी रोकथाम व बचाव के उपाय भी सुझायेंगे।
- पशुपालक पशुओं में व्यापक रूप से फैली बीमारी की स्थिति में, पशुचिकित्सक/सरपंच आदि से मिलकर फोन/तार/फैक्स/इन्टरनैट/पत्र आदि किसी भी माध्यम से प्रयोगशाला के अधिकारियों से सम्पर्क कर उन्हें बुला सकते है या उनके पास रोग ग्रस्त पशुओं के नमूने भेज सकते हैं।

जाँच के लिए नमूने एकत्रित करने का तरीका

1. नमूने एकत्रित करने के लिए पषुपालक/किसान क्या करें ?

- जैसा ऊपर भी बताया गया है कि कुछ प्रकार के नमूने प्रयोगशाला परीक्षण के लिए पशुपालक स्वयं ही भेज/ला सकते हैं। इनमें पशु का गोबर जो मलाशय से सीधे लिया गया हो या ताजा किये गोबर में से गोबर के बीच का भाग लेकर प्रयोगशाला परीक्षण के लिए भेजा जा सकता है।
- पशु के शरीर पर विशेष रूप से त्वचा पर बाह्य परजीवी रहते हैं जिनको पहचान कराने व जाँच कराने के लिए एकत्रित किया जा सकता है।
- पशु में खुजली होने पर त्वचा बाल रहित हो जाती है तथा उसमें खुरन्ट भी बनने लगते हैं। ऐसी त्वचा से खुरचन लेकर उसे कागज की पुड़िया में बन्द कर काँच की शीशी में बन्दकर प्रयोगशाला परीक्षण को भेजा जा सकता है। मगर त्वचा की खुरचन लेते समय यह घ्यान रखें कि त्वचा पर गहरा घाव न हो अन्यथा वहां मवाद पडने की आशंका हो सकती है।
- पशु का मूत्र का नमूना यदि एकत्रित करना हो तो हमेशा ताजा मूत्र ही लेना चाहिए। इसके लिए जब पशु सुबह उठते हैं तो मूत्र त्याग करते हैं। इसी समय किसी साफ काँच के बर्तन यथा प्लास्क, बीकर, ट्यूब आदि में मूत्र शीघे ही एकत्रित कर लेना चाहिए।
- कई बार सिर्फ रूई की फुरेरी लेने से भी काम चल जाता है अतः जहाँ से फुरेरी द्वारा नमूना लेना हो वहाँ से सीधे लेकर फुरेरी को ट्यूब में रख लेना चाहिए। फुरेरी लेते समय सावधानी ये रखें कि जिस ट्यूब में फुरेरी रखें उसमें तरल मीडिया यथा पी0बी0एस0 एच0बी0एस0एस0, पैप्टोन वाटर, न्यूट्रयेन्ट ब्रॉथ आदि हो जिससे फुरेरी सूखें नहीं। मुख्यतः फुरेरी द्वारा नाक, मलाशय, योनि, आँख, मुँह, गला आदि स्थानों से नमूने लिए जा सकते हैं।
- यदि पशु में विषाक्तता/जहरबाद होने की संभावना लगती हो तो पशुपालक पशु के चारे का नमूना लेकर प्रयोगशाला भेज सकते हैं। इसके लिए पशु के चारा खाने के स्थान से नमूना, चारे काटने की जगह से नमूना, दाने का नमूना तथा जहाँ पशु पानी पीते हैं वहां से पानी का नमूना लेकर प्रयोगशाला भेजना चाहिए ताकि उनमें किसी

जहर की उपस्थिति का पता लगाया जा सके।

- यदि पशु को थनैला रोग होने की आशंका हो तो दूध का नमूना किसी साफ/स्वच्छ बर्तन में लेकर प्रयोगशाला भेजना चाहिए। थनैला रोग में वैसे एन्टीबायोटिक परीक्षण हेतु दूध का नमूना प्रयोगशाला से ही प्राप्त काँच या प्लास्टिक की स्टैराइल ट्यूब में ही लेना चाहिए। यदि पशु को गर्भपात हो जाता है तो गर्भित भ्रूण को किसी प्लास्टिक/पौलीथीन में अच्छी तरह बन्दकर प्रयोगशाला भेजा जा सकता है। ऐसे पशु से जब योनि से स्राव गिरता है तो उस स्राव को भी काँच या प्लास्टिक के बर्तन (फ्लास्क, ट्यूब, बीकर) में लेकर प्रयोगशाला पहुँचा देना चाहिए ताकि वहां के तकनीशियन/वैज्ञानिक विधिवत उसका शव परीक्षण भी कर लें व जरूरत के हिसाब से नमूने भी एकत्रित कर लें।

2. नमूने एकत्रित करने के लिए पषु चिकित्सक क्या करें ?

- पशु से रक्त के नमूने लेने के लिए पशुचिकित्सक संक्रमण विहीन स्थिति बनायें व नयी सुई से रक्त का नमूना लें। सामान्यतः हर पशु प्रजाति से अलग–2 जगहों से रक्त के नमूने लिए जाते हैं जिनकी जानकारी पशु चिकित्सक को होती है। गाय व भैंस की गर्दन से रक्त लिया जाना है तो ट्यूब अच्छी साफ हों व एन एस एस से अच्छी तरह धो दी गयी हों। इससे रक्त से सीरम साफ निकलता है। रक्त लेकर ट्यूब को थोडा तिरछा करके रख दें। उससे सीरम जल्दी तथा अच्छी मात्रा में निकलता है। यदि रक्त का नमूना कोशिकीय तथा अन्य रक्त परीक्षण के लिए है तो इसमें थक्करोधी रसायन मिलाना चाहिए। इसके लिए ई0डी0टी0ए0, हिपैरिन या सोडियम आक्जेलेट का प्रयोग कर सकते हैं। इससे रक्त का थक्का नहीं बनता व रक्त का परीक्षण आसानी से हो जाता है।
- यदि पशु से रक्त सूक्ष्म परीक्षण के लिए लिया जाता है तो संक्रमण विहीन (स्टेराइल) परिस्थितियों में रक्त एकत्रित करना चाहिए तथा ऐसे रक्त में थक्करोधी रसायन भी स्टैराइल ही होना चाहिए। इसके लिए हिपैरिन की शीशियाँ आती हैं अन्यथा ई0डी0टी0ए0 उचित मात्रा में साफ काँच की शीशी में डालकर उन्हें ऑटोक्लेव द्वारा स्टैराइल कर लिया जाता है। इससे वातावरण से कोई दूसरा संक्रमण नहीं आ पाता। इस विधि के एकत्रित किये नमूनों से जीवाणु पृथकीकरण किया जा सकता है।
- पशु की त्वचा की खुरचन लेने के लिए त्वचा को ऊपर से अच्छी तरह साफ कर लें। फिर चाकू या स्कैलपेल से धीरे–2 खुरचन एकत्रित करें। यदि माइट का प्रकोप देखना हो तो थोड़ा गहरे भी जायें व त्वचा की डर्मिस सतह तक से खुरचन ले सकते हैं। इसकी पहचान यह है कि फिर वहाँ खून आने लगेगा। नमूना एकत्रित करने के बाद त्वचा को सक्रंमणहारी दवाओं से उपचारित कर दें।
- कई बार पशु रोगों का पता रक्त आलेप (स्मीयर) से चल जाता है। अतः पशु चिकित्सकों को चाहिए कि प्रभावित पशु से रक्त लेकर काँच की स्लाइड पर रक्त आलेप बना दें व उसे मीथेनॉल या एसीटोन या 70 प्रतिशत एल्कोहल से फिक्स कर प्रयोगशाला भिजवा दें। इस प्रकार के आलेपों से रक्त में उपस्थित परजीवियों तथा कई प्रकार के जीवाणुओं का पता लगाया जा सकता है।
- पशु चिकित्सक गोबर तथा मूत्र के नमूने साफ काँच या प्लास्टिक की शीशी में रखकर भेज सकते हैं मगर ध्यान रखें यदि इन नमूनों से सूक्ष्म जीव परीक्षण किया

जाना है तो इन्हें भी स्टैराइल परिस्थितियों में एकत्रित कर भेजें ताकि जीवाणु/विषाणु पृथकीकरण में आसानी रहे।

- दूध का नमूना एकत्रित करने के लिए पहली कुछ धार छोड़ दें। फिर स्टैराइल ट्यूब में 10–15 मि0ली0 दूध एकत्रित कर प्रयोगशाला भेज दें। इससे थनैला रोग की जाँच व एन्टीबायोटिक दवा के चयन में सहायता मिलती है।
- यदि मृत पशु से शव परीक्षण के समय नमूने एकत्रित करने हैं तो नमूने एकत्रित करने का सभी सामान लेकर शव परीक्षण स्थल पर जाना चाहिए। सूक्ष्म दर्शी क्षत स्थलों के लिए विभिन्न ऊतकों व अंगों के नमूने 10 प्रतिशत फॉरमेलिन में एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिए।

1. ऊतकों/अंगों के नमूने पशु के मरने के बाद जितनी जल्दी हो सके एकत्रित करने चाहिए। क्योंकि मरने के बाद पशु शव में सड़न उत्पन्न होनी प्रारम्भ हो जाती है जिससे रोग की जाँच करने में बाधा आती है।
2. नमूने हमेशा किसी भी फिक्सेटिव में ही लेने चाहिए। सामान्यतया इसके लिए 10 प्रतिशत फारमेलिन प्रयोग की जाती है। यदि संभव हो तो 10 प्रतिशत बफर युक्त फारमेलिन में नमूने लेना अच्छा रहता है। यह ध्यान रहे कि फारमेलिन का घोल पहले से बना हो। तत्काल बनाने से ऊतकों के नमूने किसी और बर्तन में ले जाये जाते है व कुछ समय पश्चात फारमेलिन में डाले जाते है यह गलत तरीका है।
3. ऊतक/अंग से नमूना काटने के लिए तेज धार वाले चाकू/स्कैल पैल का प्रयोग करना चाहिए। जिससे एक बार में ही ऊतक/अंग कट जाये व बार–बार घिसना न पड़े। इससे ऊतकों को बिना नुकसान पहुँचे ही नमूने एकत्रित किये जा सकते हैं।
4. ऊतक/अंग के नमूने में क्षत–स्थल व सामान्य दोनों तरह का ही आना चाहिए इससे अंग पहचानने में भी आसानी रहती है तथा उसमें बीमारी के फलस्वरूप उत्पन्न विकृति भी आसानी से पहचानी जा सकती है।
5. ऊतक/अंग नमूने का आकार 1.0 सेमी से अधिक नहीं होना चाहिए। ज्यादा बड़ा नमूना होगा तो उसके संरक्षण में परेशानी आती है। छोटे–2 टुकड़े आसानी से संरक्षित हो जाते हैं।
6. ठोस अंगों यथा जिगर, गुर्दे आदि के नमूने लेते समय इनके ऊपर के आवरण (कैपसूल) भी नमूने के साथ ही आने चाहिए। कई बार ऐसा देखा गया है कि आवरण हटाने के बाद नमूने लिये जाते हैं उनमें अलग अच्छी जाँच नहीं हो पाती।
7. आँतों, नलियों आदि से नमूने लेने के लिए पहले उनका छोटा टुकड़ा काटकर एक कागज के टुकड़े पर लगाया जाता है। फिर उन्हें बीच से चीर दिया जाता है जिससे आँत की बाहरी सतह कागज पर चिपक जाती है व अन्दरूनी सतह खुली रहती है। इससे नली वाले अंग सिकुड़ते नहीं हैं।
8. आँतों या अन्य नली वाले अंगों से नमूना लेते समय इस बात का ध्यान रखें कि इनके अन्दर के तत्व सही सलामत हैं कई बार ऐसा देखा गया है कि आँत को पकड़कर व सूतकर उसके अन्दर के तत्व किसी और परीक्षण करने के लिए ले लिये जाते हैं तथा उसी में से एक टुकडा काटकर फारमेलिन में ले लिया जाता है यह गलत तरीका है क्योंकि इससे आँत की अन्दर की दीवार खराब हो जाती है जिससे सही जाँच नहीं हो पाती। इसी प्रकार कई बार ऐसा भी देखा गया कि खोलने के बाद

आँत के अन्दर का मल खुरचकर हटा दिया जाता है इससे भी आँत की दीवार खराब हो जाती है।

9. ऊतक/अंगों में जीवाणुओं से जाँच के लिए अग्नि युक्त बर्नर के सामने नमूने एकत्रित किये जाने चाहिए। नमूना जहां से लेना हो उसकी ऊपरी जगह को गर्म स्पेचुला से जला दें फिर स्टैराइल चाकू से उसे काटकर चिमटी से कटे स्थान पर जगह बनायें व नमूना लेने के लिए फुरेरी या लूप का प्रयोग करें। नमूना लेकर तुरन्त मीडिया में लगायें ताकि वह सूखे नहीं।इसी प्रकार यदि हृदय के रक्त का नमूना लेना है तो ऊपरी सतह को जलाकर फिर पॉश्चर पिपैट या सुई से अन्दर से रक्त का नमूना लें व मीडिया पर लगा लें।
10. इसी प्रकार गर्भपात हुए भ्रूण के पेट से नमूना एकत्रित किया जाता है। वैसे अधिकांशतः भ्रूण के पेट को दोनों तरफ से मजबूत घागे से बांधकर पूरा पेट बर्फ में रखकर प्रयोगशाला भेजा जाता है। इसमें से प्रयोगशाला वैज्ञानिक अपनी इच्छानुसार नमूना पेट के अन्दर से स्वयं ले लेते हैं।
11. गर्भपात हुई गाय/भैंस/बकरी आदि का सीरम नमूना गर्भपात के दिन तथा उसके 21 दिन बाद एकत्रित कर प्रयोगशाला परीक्षण को भेजना चाहिए। पशुचिकित्सक इस बात का ध्यान रखें कि यह गर्भपात के बाद का कम से कम समय है जिसके पश्चात सीरम परीक्षण कभी भी कराया जा सकता है।

विभिन्न रोगों में क्या नमूने एकत्रित करें ?

1. गल घोंटू
- रक्त का आलेप (स्मीयर)
- गले की सूजन से द्रव का आलेप
- जिगर से छापित आलेप
- तिल्ली, जिगर, लसिका गाँठें, फेफड़े आदि के टुकड़े बर्फ में रखकर तथा 10 प्रतिशत फार्मेलिन में।

2. लंगड़ी (ब्लैक क्वार्टर)
- सीरम
- गर्भित गाय का गर्भपात के 21 दिन बाद का सीरम
- गर्भित भ्रूण का पेट
- योनि से फुरेरी
- वीर्य या वीर्य की स्ट्रॉ–सभी नमूने बर्फ में

3. ब्रुसैलोसिस
- सीरम
- गर्भित गाय का गर्भपात के दिन का तथा 21 दिन बाद का सीरम
- योनि से फुरेरी
- वीर्य या वीर्य की स्ट्रॉ
- सभी नमूने बर्फ में

4. क्षय रोग
- कफ स्टैराइल शीशी में
- रोगी पशु का दूध
- फेफड़े, लसिका गाँठों में क्षत स्थल से ऊतक नमूने
- क्षत स्थल से छापित आलेप
- क्षत स्थल से ऊतक नमूने 10 प्रतिशत फारमेलिन में

5. जोहनीज बीमारी
- मलाशय से ऊतक का आलेप
- आँतो की धोवन
- मरे पशु की आँतों की लसिका गाँठे व बड़ी आँत से नमूने

6. लैप्टोस्पाइरोसिसः
- रक्त एवं सीरम
- जिगर, गुर्दे 10 प्रतिशत फार्मेलिन में
- मूत्र का नमूना
- दूध का नमूना

7. लिस्टीरियोसिसः
- गर्भित भ्रूण के दिमाग का टुकड़ा, जिगर, तिल्ली आदि
- प्लेसेण्टा

8. सालमोनैलोसिसः
- जीवित पशु का रक्त या मरे जानवर के दिल से रक्त का नमूना

9. कैम्पाइलोबैक्टीरियोसिसः
- मादा तथा नर पशुओं के जननांगों की धोवन
- जनंनागों का स्त्राव–म्यूकस आदि

10. फफूँदी संक्रमण त्वचा परः
- त्वचा की गहरी छीलन काँच की शीशी में

11. मुँह–खुरपका रोगः
- मुँह में फफोलों का द्रव 50 प्रतिशत ग्लिसरॉल सेलाइन में
- बुखार के समय का 10 मि0ली0 रक्त का नमूना थक्कारोधी रसायन के साथ
- दिल, जिगर, तिल्ली, लसिका गाँठें आदि के नमूने 10 प्रतिशत फारमेलिन में
- सीरम

12. बोवाइन वायरल डायरियाः
- सीरम
- रक्त का नमूना ई.डी.टी.ए. में
- वीर्य, आँत से स्वैब, लसिका गाँठे तथा तिल्ली

13. माता रोगः
- त्वचा पर क्षतस्थल के खुरण्ट 50 प्रतिशत ग्लिसरीन सैलाइन में
- खुरण्ट या त्वचा पर क्षतस्थल 10 प्रतिशत फारमेलिन में

14. आई0बी0आर0ः
- सीरम
- नर तथा मादा जानवरों के स्त्राव तथा क्षतस्थल से नमूना स्वैब आदि
- मरे जानवर से श्वास नली, फेफड़े से नमूने
- गर्भित भ्रूण से पेट के अवयव, जिगर
- सांड की वीर्य तथा जननांगों की धोवन
- नाक, आँख व मुँह के स्राव
- गर्भित गाय से गर्भपात के समय तथा 21 दिन बाद का सीरम नमूना

15. मवाद/फुंसी/घावः
- मवाद की फुरेरी
- घाव के किनारे की फुरेरी

16. थनैलाः
- दूध (10 मि0ली0) का नमूना स्टैराइल स्थिति में

17. *ई0 कोलाई* संक्रमणः
- रक्त का नमूना
- आँत, लसिका गाँठों से ऊतक टुकड़े 10ः फारमेलिन में

18. रोटा विषाणु संक्रमणः
- मल का नमूना
- आँत से तथा आँतों के बीच की लसिका गाँठों से ऊतक

19. न्यूमोनियाः
- नाक से फुरेरी, फेफड़ों का टुकड़ा

20. भारी धातुओं के जहरबादः
- जिगर
- गुर्दे
- पेट के अवयव बर्फ में

21. एल्कलॉइड जहरबादः
- जिगर, दिमाग तथा पेट के अवयव बर्फ में

22. नाइट्रेट जहरबादः
- चारे का नमूना
- पेट का अवयव (रूमैन से)
- रक्त का नमूना बर्फ में

23. कुचला (स्ट्रिकनीन) जहरबादः
- पेट व आँत के अवयव
- मूत्र का नमूना
- जिगर, दिल व गुर्दे का ऊतक/भाग बर्फ में

24. सायनाइड़ (हाइड्रोसायनिक) जहरबादः
- चारे में प्रयुक्त पौधा/नमूना
- पेट के अवयव
- रक्त का नमूना
- जिगर 1.0 प्रतिशत मरक्यूरिक क्लोराइड में

25. कीटनाशक/जैवनाशकः
- वसीय ऊतक
- जिगर
- पेट के अवयव
- रक्त का नमूना

जाँच के लिए नमूने सुरक्षित रखने का तरीका

नमूने एकत्रित करते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि इनके प्रयोगशाला पहुँचने तक इनमें कोई खराबी न हो। सुरक्षित एवं संरक्षित नमूने प्रयोगशाला नहीं पहुँचेगें तो जाँच पूरी तरह ठीक नहीं हो सकेगी व बीमारी का पता नहीं चल पायेगा। यहाँ विभिन्न प्रकार की बीमारियों में नमूने सुरक्षित रखने का तरीका दिया जा रहा है।

1. जीवाणु जनित रोगों की जाँच हेतु

इस प्रकार के रोगों की जाँच हेतु लिये गये नमूनों को तरल माध्यम (मीडिया) में एकत्रित करना चाहिए। ध्यान रहे कि नमूने एकत्रित करते समय पूर्ण संक्रमणविहीन (स्टैराइल) स्थिति रहे। तरल माध्यम जैसे न्यूट्रीएन्ट ब्रॉथ, पेप्टोन वाटर, टैट्राथायोनेट ब्रोथ, मैकोन्की ब्रॉथ आदि उपलब्ध नहीं तो फास्फेट बफर सैलाइन (पी0बी0एस0) में भी नमूने रख सकते हैं। इसके लिए स्टैराइल ट्यूब, शीशी, प्लास्क आदि का प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार एकत्रित नमूनों को अच्छी तरह ढक्कन बन्द/सीलकर बर्फ में रखकर प्रयोगशाला भेजना चाहिए। इसके लिए थर्मस आदि का प्रयोग भी किया जा सकता है। यदि प्रयोगशाला काफी दूर हो तो रास्ते में बर्फ बदली जानी चाहिए। क्योंकि एक बार रखी बर्फ 8–10 घन्टे चल जाती है। यदि उससे अधिक समय लगे तो नयी बर्फ रख लेनी चाहिए।

2. विषाणु जनित रोगों की जाँच हेतु

- नमूनों को संक्रमणविहीन (स्टैराइल) स्थिति में ही एकत्रित करें।
- नमूनों को बफर युक्त ग्लिसरीन में संरक्षित करें। परन्तु कुछ विषाणु (यथा रिन्डरपेस्ट) ग्लिसरीन में मर जाते हैं अतः उस परिस्थिति में सिर्फ बर्फ में रखकर हीं भेजें।
- सभी शीशी, फ्लास्क, बोतल आदि जिनमें नमूने रखे गये हो को अच्छी तरह बन्द सीलकर प्रयोगशाला भेजें जिससे बर्फ का पानी नमूनों में प्रवेश न कर पाये।

3. जहरबाद की जाँच हेतु

- जहरबाद की जाँच हेतु नमूनों को बर्फ में रखकर भेजा जाना चाहिए तथा उनमें कोई रासायनिक संरक्षक पदार्थ नहीं मिलाना चाहिए। न्यायिक प्रक्रिया में नमूने हमेशा पुलिस की उपस्थिति में एकत्रित किये जाने चाहिए।

4. रोगी प्रतिरोधी क्षमता जाँच हेतु

- ऊतक व अंगों के भाग बफर युक्त फार्मेलिन में

- सीरम को 1:1000 मरथियोलेट की एक बूँद प्रति मि0ली0 के हिसाब से डालकर संरक्षित करें।
- सभी नमूनों को यथा रक्त, सीरम आदि को बर्फ में रखकर भेजें।

5. ऊतक/अंगों के सूक्ष्म दर्षी अध्ययन हेतु

- 10 प्रतिशत फारमेलिन में या 10 प्रतिशत फारमोल सेलाइन या 10 प्रतिशत बफर युक्त फारमेलिन में

6. परजीवी रोगों की जाँच हेतु

- रक्त का आलेप
- मल/गोबर को शीशी में 10 प्रतिशत फारमेलिन डालकर

जाँच के लिए नमूने प्रयोगषाला भेजने का तरीका

- नमूने एकत्रित कर उन्हें अच्छी तरह से बन्द बरतन यथा शीशी, प्लास्क, बोतल आदि में रखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखें कि बरतन के अवयव बाहर न निकलें।
- नमूने एकत्रित किये गये बरतन पर नमूने का नम्बर, पता/पशु नम्बर आदि अवश्य लिखें व इसका ख्याल रखें कि वह नम्बर/नाम/पता आदि मिटे नहीं। अच्छा तो यह रहता है कि पानी से खराब न होने वाली स्याही युक्त पैन से लिखा जायें। या एक सादा कागज पर लिखकर उसे बोतल। बरतन पर चिपका देते हैं। फिर उस पर पारदर्शी टेप लगा दिया जाता है जिससे कि वहाँ लिखा नम्बर खराब नहीं होता।
- नमूनों के साथ एक पत्र अवश्य भेजना चाहिए जिसमें सम्बन्धित नमूने के विषय में जानकारी यथा रोग का इतिहास, लक्षण, क्षतस्थल, नमूने का प्रकार, उपचार आदि का विवरण हो तथा यह भी दर्शाया गया हो कि किस प्रकार का परीक्षण किया जाना है।
- इस प्रकार के पत्र की एक प्रति नमूने के साथ तथा एक प्रति साधारण डाक से अलग से भेजी जानी चाहिए। नमूने के साथ पता की प्रति को इस प्रकार संभालकर रखें कि वह खराब न हो।
- नमूने भेजने के लिए व्यक्तिगत/स्पीडपोस्ट/कुरियर या पंजीकृत डाक का माध्यम अपनाया जाना चाहिए। इसमें व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति द्वारा नमूने यदि प्रयोगशाला पहुँचाये जाँय तो यह उत्तम विधि है क्योंकि नमूने पहुँचाने वाला व्यक्ति नमूनों को सँभालकर ले जायेगा व यदि रास्ते में बर्फ कम पड़ जाये/पिघल जाये तो नयी बर्फ भी दुबारा डाल लेगा। नमूने भेजने के लिए प्रयुक्त होने वाले पत्र की नमूना प्रति भी पुस्तिका के अन्त में लगायी जा रही है।

पषु रोग जाँच के लिए नमूने एकत्रित, संरक्षित करने तथा प्रयोगषाला भेजने में बरते जाने वाली सावधानियाँ

- जाँच हेतु नमूने पशु की मृत्यु के बाद जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र एकत्रित करने चाहिए तथा प्रतिनिधि नमूना एकत्र करना चाहिए।
- नमूने अच्छी तरह से संरक्षित कर भेजें ताकि वे रास्ते में खराब न हों।
- नमूनों के साथ पूर्ण जानकारी यथा नम्बर, सम्बन्धित पशुपालक का नाम/पता आदि अवश्य होनी चाहिए।

- जाँच के लिए नमूना भेजते समय इस बात का उल्लेख अवश्य हो कि कौन सी जाँच करायी जानी है।
- रोग का इतिहास, रोग का वर्णन, शव परीक्षण के नतीजे व संभावित बीमारी का वर्णन अवश्य होना चाहिए।
- पत्र की एक प्रति सीधे भेजी जानी चाहिए व एक प्रति नमूनों के साथ रखनी चाहिए।
- नमूनों के बरतन इस प्रकार बाँधे जायें कि रास्ते में टकराकर टूटें नहीं। इसके लिए रूई, वस्त्र या थर्मोकॉल का प्रयोग करें।

पंचगव्य पर अनुसंधान, पेटेन्टस एवं विकास

रामस्वरूप सिंह चौहान
पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर–263145 (उत्तराखण्ड़)

पंचगव्य आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसका तात्पर्य गाय से प्राप्त पाँच द्रव्यों यथा गाय का दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोमय का मिश्रण हैं। पंचगव्य को मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए एक दिव्य रसायन माना गया है। पंचगव्य की महत्ता अनेकों प्राचीन ग्रन्थों में भी वर्णित है, जिसमें प्रमुख रूप से भेल सहिंता, कश्यप सहिंता, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, गद निग्रह, रस तंत्र सार तथा योग रत्नाकर ग्रन्थ शामिल हैं। पारसी लोगों में बैल के मूत्र के प्रयोग को पवित्र माना गया है। ऐसा माना जाता है कि पंचगव्य के सेवन से शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक विकार भी दूर होते हैं तथा आयु, बल व ओज की वृद्धि होती है। इसके नियमित सेवन से शरीर में व्याप्त मंद विष समाप्त हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के व्यसनों एवं पर्यावरण प्रदूषणों से प्रभावित शरीर पर यह अदभुत प्रभावकारी है तथा बिगड़े स्वास्थ्य एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता को ठीक करता है। तम्बाकू, मदिरा आदि के सेवन से जो शरीर को क्षति होती है उसे भी पंचगव्य से ठीक किया जा सकता है। पंचगव्य को तैयार करने के लिए देशी गाय से प्राप्त पाँचों द्रव्यों को इस प्रकार मिलाया जाता है कि उसमें घी एवं मूत्र एक–एक भाग, दही दो भाग, दूध तीन भाग तथा गौमय आधा भाग रहता है। पंचगव्य में प्रयुक्त विभिन्न अवयवों के गुणधर्म इस प्रकार हैं कि इन्हें अलग–अलग विभिन्न रोगों से बचाव व उपचार के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है।

गौमूत्र

गौमूत्र कड़वा, तीखा व क्षार युक्त हैं। गौमूत्र में कारबोलिक एसिड होने से उसकी स्वच्छता और पवित्रता बढ़ जाती है। इससे फास्फेट, पोटाश, लवण, नाइट्रोजन, यूरिक अम्ल, हारमोन, साइटोकाइन्स व जीवाणु एवं विषाणु नाशक तत्व होते हैं। गव्य रसायन शास्त्र मतानुसार गौमूत्र में नाइट्रोजन, गन्धक, अमोनिया, तांबा, लौह, पोटेशियम, मैंगनीज, यूरिया, यूरिक अम्ल, सोडियम क्लोराइड, कैल्शियम, फॉस्फोरस, कार्बोलिक अम्ल, लैक्टोज, विटामिन ए, बी, सी, डी तथा ई, एन्जाइम, हिप्यूरिक अम्ल, क्रियेटिनिन तथा स्वर्ण क्षार आदि तत्व पाये जाते हैं। दुधारू गाय के मूत्र में लैक्टोज विद्यमान रहता है जो हृदय और मस्तिष्क के रोगों में बहुत लाभदायक होता है। आठ मास की गर्भवती गाय के मूत्र में पाचक रस (हार्मोन्स) अधिक होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार गौमूत्र लधु, अग्निदीपक, मेधाकारक, पित्तकारक तथा कफ, वात नाशक है। यह भूख बढ़ाता है। यह शूल, उदर रोग तथा पेट के भारी पन को ठीक करता है। यह अपच तथा कब्ज दूर करता है। इसका उपयोग प्राकृतिक चिकित्सा में पंचकर्म क्रियाऐं यथा व्रण धावणार्थ स्वेदनार्थ, विरेचनार्थ तथा निरूहवस्ती में एवं विभिन्न प्रकार के लेपों में होता है। आयुर्वेद में संजीवनी बूटी जैसी कई प्रकार की औषधियाँ गौमूत्र से ही बनायी जाती हैं। गौमूत्र के प्रमुख योग गौमूत्र क्षार चूर्ण (कफ नाशक), मेदोहर अर्क (मोटापानाशक) हैं। गुल्य, आनाह, विरेचन कर्म, आस्थापन, वस्ति आदि व्याधियों में गौमूत्र का प्रयोग करना उत्तम रहता है। गौमूत्र स्वांस, कास, शोथ,

कामला, पाण्डु, प्लीहोदर, मलावरोध, कुष्ठ रोग, चर्म विकार, कृमि, वायु विकार, मूत्रावरोध, नेत्र रोग, खुजली में लाभदायक है। गौमूत्र अग्नि को प्रदीप्त करता है। क्षुधा को बढ़ाता है तथा आम का पाचन करता है व मलबद्धता को दूर करता है। गौमूत्र से कुष्ठादि चर्म रोग दूर हो सकते हैं। कान में डालने से कर्णशूल को नष्ट करता है। गौमूत्र पाण्डुरोग को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद जन्य औषधियों का शोधन गौमूत्र में किया जाता है तथा कई औषधियों का सेवन गौमूत्र के साथ करने की सलाह दी जाती है। आयुर्वेद में स्वर्ण, लौह, धतूरा तथा कुचला जैसे द्रव्यों को गौमूत्र से शुद्ध करने का विधान है। गौमूत्र द्वारा शुद्धीकरण होने पर द्रव्य दोषरहित होकर अधिक गुणशाली तथा शरीर के अनुकूल हो जाते हैं। रोग निवारण हेतु गौमूत्र का सेवन विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है जिनमें पान करना, मालिश करना, पट्टी रखना, एनीमा तथा गर्म सेक करना प्रमुख हैं।

अमेरिका के डा. क्राफोड़ हैमिल्टन के अनुसार गौमूत्र के प्रयोग से हृदय रोग दूर होता है तथा पेशाब खुलकर आता है। उनका कहना है कि कुछ दिन गौमूत्र के सेवन से धमनियां प्रसारित होती है जिससे रक्त का दवाब स्वाभाविक होने लगता है। गौमूत्र से भूख बढ़ती है तथा यह पुराने गुर्दा रोग (रीनल फेल्योर/किड़नी फेल्योर) की एक उत्तम औषधि है। ब्रिटेन के डा. सिमर्स का मानना है कि गौमूत्र रक्त में उपस्थित दूषित कीटाणुओं का नाश करता है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि गौमूत्र घावों की विषाक्तता को दूर करता है तथा पुराने घाव में बढ़ते हुए पीव को रोकता है। यह बालों के लिये एक कंडीशनर की भांति उपयोगी है। दिल संबंधी रोगों, टी.बी., पेट के विकार एवं किडनी संबंधी समस्याओं में गौमूत्र एवं गोबर का संयुक्त उपयोग बहुत लाभदायक होता है। यह एथलीट फीट नामक रोग में बहुत लाभकारी होता है। किडनी में पथरी के लिये 21 दिन तक इसका सेवन लाभदायक होता है। सिरोसिस नामक रोग के लिये 1–2 औंस ताजा गौमूत्र लाभदायक पाया गया है। नाइजीरिया में गौमूत्र का उपयोग करके एक औषधि बनायी गयी है।

सेबासियस सिस्ट में गौमूत्र का उपयोग घाव को धोने में करना अधिक लाभदायक है। चूँकि गौमूत्र एक विसंक्रमण की तरह से कार्य करता है इसलिये यह वातावरण को साफ रखने में सहायक होता है। टी.बी. के लिए उपयोगी रिफेम्पिसिन के साथ उपयोग करने पर यह *ई. कोलाई* पर 5–7 गुना अधिक प्रभावी होती है एवं ग्राम पॉजिटिव बैक्टीरिया पर 3–11 गुना प्रभावकारी होती है।

कृषि में प्रयुक्त विभिन्न रसायनों से खाद्य पदार्थ दूषित हुए हैं। मुख्य रूप से जैवनाशक, कीटनाशक, खरपतवारनाशक, फफूंदीनाशक, मूषकनाशक आदि कई प्रकार के जहरीले रसायनों का प्रयोग फल, सब्जी, अनाज, दलहन, तिलहन आदि सभी प्रकार की फसलों पर हुआ है। जिसके फलस्वरूप इन रसायनों के अवशेष खाद्य श्रंखला में समाते चले गये। इन रसायनिक अवशेषों से शरीर में कई प्रकार की क्षतियाँ देखी गयी हैं जिनमें रोगप्रतिरोधी क्षमता की कमी मुख्य है। क्योंकि शरीर का रोगप्रतिरोधी तन्त्र इन रसायनों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। रोग प्रतिरोधी तन्त्र का पूर्ण विकास तथा ठीक–ठीक बने रहना उत्तम स्वास्थ्य एवं जीवित रहने के लिए आवश्यक है क्योंकि यह तन्त्र शरीर की बाहरी रोगाणुओं से रक्षा करता है और शरीर को पुष्ट बनाये रखता है। पंचगव्य चिकित्सा प्रणाली द्वारा रोगप्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाने एवं सुदृढ़ करने हेतु आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करते हुए अनेकों अनुसंधान किये गये हैं। इसी श्रृंखला में गौमूत्र का चूहों की रोगप्रतिरोधी क्षमता पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। गायों के मूत्र में कुछ ऐसे रसायन तत्व पाये गये जो

प्रतिरोधी तंत्र को मजबूत करते हैं और शरीर की जीवनी शक्ति में वृद्धि करते हैं। ताजा अनुसंधानों से यह भी पता चलता है कि गौमूत्र में कैंसर रोधी गुण भी होता है। विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, गो.ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर एवं गौविज्ञान अनुसंधान केन्द्र, नागपुर द्वारा किए गए अनुसंधान में यह पाया गया है कि गौमूत्र कैंसर के उपचार में लाभकारी होता है। साथ ही कैंसर के उपचार में प्रयुक्त दवाओं को भी प्रभावशाली बनाता है। इस विषय (कैंसर का निदान) में अमेरिकी पेटेन्ट सं. 6896907 प्राप्त किया जा चुका है।

गौचिकित्सा पद्धति का प्रभाव कीटनाशक जन्य रोगों में भी प्रभावी रूप से देखा गया है। वैज्ञानिकों ने यह पाया कि गौमूत्र लिम्फोसाइट्स को कीटनाशकों के प्रभाव में उनके विरूद्ध लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। यह डी.एन.ए. के नष्ट होने को भी रोकता है। इसी कारण से यह कैंसर चिकित्सा में उपयोगी होता है। विशेषज्ञों ने इसके प्रतिरोधक तंत्र की क्षमता को बढ़ाने वाले अवयव के रूप में परीक्षण किया है और यह पाया कि यह कोशिकीय एवं द्रवीय दोनों प्रकार की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाता है। चूजों में यह लिम्फोसाइट्स के वृद्धि क्रिया के गुण को काफी अधिक मात्रा में बढ़ा देता है। उपरोक्त वैज्ञानिकों प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि भारतीय चिकित्सा पद्धति में परंपरागत रूप से उपयोग होने वाले तरीके विषुद्ध वैज्ञानिकता पर आधारित है।

पंचगव्य चिकित्सा पद्धति केवल भारत में प्रभावी नहीं हो रही है। अपितु इसके लिये विश्व स्वास्थ्य संगठन भी अपने स्तर पर प्रभावी कदम उठाने की तैयारी कर रहा है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति जो कि एलोपैथी के नाम से जानी जाती है की उपचार पद्धति चिकित्सकों के सामने सबसे अधिक विकराल समस्या इस चिकित्सा पद्धति के प्रति सूक्ष्म जीवियों में उत्पन्न प्रतिरोधकता है। इन दवाओं के लगातार प्रयोग से सूक्ष्मजीवियों में इन दवाओं के प्रति प्रतिरोधकता का विकास होने लगता है और ये दवायें अप्रभावी होने लगती हैं। दूसरी ओर शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली वातावरणीय प्रदूषण के कारण, जिसमें कीटनाशक, फँफूंदी विष, भारी तत्व शामिल है, भी स्वयं ही कमजोर होती जा रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 2020 तक "एन्टीबायोटिक" औषधि निष्प्रभावी हो जायेगी। ऐसी स्थिति में इस पद्धति के विकल्प की खोज अति आवश्यक है। पंचगव्य पद्धति ने चिकित्सा के एक नये आयाम को जन्म दिया है। अभी हाल ही में आधुनिक प्रयोगों में वैज्ञानिकों ने पाया है कि गौमूत्र को एन्टीबायोटिक दवाओं के साथ प्रयोग करने पर एन्टीबायोटिक अधिक प्रभावशाली रहते हैं और सूक्ष्मजीवियों में इसके प्रति प्रतिरोधकता का विकास नहीं हो पाता है। टी.बी. जैसे रोग में इन दवाओं के साथ गौमूत्र का प्रयोग करने पर न केवल दवा की कम मात्रा से ही रोग खत्म हो जाता है, अपितु औषधि लेने के कार्यकाल में भी बहुत अधिक कमी आ जाती है। इससे धन एवं समय दोनों की बचत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि गौमूत्र आर–फैक्टर (जोकि बैक्टीरिया के प्लाज्मिड़ का एक मुख्य भाग होता है) को रोकता है और एन्टीबैक्टीरियल प्रतिरोधकता के विकास के लिये उत्तरदायी होता है। प्रयोगों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि गौमूत्र सेल एपोप्टोसिस या कोशिकीय आत्महत्या को रोकने में अत्यधिक प्रभावी है। यह डी.एन.ए. में होने वाली क्षति को रोकने में भी प्रभावी भूमिका निभाता है। पक्षियों में गौमूत्र वैक्सीन को अधिक प्रभावी बनाने में सिद्ध पाया गया है। गौमूत्र टी– एवं बी–सैल की विकसित होने की दर को बढ़ाता है तथा IgA, IgM व IgG एन्टीबॉडीज टाइटर बढ़ाता है। यह इन्टरल्यूकिन–1 एवं

2 की निस्सरण की दर को बढ़ाता है। एक परीक्षण में चूहों में इसकी मात्रा क्रमशः 30.9 प्रतिशत एवं 33.6 प्रतिशत बढ़ी हुई पायी गयी। यह हयूमोरल एवं सैल मीडियेटिड़ दोनों प्रकार की प्रतिरोधकता को बढ़ाता है। चूँकि यह मुक्त मूलक बढ़ाने की प्रक्रिया को रोकता है, इसलिए व्यक्ति को युवा बनाये रखने में मदद करता है। यह मुर्गियों एवं चिड़िया की प्रजातियों में अण्ड़े उत्पादन की दर को बढ़ाता है। रासायनिक फिंगर प्रिंटिंग के द्वारा यह देखा गया है कि भारतीय देशी नस्ल की गायों का गौमूत्र दवा के रूप में बहुत अधिक प्रभावी है जबकि अन्य संकर नस्ल गायों में यह गुण नहीं के बराबर ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय नस्ल की गायों में (आयुर्वेद में वर्णित) "रसायन तत्व" पाया जाता है जोकि प्रतिरोधी तंत्र को विकसित करने में अत्यधिक प्रभावी होता है।

तालिका 2: गौमूत्र का द्रवीय रोग प्रतिरोधी क्षमता पर प्रभाव (कीटनाशकों के दुष्प्रभाव को कम करना)

	कीटनाशक	बी–कोशिका (प्रतिशत)	बी–कोशिका गोमूत्र से उपचारित (प्रतिशत)	गोमूत्र से कीटनाशक का घटता प्रतिशत प्रभाव
1.	साइपरमैथ्रिन	56	16	40
2.	एलैथ्रिन	92	60	32
3.	कैप्टान	87	45	42
4.	डाईमैथोएट	73	18	55
5.	मिथाइल पैराथियान	87	54	33
6.	फोरेट	81	58	23
7.	मैन्कोजैब	60	29	31
8.	प्रपोक्सर	76	65	11
9.	थिराम	61	39	22
10.	जिनैब	83	68	15

तनिका 3: गौमूत्र का सैल मीडियेटिड प्रतिरोधकता पर प्रभाव (कीटनाशकों के दुष्प्रभाव को कम करना)

	कीटनाशक	टी–कोशिका (प्रतिशत)	गोमूत्र उपचार	गोमूत्र से फायदा
1.	साइपरमैथ्रिन	56	47	9
2.	एलैथ्रिन	92	57	35
3.	कैप्टान	87	51	36
4.	डाईमैथोएट	87	20	67
5.	मिथाइल पैराथियान	68	55	13
6.	फोरेट	82	67	15
7.	मैन्कोजैब	55	36	14
8.	प्रपोक्सर	71	68	3
9.	थिराम	67	35	32
10.	जिनैब	87	71	16

तलिका 4: गौमूत्र का फ्रीरेडीकल उत्पादन पर प्रभाव

	कीटनाशक	टी–कोशिका (प्रतिशत)	गोमूत्र उपचार	गोमूत्र से फायदा
1.	साइपरमैथ्रिन	174	23	151
2.	एलैथ्रिन	34	27	7
3.	कैप्टान	60	11	49
4.	डाईमैथोएट	66	21	44
5.	मिथाइल पैराथियान	67	8	59
6.	फोरेट	14	5	9
7.	मैन्कोजैब	58	16	42
8.	प्रपोक्सर	104	62	42
9.	थिराम	102	19	83
10.	जिनैब	75	33	42

गौमूत्र वास्तव में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवयव है। जिसमें औषधीय एवं कीटनाशक गुण साथ–साथ हैं। शायद इसी कारण आयुर्वेद में इसे अमृत के तुल्य माना गया है। क्योंकि यह स्वास्थ्य के लिये सभी आवश्यक अवयवों के साथ–साथ बहुत सारी अप्रत्याशित बीमारियों में भी लाभदायक होता है। वर्तमान में विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगशालायें एवं चिकित्सा संस्थान जैसे वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय, भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान एवं अन्य गैर सरकारी संगठनों में गौमूत्र संबन्धी विभिन्न शोध कार्य चल रहे हैं।

गौमूत्र अर्क

गौमूत्र से बनने वाली अधिकतर औषधियों में गौमूत्र अर्क का प्रयोग किया जाता है। इसके लिये गौमूत्र को आसवन के द्वारा अर्क प्राप्त किया जाता है। यह अर्क बहुत सारे रोगों में प्रभावशाली होता है। इसका उपयोग कैन्सर एड्स एवं डायबिटिज एवं चर्म रोगों के लिये भी किया जाता है। इसमें हर प्रकार औषधीय गुण है। यह फ्लू, गठिया, बात, पित्त, कफ एवं वायरस या बैक्टीरिया के कारण कोशिकाओं के जल्दी विभाजन की दर को रोकता है। इसके द्वारा साँप के विष, रासायनिक, कुप्रभाव, माता, एन्ट्राइटिस, अपच, एडिमा, हैपेटाइटिस, लेप्रोसी, आबेसिटी, गैस्ट्रिक अल्सर, तनाव दिल सम्वन्धी रोगों, अस्थमा, टिटेनस, पार्किसन, मार्निंग सिकनैस, बुखार आदि अनगिनत रोगों में प्रभावशाली है।

तालिका 5: एपोप्टोसिस से बचाव में गौमूत्र का प्रभाव

	जैवनाशक	कोशिकाओं का आत्महत्या से बचाव (प्रतिशत)
1.	साइपरमैथ्रिन	8
2.	एलैथ्रिन	16
3.	कैप्टान	14
4.	डाईमैथोएट	13

5.	मिथाइल पैराथियान	14
6.	फोरेट	14
7.	मैन्कोजैब	6
8.	प्रपोक्सर	10
9.	थिराम	8
10.	जिनैब	11

गौमूत्र पेट को साफ करके पेट संबंधी समस्याओं को समाप्त करता है। रक्त के विकारों को दूर करता है। यह ल्यूकोरिया, मासिक धर्म संबन्धी विकारों, मूत्र संबन्धी रोग एवं कफ सम्बन्धी समस्याओं को समाप्त करता है। यह एक सर्वोत्तम एपिटाइजर की भांति कार्य करता है। यह मनुष्य की बुद्धि को तीक्ष्ण बनाता है। रक्त की आयु बढ़ाकर उसके द्वारा कार्य की उपयोगिता को बढाता है। यह रक्त की अशुद्धियों को दूर करके रक्त को सुदृढ़ता प्रदान करता है।

तालिका 6: गौमूत्र एवं अन्य पशुओं से प्राप्त मूत्रों का विभिन्न गुणधर्मों पर प्रभाव (Chemical finger printing)

	गुणधर्म	देशी गाय	पहाड़ी गाय	बकरी	विदेशी गाय	संकर गाय	भैंस
1.	त्रिदोषहर	√	√	√	√	x	√
2.	मधुर रस	√	√	√	√	x	x
3.	मधुर विपाक	√	√	√	x	x	√
4.	कटु रस	√	√	√	√	x	√
5.	तिक्त रस	√	√	√	x	√	√
6.	कशाय रस	√	√	√	√	√	√
7.	रक्त शोधक	√	√	√	√	√	√
8.	दीपन	√	√	√	√	√	√
9.	पाचन	√	√	√	x	√	√
10.	रसायन	√	√	√	x	x	x
11.	तामहर	x	√	√	√	√	√
12.	वात् वृद्धि (निम्न तापक्रम/उच्च मात्रा)	√	√	√	√	x	x
13.	जिगर रक्षक	√	√	√	√	x	√
14.	तनाव रोधक	√	√	√	√	x	√
15.	कैल्शियम पर प्रभाव	√	x	x	√	x	x

गौमूत्र अर्क से MCF-7 के विरूद्ध टेकसॉल की क्षमता में वृद्धि देखी जाती है जो कि स्तन कैंसर के लिये उपयोगी होती है। इस विषय में (सं०रा० अमेरिकी पेटेन्ट नं०–6,410,059) भी मिल चुका है।

यह पाया गया है कि गौमूत्र अर्क कैंसर में अत्यधिक लाभदायक है। यह कैंसर की दवाओं की क्षमता को अत्यधिक बढ़ा देता है। इस विषय में सं०रा० अमेरिकी पेटेन्ट नं०–6896907 भी मिला है। भारतीय देशी नस्ल के गौमूत्र से प्राप्त अर्क में उपस्थित रसायन तत्व एक वायोएन्हान्सर की तरह से कार्यकरता है। यह एपोप्टोसिस से रक्षा करता है तथा लिम्फोसाइट की कार्य क्षमता को बढ़ाकर उनकी आत्मरक्षा करने की प्रवृति को रोकता है। गौमूत्र अर्क डी.एन.ए. की रक्षा करता है एवं बहुत तीव्रता के साथ एक्टिनोमाइसिन–डी एवं कीटनाशकों के कारण होने वाली हानि को प्रायः समाप्त कर देता है।

गोमय

गौमय गोबर के रस को कहते हैं। गाय के गोबर को बारीक सूती कपड़े से छान कर गोमय रस प्राप्त किया जाता है। यह कशैला तथा कड़वा होता है। आयुर्वेद के अनुसार गोमय कफ जन्य रोगों में प्रभावशाली है। इसे अनेक त्वचा रोगों में प्रयोग किया जाता है। यह श्वाँस रोगों को नष्ट करता है। इसका उपयोग त्वचा को कान्तिमय बनाने हेतु स्नानार्थ किया जाता है। मुहांसे दूर करने के लिए इसे मुख कान्तिकर लेप में प्रयोग किया जाता है। गोमय रस तथा गौमूत्र से मिलाकर बनाया हुआ मालिश तैल, वात व्याधि में उपयोगी होता है। यह जोड़ों के दर्द, पीठ का दर्द, गर्दन दर्द, सियाटिका, स्पौन्डिलोसिस आदि रोगों में प्रभावकारी पाया गया है। यह तैल शरीर की माँसपेंशियों को पुष्ट करता है। गोमय रस के साथ गेरू तथा मुल्तानी मिटटी व नीम के पत्तों को मिलाकर नहाने का साबुन बनाया जाता है जो विभिन्न प्रकार के त्वचा रोगों यथा खाज, खुजली, दाद, बालों की रूसी आदि में लाभकारी है। इसे त्वचा की झुरियाँ दूर करने तथा चेहरे को कान्तिमय बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इससे बना दंत मंजन दाँतों में कीड़ा नहीं लगने देता तथा पायरिया को ठीक करता है। यह मंजन मुख की दुर्गन्ध दूर करता है तथा छालों में आराम देता है। गोमय को स्वच्छता प्रदान करने वाला पवित्र द्रव्य माना गया है। अधिकांश भारतीय घरों में गोमय से लीपकर घरों व रसोई को शुद्ध करने की प्रथा रही है। यह कीटाणुनाशक होता है। गोमय कटु, उष्ण, वीर्यवर्धक, त्रिदोशशामक, रक्तशोधक तथा विषध्न होता है। यह उल्टी रोकता है। गोमय में विटामिन बी12 प्रचुर मात्रा में होता है।

गाय के गोबर में नीम की पत्तियों के साथ मिलाकर जले या छाले पड़ी त्वचा पर लेप करने से बहुत लाभ होता है। गाय के गोबर पर किए गये बहुत सारे प्रयोगों के आधार पर प्रसिद्ध इटैलियन वैज्ञानिक जी.ई. बीआगॉड़ ने यह सिद्ध किया है कि ताजा गोबर मलेरिया परजीवी और टी.बी. के जीवाणु को खत्म कर देता है। गाय का गोबर बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता और एन्टीसेप्टिक गुण होता है। यह जीवों पर कवक एवं फफूंद जनित बीमारी को भी खत्म करता है।

गौदुग्ध

सभी प्रकार के दुग्धों में गौ–दुग्ध सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आयुर्वेद के अनुसार गाय का दूध मधुर, शीतल, बल कारक, जीवनीय, वात एवं पित्तनाशक होता है। इसमें भी काले

रंग की गाय का दूध श्रेष्ठ माना गया है। जो त्रिदोषनाशक (वात, पित्त एवं कफ नाशक) होता है। लाल गाय का दूध वातनाशक एवं भूरी गाय का दूध वात तथा पित्त नाशक होता है। श्वेत गाय का दूध कफकारक तथा गुरू होता है। प्रातः काल पिया दूध वृश्य, बृंहण तथा अग्निदीपक होता है। दोपहर में पिया गया दूध बलवर्धक, कफनाशक, पित्तनाशक होता है। रात्रि में पिया हुआ दूध बालक के शरीर को बढ़ाता है, क्षय का नाश करता है, बूढ़ों के शरीर में तेज उत्पन्न करता है। प्रसूता गाय का प्रथम कुछ दिन का दूध (खीस) गरम करते ही गाढ़ा हो जाता है। यह श्वाँस रोग में अत्यन्त लाभकारी माना जाता है। यह आमाशय रस की उग्रता को कम करके अम्लीयता कम करता है। शरीर को पुष्ट बनाता है व पुरूशों को ओजस्वी बनाता है। देशी गाय का दूध सेवन करने वाले मनुष्यों को बुढापा शीघ्र पीड़ित नहीं करता है। गाय के दूध को फाड़कर पनीर बनाने के पश्चात जो पानी रह जाता है उसे मोरट कहते हैं। यह मोरट अतिसार, मोतीझरा आदि रोगों में उपयोगी पाया गया है।

चरक संहिता में गौदुग्ध को जीवनी शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ रसायन कहा गया है। इसके अनुसार गौदुग्ध जीवन के लिए उपयोगी, जराव्याधिनाशक रसायन, रोग और वृद्धवस्था को नष्ट करने वाला, क्षतक्षीण रोगियों के लिए लाभकर, बुद्धिवर्धक, बलवर्धक, दुग्धवर्धक तथा किंचित दस्तावर है। थकावट, चक्कर आना, मद, अलक्ष्मी, स्वाँस, कास, अधिक प्यास लगना, भूख, पुराना ज्वर, मूत्र कृच्छ, रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करता है। दुग्ध आयु स्थिर रख दीर्घायु बनाता है। गौ का दुग्ध रक्त विकारनाशक तथा बुढापे के समस्त रोगों का शामक है। गौदुग्ध के झाग (फैन) का प्रयोग बालों पर करने से वे हमेशा काले बने रहते हैं।

गौदधि

सब प्रकार के दहियों में गौदधि सर्वाधिक गुणदायक है। आयुर्वेद के अनुसार गाय के दूध का दही अत्यन्त उत्तम, बलकारक, रूचिकारक, पवित्र, जठराग्नि बढाने वाला तथा वायु नाशक होता है। दधि उष्ण, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, स्निग्ध, कुछ कशाय, गुरू तथा विपाक में अम्ल होता है। मूत्र कृच्छ, प्रतिश्याय, विषम ज्वर, अतिसार, अरूचि तथा कृशता में यह प्रयोग किया जाता है। यह बल और शुक्र को बढ़ाता है। गाय के दूध से बना दही हृदय के लिए लाभदायक पुश्टिकर, वायुनाशक, दीपन गुण युक्त होता है। दही तीन प्रकार का होता है। मधुर (मीठा), अम्लीय (खट्टा) तथा कशाय। दही को मथने पर उसका मक्खन निकालने के बाद बचा पेय तक्र या मट्ठा कहलाता है। यह मीठे दही का मीठा, खट्टे दही का खटटा तथा कसैले दही का कसैला होता है। मधुर मट्ठा कफकारक एवं पित्त शामक है। खट्टा मट्ठा वातनाशक एवं पित्तकारक होता है। यह दस्त या अतिसार, प्लीहा रेाग तथा आंतो के रोगों में विषेष लाभदायक है। मट्ठा अमृत तुल्य माना गया है। इसका नित्य सेवन करने वाला व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ता है। यह त्रिदोषनाशक, पथ्यों में उत्तम, दीपन, रूचिकारक, बुद्धिजनक, बवासीर और उदर विकारनाशक है। इससे कई प्रकार की आयुर्वेद जन्य औषधियाँ यथा तक्रारिश्ट, तक्रासव, अर्शेानाशक तक्र आदि बनायी जाती हैं। हींग, जीरा, सेन्धा नमक तथा सरसों के तेल के धुऐं से शोधित तक्र को रूचिकारक, पाचक तथा पुश्टिकारक माना गया है। कई प्रकार की आयुर्वेद जन्य औषधियाँ दधि या तक्र से ही सेवन की जाती है या उनका शोधन इनमें किया जाता है।

गौधृत

आयुर्वेद में गाय का घी स्मरण शक्ति बढाने वाला, बलकारक, स्वाथ्यवर्धक, शुद्धि कारक, वातनाशक, शरीर की थकान मिटाने वाला, स्वर अच्छा करने वाला, अग्निवर्धक, वीर्यवर्धक, शरीर में दृढ़ता लाने वाला माना जाता है। घी दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है। एक गौदधि के मथने पर प्राप्त मक्खन को गर्म करने पर प्राप्त होता है दूसरा सीधे दूध से मलाई या क्रीम निकाल कर उसे गर्म करने से मिलता है। दही से प्राप्त घी क्षय रोग, बवासीर तथा पित्त विकारों में लाभकारी होता है। जबकि मलाई/क्रीम से प्राप्त घी रक्त–पित्त रोगों एवं नेत्र रोगों को नष्ट करने वाला बताया गया है। गाय का घी सभी प्रकार के विषों को नष्ट करने वाला माना गया है। यह मेघा, लावण्य, कांन्ति, ओज तथा तेज की वृद्धि करने वाला, रसायन, उत्तम गंधवाला, देखने में मनोहर तथा सब घृतों में अधिक बलवान हैं। घी से कई प्रकार की दवाऐं बनायी जाती हैं जिनमें जीवंत्यादि घृत (जीर्ण ज्वर में), अश्टमंगलघृत (बुद्धि बढाने वाला) प्रमुख हैं। कई प्रकार की आयुर्वेद दवाएं घी के साथ प्रयोग की जाती हैं

गौ उत्पादों का कृषि, ऊर्जा एवं अन्य कार्यों में उपयोग

यह सर्वविदित है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ के लगभग 70 प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर हैं। साथ ही यह कहना असंगत न होगा कि खेती का मूलाधार गौवंश ही है। इतिहास साक्षी है कि जब तक इस देश में गौवंश का विकास, संवर्धन तथा उसकी पूजा होती रही, तब तक हम विश्व में आर्थिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से विकास के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ रहे।

कृषि के विकास में गौवंश का कितना महत्वपूर्ण योगदान रहा है, इस संदर्भ में गत वर्षों में किये गये सर्वेक्षण एवं शोधों के आधार पर कई आँकड़े सामने आये हैं। पंजाब में किये गये एक सर्वेक्षण ने स्पष्ट किया है कि किसान के लिये दुग्ध उत्पादन का कार्य अन्न उत्पादन की अपेक्षा अधिक लाभदायक रहा है। सन् 1989 में प्रकाशित किये गये आँकड़ों के अनुसार डेरी उद्योग से प्रति हैक्टेयर रू० 4548 की उत्पत्ति हुई, जोकि वर्ष भर में प्राप्त विभिन्न फसलों के चक्र समूह जैसे धान–गेहूँ से प्राप्त रू0 2443, मूँगफली–गेहूँ से प्राप्त रू० 1870, गेहूँ–कपास से प्राप्त रू० 1798 तथा मक्का–गेहूँ से प्राप्त रू० 1788 की अपेक्षा कहीं अधिक थी। साथ ही यह भी जानकारी में आया कि भैंस–वंश की अपेक्षा गौवंश उद्योग अधिक लाभकारी रहा। इससे स्पष्ट होता है कि दुग्ध उद्योग में भी आर्थिक दृष्टि से किसान के लिए गाय का योगदान अपेक्षाकृत अधिक है।

आज हम दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम श्रेणी पर आ गये हैं। देश में जितना दूध पैदा होता है उसमें 40 प्रतिशत गायों से मिलता है। श्वेत क्रान्ति का लक्ष्य केवल गौवंश को बढ़ाना और इसकी उत्पादकता का वर्धन करना ही नहीं था, वरन् राष्ट्र के पिछड़े हुए कृषक समाज के उत्थान पर केन्द्रित था। इस प्रकार गौवंश का योगदान एक साधारण किसान के जीवन स्तर के उठाने में बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

इसके अतिरिक्त गौवंश ऊर्जा का भी अनन्त स्रोत रहा है। गौवंशीय बछड़े विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार अपने को आत्मसात किये हुये खेती के कार्य को सफलता पूर्वक निर्वहन कर रहे हैं। जैसे जैसे समय के साथ जोत का आकार छोटा होता जा रहा है। ट्रैक्टर की उपयोगिता कम होती जा रही है। इसके साथ साथ पेट्रोलियम उत्पादों की

कीमतें लगातार बढ़ती जा रही हैं। आज दुनिया के तथाकथित विकसित देश निकट भविष्य में उत्पन्न होने वाले ऊर्जा संकट से चिन्तित हैं। अनुमान है कि पेट्रोल और डीजल तथा मिट्टी के तेल के भंडार 20–25 वर्षों में समाप्त हो जायंगें। लेकिन यदि हम अपने गौवंश की रक्षा कर लें तो हमारे देश में ऐसी स्थिति नहीं आयेंगी। हमारे देश की कृषि के लिए अधिकांश ऊर्जा आज भी गौवंश से मिल रही है। ग्रामों में खेतों की जुताई, गन्ना पेराई, रहट चलाना तथा परिवहन का अधिकांश काम बैलों द्वारा ही किया जाता है। यदि यह ऊर्जा पेट्रोल तथा डीजल से प्राप्त करें तो 100 गुनी अधिक विदेशी मुद्रा खर्च करके उसे तेल उत्पादक देशों से प्राप्त करना होगा, जिसमें मूल्य का बढ़ाना तथा अन्य कई शर्तें लगभग उनकी इच्छा पर निर्भर होगी। हम उन पर आश्रित होंगे।

इसके अतिरिक्त जब हम कुल उपभोग की 10 प्रतिशत ऊर्जा पैट्रोल–डीजल आदि से प्राप्त करने में पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी इतनी चिन्ताजनक स्थिति में फंसे हैं तो यदि 100 प्रतिशत ऊर्जा डीजल से प्राप्त की जायेगी तो देश में पर्यावरण की क्या स्थिति होगी, यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

खेती में भारतीय गौवंशीय बैल अधिक उपयोगी पाये गये हैं। देशी नस्लों के बछड़ों के कमर पर कूबड़ जैसी एक संरचना होती है जिसके कारण हल को खींचने में सहायता मिलती है। बैल वाले हलों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके कारण भूमि में उपस्थित केंचुए सुरक्षित रहते हैं। जबकि ट्रैक्टर से जुताई करने में सर्वाधिक हानि केंचुओं की ही होती है। लेकिन उसकी हानि के दुश्प्रभाव बाद में दिखायी देते हैं जब धरती की सतह में वायु का प्रभाव अवरूद्ध हो जाता है एवं उपजाऊ बनाने के लिये भूमि में बहुत सारे खाद भी डालने की आवश्यकता पड़ती है।

भारतीय गौवंश का प्राकृतिक खेती या जैविक खेती में भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। गौवंश के द्वारा प्रदत्त मुख्य अवयव बछड़े व बैल के अतिरिक्त गोबर व मूत्र भी हैं। वास्तविकता यह है कि गोबर मल नहीं है वरन एक अमूल्य खाद है, जिसका मूल्य भारतीय किसान भलीभांति जानता है। कृषि वैज्ञानिकों ने अन्वेशण करने के उपरान्त यह निश्कर्श निकाला है कि गोबर के सेन्द्रिय खाद के प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है। इसके विपरीत रासायनिक खाद के प्रयोग से उस समय तो फसल अच्छी हो जाती है, किन्तु भूमि की उर्वरा शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होती जाती है। फलस्वरूप हर वर्ष अधिकाधिक खाद तथा कीटनाशक दवाइयों की आवश्यकता होती है। जिससे मिट्टी की उत्पादन क्षमता घटती जाती है और खाद्यान्नों के उत्पादन की लागत बढ़ती चली जाती है। गोबर से खाद बनाने की अब ऐसी विधियॉ उपलब्ध हैं जिनसे खाद मात्रा में कई गुना अधिक एवं प्रभावकारी बनती है। एक गाय अथवा बैल के एक दिन के गोबर से लगभग रू० 40–50 की खाद तैयार हो सकती है। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1970–71 में उपयोग किये गये गोबर की खाद का मूल्य 1344 करोड़ रूपये था जो कि उपयोग किये गये कुल खाद का लगभग 43.2 प्रतिशत था। वर्ष 1980–81 में यही मूल्य 2984 करोड़ रूपये, 1990–91 में 6017 करोड़ रूपये या 12.1 प्रतिशत तथा 1997–98 में 6751 करोड़ रूपये था। उर्वरक के साथ–साथ गोबर से गोबर गैस संयन्त्रों द्वारा ईधन और प्रकाश की भी पूर्ति होती है तथा जनरेटर चलाकर बिजली भी उत्पन्न की जा सकती है।

गौमूत्र एक प्रभावशाली कीट नियंत्रक

गौमूत्र एक प्रभावशाली प्रतिसंक्रामक के तौर पर कार्य करता है और इसलिए वातावरण को शुद्ध करने के साथ–साथ भूमि की उर्वरता को भी बढ़ाता है। गौमूत्र अपनी प्राकृतिक अवस्था में या नीम की पत्तियों के साथ प्रयोग करने पर जैव कीट नियंत्रक के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार के कीटनाशकों का प्रयोग सुरक्षित है। ये न तो भोजन की खाद्य श्रंखला में जुड़ते हैं और न ही इनका रासायनिक कीटनाशकों की तरह स्वास्थ्य पर कोई हानिकारक प्रभाव पड़ता है। गाय के 10 लीटर मूत्र में 2 कि.ग्रा. नीम की पत्तियों को डुबोकर छोड़ दिया जाता है और फसलों, सब्जियों, फलों के वृक्षों पर 1:50 के अनुपात में इसका छिड़काव किया जाता है। गाय के मूत्र एवं नीम से तैयार कीटनाशी पेड़–पौधों की वृद्धि के साथ–साथ कीटनियंत्रक, फफूंद नियंत्रक एवं बीमारी नियंत्रक के तौर पर कार्य करता है। गाय का गोबर और गौमूत्र का मिश्रण एक द्रव–खाद के साथ–साथ प्राकृतिक कीटनाशक की तरह से भी कार्य करता है।

गोपैथी (पंचगव्य)

रामस्वरूप सिंह चौहान
प्राध्यापक एंव विभागाध्यक्ष पशु विकृति विज्ञान विभाग
पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर–263 145 (उत्तराखण्ड़)

आधुनिक परिवेश में प्रदूषित पर्यावरण के कारण जहाँ एक ओर नित नये संक्रमण उत्पन्न हुए है। वहीं खान पान आहार विहार दूषित होने से शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता का ह्रास हुआ है। जिसके कारण अनेक प्रकार के रोगों के प्रति व्यक्ति की सुग्रायता बढी है। आज यह स्थिति आ गयी है कि 20वीं सदी की महानतम् खोज एन्टीबायोटिक दवाऐं अपना असर खोती जा रही हैं तथा अब इतनी कारगर नहीं रही हैं। एक अनुमान के अनुसार आगामी 10 वर्षो में एन्टीबायोटिक दवाऐ रोगों पर नियंत्रण करने में असमर्थ हेागीं। मनुष्य में कई प्रकार के ऐसे रोग उत्पन्न होने प्रारम्भ हो गये हैं जिनका कोई कारगर उपचार भी उपलब्ध नहीं है। अतः मानव समाज तमाम तरह की भौतिक उन्नति के बाबजूद भी शारीरिक व मानसिक व्याधियों से ऊब गया है।अमीर लोग पर्याप्त सम्पन्न होने पर भी डाक्टरों के हाथ अपना धन गवाते रहते हैं मगर उन्हें बीमारियों से छुटकारा नहीं मिलता। गरीब जनता धनाभाव के कारण अपना उपयुक्त उपचार कराने में असमर्थ है ऐसी स्थिति में गाय से प्राप्त उत्पादों का उपयोग कर व्यक्ति विभिन्न प्रकार की व्याधियों से मुक्ति पा सकता है। जो सस्ते होने के साथ ही घर पर ही उपलब्ध हो जाते हैं।

पंचगव्य आयुर्वेद चिकित्सा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसका तात्पर्य गाय से प्राप्त पॉच द्रव्यों का मिश्रण हैं। यथा गाय का दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर। पंचगब्य को मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए एक दिव्य रसायन माना गया है। आयुर्वेद एक प्राचीन चिकित्सा पद्धति है जो आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व अत्यन्त विकसित थी। महाभारत काल में इस चिकित्सा पद्धति तथा पंचगव्य का वर्णन मुख्य रूप से मिलता है। आयुर्वेद में किसी भी रोग की चिकित्सा दो प्रकार से की जाती है। औषधि चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा। औषधि चिकित्सा में प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले विभिन्न द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। इन द्रव्यों को मुख्य रूप से दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है। एक वनस्पतिजन्य तथा दूसरा प्राणिजन्य।

प्राणिजन्य वस्तुओं में गाय से प्राप्त दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर प्रमुख द्रव्य हैं। जिनके मिश्रण से औषधि बनाकर रोगों का उपचार किया जाता है। इसे ही पंचगव्य यानि गाय से प्राप्त पॉच द्रव्य कहते हैं। पंचगव्य की महत्ता प्राचीन ग्रन्थों में भी वर्णित है, जिसमें प्रमुख रूप से भेल सहिंता, कश्यप सहिंता, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, गद निग्रह, रस तंत्र सार तथा योग रत्नाकर ग्रन्थ शामिल हैं। ऐसा माना जाता हैकि पंचगव्य के सेवन से शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक विकार भी दूर होते हैं तथा आयु, बल व ओज की वृद्धि होती है। इसके नियमित सेवन से शरीर में व्याप्त मंद विष समाप्त हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के व्यसनों एवं पर्यावरण प्रदूषणेां से प्रभावित शरीर पर यह अदभुत प्रभावकारी है बिगड़े स्वास्थ्य एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता को ठीक करता है। तम्बाकू, मदिरा आदि के सेवन से जो शरीर को क्षति होती है उसे भी पंचगव्य से ठीक किया जा सकता है।

पंचगव्य को तैयार करने के लिए देशी गाय से प्राप्त पाँचों द्रव्यों को इस प्रकार मिलाया जाता है घी एवं मूत्र एक–एक भाग, दही दो भाग, दूध तीन भाग तथा गोमय आधा भाग। इस मिश्रण को बनाकर विभिन्न मंत्रों से अभिमंत्रित किया जाता है। जिससे सात्विकता एवं प्रभावशीलता बढ़ती है। पंचगव्य शरीर के मन एवं बुद्धि को सात्विक बनाता है। पंचगव्य में प्रयुक्त विभिन्न अवयवों के गुणधर्म इस प्रकार हैं जिन्हें अलग–अलग विभिन्न रोगों से बचाव व उपचार के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है।

गोमूत्र

गोमूत्र तीखा व कड़वा रस होता है जो क्षार युक्त हैं। गो मूत्र में कारबोलिक एसिड होने से उसकी स्वच्छता और पवित्रता बढ़ जाती है। इससे फास्फेट, पोटाश, लवण, नाइट्रोजन, यूरिक अम्ल, हारमोन, साइटोकाइन्स व जीवाणु एवं विषाणु नाशक तत्व होते है। यह लधु, अग्निदीपक, मेधाकारक, पित्तकारक तथा कफ, वात नाशक है। यह भूख बढ़ाता है। यह शूल, उदर रोग तथा पेट के भारी पन को ठीक करता है। यह अपच तथा कब्ज दूर करता है। इसका उपयोग प्राकृतिक चिकित्सा में पंचकर्म क्रियाऐं यथा व्रण धावणार्थ स्वेदनार्थ, विरेचनार्थ तथा निरूहवस्ती में एवं विभिन्न प्रकार के लेपों में होता है। आयुर्वेद में संजीवनी बूटी जैसी कई प्रकार की औषधियाँ गोमूत्र से ही बनायी जाती हैं। गोमूत्र के प्रमुख योग गोमूत्र क्षार चूर्ण (कफ नाशक), मेदोहर अर्क (मोटापानाशक) हैं। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद जन्य औषधियों का शोधन गोमूत्र में किया जाता है तथा कुछ औषधियों का सेवन गोमूत्र के साथ करने की सलाह दी जाती है।

अमेरिका के डा० क्राफोड़ हैमिल्टन का दावा है कि गोमूत्र के प्रयोग से हृदय रेाग दूर होता है तथा पेशाब खुलकर आता है।उनका कहना है कि कुछ दिन गोमूत्र के सेवन से धमनियां प्रसारित होती है जिससे रक्त का दवाब स्वाभाविक होने लगता है। गोमूत्र से भूख बढ़ती है तथा यह पुराने गुर्दा रोग (रीनल फेल्योर/किड़नी फेल्योर) की एक उत्तम औषधि है। ब्रिटेन के डा० सिमर्स का तर्क है कि गोमूत्र रक्त में बहने बाले दूषित कीटाणुओं का नाश करता है।

यह कटु, तीक्ष्ण तथा उष्ण होता है तथा क्षार युक्त होने से वातवर्धक नहीं होता। यह लघु, अग्निदीपक, मेध्य, पित्तजनक तथा कफ–वातनाशक है। शूल, गुल्य, उदर रोग, आनाह, विरेचन कर्म, आस्थापन, वस्ति आदि व्याधियों में गोमूत्र का प्रयोग करना उत्तम रहता है। गोमूत्र से कुष्ठादि चर्म रोग दूर हो सकते हैं। कान में डालने से कर्णशूल को नष्ट करता है। गोमूत्र पाण्डुरोग को नष्ट करता है।

आयुर्वेद में जहाँ भी मूत्र शब्द का प्रयोग हुआ है। वहाँ गोमूत्र ही ग्राहद है। स्वर्ण, लौह, धतूरा तथा कुचला जैसे द्रव्यों को गोमूत्र से शुद्ध करने का विधान है। गोमूत्र द्वारा शुद्धीकरण होने पर द्रव्य दोषरहित होकर अधिक गुणशाली तथा शरीर के अनुकूल हो जाते हैं। रोग निवारण हेतु विभिन्न विधियों द्वारा गोमूत्र का सेवन किया जाता है जिनमें पान करना, मालिश करना, पट्टी रखना, एनीमा तथा गर्म सेक करना प्रमुख हैं। पीने हेतु ताजा तथा मालिश हेतु 2 से 7 दिन पुराना गोमूत्र उत्तम माना गया है। गाय के मूत्र में कारबोलिक अम्ल होने के कारण इसकी स्वच्छता और पवित्रता बढ़ जाती है।

जिन महीनों में गाय दूध देती है उसके मूत्र में लैक्टोज विद्यमान रहता है जो ह्रदय और मस्तिष्क के रोगों में बहुत लाभदायक होता है। आठ मास की गर्भवती गाय के मूत्र में पाचक रस (हार्मोन्स) अधिक होते हैं। गोमूत्र के प्रयोग से ह्रदय रोग दूर होता है व मूत्र

खुलकर आता है। पारसी लोगों में बैल के मूत्र के प्रयोग को पवित्र माना गया है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि घावों की विषाक्तता को दूर करता है तथा पुराने घाव में बढ़ते हुए पीव को रोकता है। गोमूत्र स्वांस, कास, शोथ, कामला, पाण्डु, प्लीहोदर, मलावरोध, कुष्ठ रोग, चर्म विकार, उदर रोग, कृमि, वायु विकार, मूत्रावरोध, नेत्र रोग, खुजली में लाभदायक है। गोमूत्र में गव्य रसायन शास्त्र मतानुसार नाइट्रोजन, गन्धक, अमोनिया, तांबा, लौह, पोटेशियम, मैंगनीज, यूरिया, यूरिक अम्ल, सोडियम क्लोराइड, कैल्शियम, फॉस्फोरस, कार्बोलिक अम्ल, लैक्टोज, विटामिन ए, बी, सी, डी तथा ई, एन्जाइम, हिप्यूरिक अम्ल, क्रियेटिनिन तथा स्वर्ण क्षार आदि तत्व पाये जाते हैं जो शरीर पर सकारात्मक स्वास्थ्य प्रभाव डालते हैं। गोमूत्र अग्नि को प्रदीप्त करता है। क्षुधा को बढ़ाता है तथा आम का पाचन करता है। अन्न को पचाना व मलबद्धता को दूर करता है।

गोमय

गोमय गोबर के रस को कहते हैं। गाय के गोबर को बारीक सूती कपड़े से छान कर गोमय रस प्राप्त किया जाता है। यह कशैला तथा कड़वा होता है एवं कफ जन्य रोगों में प्रभावशाली है। इसे अनेक त्वचा रोगों में प्रयोग किया जाता है। यह श्वाँस रोग को नष्ट करता है। इसका उपयोग त्वचा को कान्तिमय बनाने हेतु स्नानार्थ किया जाता है। इसे मुहांसे दूर करने तथा चेहरे पर कान्ति बढ़ाने के लिए मुख कान्तिकर लेप में प्रयोग किया जाता है। गोमय रस तथा गोमूत्र से मिलाकर बनाया हुआ मालिश तैल, वात व्याधि में उपयोगी है जिसे जोड़ों के दर्द, पीठ का दर्द, गर्दन दर्द, सियाटिका, स्पौन्डिलोसिस आदि रोगों में प्रभावकारी पाया गया है। यह तैल शरीर की माँसपेंशियों को पुष्ट करता है। गोमय रस के साथ गेरू तथा मुल्तानी मिटटी व नीम के पत्तों कों मिलाकर नहाने का साबुन बनाया जाता है जो विभिन्न प्रकार के त्वचा रोगों यथा खाज, खुजली, दाद, बालों की रूसी आदि में लाभकारी है। इसे त्वचा की झुरियाँ दूर करने तथा चेहरे को कान्तिमय बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इससे बना दंत मंजन दाँतों में कीड़ा नहीं लगने देता तथा पायरिया की शिकायत ठीक करता है। यह मंजन मुख की दुर्गन्ध दूर करता है तथा छालों में आराम देता है।

गोमय को स्वच्छता प्रदान करने वाला पवित्र माना गया है अधिकांश भारतीय घरों में गोमय से लीपकर घरों को व रसोई को शुद्ध करने की प्रथा रही है। यह कीटाणुनाशक होता है। गोमय कटु, उष्ण, वीर्यवर्धक, त्रिदोषशामक, रक्तशोधक तथा विषध्न होता है। यह दुर्गन्धनाशक, बलवर्धक तथा कांन्तिदायक है। गोमय में विटामिन बी12 प्रचुर मात्रा में होता है। यह उल्टी रोकता है तथा दन्त रोगों में लाभकारी है।

गोदुग्ध

सभी प्रकार के दुग्धों में गो–दुग्ध सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गाय का दूध मधुर, शीतल, बल कारक, जीवनीय, वात एवं पित्त नाशक होता है। इसमें भी काले रंग की गाय का दूध श्रेष्ठ माना गया है। जो त्रिदोषनाशक (वात, पित्त एवं कफ नाशक) होता है। लाल गाय का दूध वातनाशक एवं भूरी गाय का दूध वात तथा पित्त नाशक होता है। प्रसूता गाय का प्रथम कुछ दिन का दूध (खीस) गरम करते ही गाढा हो जाता है। इसे पीयूश कहते हैं। यह स्वाँस रोग में अत्यन्त लाभकारी माना जाता है। यह आमाशय रस की उग्रता को कम करके एसिडिटी कम करता है। शरीर को पुष्ट बनाता है व पुरूषों को ओजस्वी बनाता है।

गाय का दूध वात रोगों को शांत करने वाला है। गाय के दूध के साथ मांस, मछली, मूली, शराब आदि वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। सामान्यतया आम, मुनक्का, मधु, घी, मक्खन मिश्री आदि दूध के साथ सेवन की जा सकती है। दूध को फाडकर पनीर बनाया जाता है जो पानी रह जाता है उसे मोरट कहते हैं। यह मोरट अतिसार, मोतीझरा आदि रोगों में उपयोगी पाया गया है।

विश्व में गोदुग्ध के समान पौष्टिक आहार अन्य कोई है ही नहीं। इसे अमृत कहा गया है। बाल्यावस्था में दुग्ध तीन साल तक बाल्य जीवन का मुख्य आधार है। मातृविहीन बालक दुग्ध पान से जीवित रहता है। जन्म से मृत्युपर्यन्त किसी भी अवस्था में दुग्धनिषिद्ध नहीं है। स्वास्थ्य की दृष्टि से दुग्ध को पूर्णाहार माना गया है। शरीर संवर्धन हेतु इसमें प्रत्येक तत्व विद्यमान है। मानव की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाने वाला गोदुग्ध ही है। सुश्रुत संहिता में दुग्ध को सभी प्राणियों का आहार बताया गया है। चरक संहिता में गोदुग्ध को जीवनी शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ रसायन कहा गया है। गोदुग्ध जीवन के लिए उपयोगी, जराव्याधिनाशक रसायन, रोग और वृद्धवस्था को नष्ट करने वाला, क्षतक्षीण रोगियों के लिए लाभकर, बुद्धिवर्धक, बलवर्धक, दुग्धवर्धक तथा किंचित दस्तावर है। थकावट, चक्कर आना, मद, अलक्ष्मी, स्वाँस, कास, अधिक प्यास लगना, भूख, पुराना ज्वर, मूत्र कृच्छ, रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करता है। दुग्ध आयु स्थिर रख दीर्घाआयु बनाता है। गौ का दुग्ध रक्त विकारनाशक तथा बुढापे के समस्त रोगों का षामक है। यह सर्वदा सेवन योग्य है। प्रातः काल पिया दूध वृश्य, बृंहण तथा अग्निदीपक होता है। दोपहर में पिया गया दूध बलवर्धक, कफनाशक, पित्तनाशक होता है। रात्रि में पिया हुआ दूध बालक के शरीर को बढ़ाता है, क्षय का नाश करता है, बूढ़ों के शरीर में तेज उत्पन्न करता है। गोदुग्ध के झाग (फैन) का प्रयोग बालों पर करने से वे हमेशा काले बने रहते हैं। देशी गाय का दूध सेवन करने वाले मनुष्यों को बुढापा शीघ्र पीड़ित नहीं करता है। यह वात, पित्त व रक्त विकृति का नाशक है।

गोदधि

गाय के दूध का दही अत्यन्त उत्तम, बलकारक, रूचिकारक, पवित्र, जठराग्नि बढाने वाला तथा वायु नाशक होता है। दही तीन प्रकार का होता है। मधुर (मीठा), अम्लीय (खट्टा) तथा कशाय। दही को मथने पर उसका मक्खन निकालने के बाद मथते समय अर्ध भाग जल मिलाकर पतला पेय तक्र या मट्ठा कहलाता है यह मीठे दही का मीठा, खट्टे दही का खटटा तथा कसैले दही का कसैला होता है। मधुर तक्र कफकारक एवं पित्त शामक है। खट्टा, मट्ठा वातनाशक एवं पित्तकारक होता है यह दस्त या अतिसार, प्लीहा रेाग तथा आंतो के रोगों में विशेष लाभदायक है। तक्र अमृत तुल्य माना गया है। इसका नित्य सेवन करने वाला व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ता है। इससे कई प्रकार की आयुर्वेद जन्य औषधियाँ यथा तक्रारिश्ट, तक्रासव, अर्शोनाशक तक्र आदि बनायी जाती हैं। हींग, जीरा, सेन्धा नमक तथा सरसों के तेल के धुऐं से शोधित तक्र को रूचिकारक, पाचक तथा पुष्टिकारक माना गया है। कई प्रकार की आयुर्वेद जन्य औषधियाँ दधि या तक्र से ही सेवन की जाती है या उनका शोधन इनमें किया जाता है।

यह उत्तम, बलकारक, पाक में स्वादिष्ट, रूचिकारक, पवित्र, दीपन, स्निग्ध, पौष्टिक तथा वातनाशक है। सब प्रकार के दहियों में गोदधि अधिक गुणदायक है। दधि उष्ण, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला होता है। यह बल और शुक्र को बढ़ाता है। गाय के दूध से बना

दही हृदय के लिए लाभदायक पुश्टिकर, वायुनाशक, दीपन गुण युक्त होता है। मट्ठा या तक्र त्रिदोशनाशक, पथ्यों में उत्तम, दीपन, रूचिकारक, बुद्धिजनक, बवासीर और उदर विकारनाशक है।

गोधृत

गाय का घी स्मरण शक्ति बढाने वाला, बलकारक, मोटापा बढाने वाला, शुद्धि कारक, वातनाशक, शरीर की थकान मिटाने वाला, स्वर अच्छा करने वाला, अग्निवर्धक, वीर्यवर्धक, शरीर में दृढ़ता लाने वाला मानाजाता है। धी दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। एक गो दधि के मथने पर प्राप्त मक्खन के गर्म करने पर प्राप्त होता है दूसरा सीधे दूध से मलाई या क्रीम एकत्रित कर गर्म करने से मिलता है। दही से प्राप्त घी क्षय रोग में, बवासीर में, पित्त विकारों में लाभकारी है। जब कि दूध से प्राप्त घी रक्त–पित्त रोगों एवं नेत्र रोगों को नष्ट करने वाला बताया गया है। गाय का घी सभी प्रकार के विषों को नष्ट करने वाला व मंगलकारी माना गया है। घी से कई प्रकार की दवाऐं बनायी जाती हैं जिनमें जीव इत्यादि घृत (जीर्ण ज्वर में), अश्टमंगलघृत (बुद्धि बढाने वाला) प्रमुख हैं। कई प्रकार की आयुर्वेद दवाएं घी के साथ प्रयोग की जाती हैं।

यह कांन्ति और स्मृतिदायक, बलकारक, मेहय, पुष्टिकारक, वात–कफनाशक, श्रमनिवारक, पित्तनाशक, अग्निदीपक, पाक में मधुर, वृश्य, शरीर को स्थिर रखने वाला, हव्यतम आदि बहुत गुणों वाला है। गोघृत विशेषरूप से नेत्र के लिए उपयोगी है। यह मेघा, लावण्य, कांन्ति, ओज तथा तेज की वृद्धि करने वाला, रसायन, उत्तम गंधवाला, देखने में मनोहर तथा सब घृतों में अधिक बलवान हैं। गाय का घी नेत्रों के लिए विशेष हितकारी है, शुक्रवर्धक है, मंगलकारक, सुगन्ध पूर्ण, रूचिकारक रसायन है। यह मेघाशक्ति, सौन्दर्य कांन्ति तथा ओज वृद्धिकर है। यह आयुवर्धक व आयु को स्थिर करने वाला है। मक्खन हितकारी, वृश्य, वर्णकारक, बलकारक, अग्निदीपक, ग्राही, वातपित्त, रक्त विकार, क्षय, बवासीर, अर्दित और खाँसी को नष्ट करता है। बालकों के लिए अमृत तुल्य लाभकारी है।

गोरोचन

गोरोचन रस में तिक्त, वीर्य में शान्त, मंगलकारी, कांन्तिकारक और विष, निर्धनता, ग्रहदोश, उत्माद, गर्भस्रावदोष तथा रक्त रोग आदि का नाशक है। गोरोचन गौ तथा बैल के पित्ताशय के पित्त नामक दृव्य पदार्थ का सुखाया हुआ द्रव्य है। यह बच्चों में स्वांस/पसली चलना की परमौषध है।

पंचगव्य के विभिन्न योग (औषधियाँ)

1. आसव

गौमूत्र आसव का उपयोग पूरी तरह से गौमूत्र के अनुसार ही किया जाता है। यह पुराना होने पर अधिक गुणकारी होता है। इससे शीघ्र लाभ होता है।

विधिः गौमूत्र 10 ली0 तथा पुराना गुड़ 2 किलो को मिट्टी अथवा काँच के पात्र में गलायें। गौमूत्र को पहले उबाल लें ताकि इसकी अमोनिया गैस निकल जाये, इससे गंध नष्ट हो जायेगी। फिर गोमूत्र को छानकर गुड़ को गलाकर पुनः गर्म करें व छानें। इसको लगभग 15 दिन तक छाया में रखे रहना चाहिए। फिर बिना हिलाए ऊपर से पात्र में से यह आसव निथार लेना चाहिए ताकि इसका गाढ़ा भाग यूरिया तलछट नीचे रह जाये और गौमूत्र आसव पतला पारदर्शक अलग एकत्रित कर लिया जाये। मात्रा 25 मि.ली. भोजन के बाद दो बार पीना चाहिए।

2. अर्क

इसका प्रयोग खून में बढ़े हुए कोलेस्ट्रोल को कम करने और वजन घटाने के उपयोग में आता है। बच्चों की खाँसी तथा अन्य सभी प्रकार के रोगों में देने से लाभ होता है।

विधिः गौमूत्र को एक नलिका यंत्र (Distillation Plant) से अर्क निकालना है। उसके मुँह पर थोड़ी केसर की पोटली बांध दी जाती है। इस यंत्र के द्वारा गौमूत्र को एक काँच के बर्तन में भरकर अग्नि पर चढ़ाते है। फिर इस यंत्र में एक नलिका के द्वारा जो भाप निकलती है उसको एक पात्र में जमा करते हैं। जिसके नीचे ठंडा पानी रखा जाता है। इस अर्क का गुण गौमूत्रासव के संपूर्ण गूणों के बराबर तो नहीं हैं क्योंकि क्षार पेंदे में रह जाता है और बहुत से तत्व अग्नि के सम्पर्क में आने से उड़ जाते हैं। तथापि स्वच्छ होने के कारण यह ज्यादा लोकप्रिय है। भोजन के बाद 12 मि.ली. थोड़ा शहद मिलाकर पीना चाहिए।

3. घनवटी

घनवटी महौशधि 4 प्रकार से तैयार की जाती है। घनवटी अर्जुन ह्रदय रोग, घनवटी बेल पेट को बांधती है। घनवटी गुर्च कब्ज एवं घनवटी चिरायता बुखार में प्रयोग के लिए है।

निर्माण विधिः गौमूत्र को कढ़ाई में रखकर ओटावें। अंत में उसका गाढ़ा भाग रह जाये, जैसा कि गन्ने के रस को उबालकर गुड़ बनाया जाता है। गाढ़ा रह जाने पर उतार कर नीचे रखकर ठंडा कर लेना चाहिए। एक किलो गौमूत्र से 40-70 ग्राम घन प्राप्त होता है। उसे खुरचकर आपस में कूटकर गोलियां मटर के आकार की बनानी चाहिए। ये गोलियां चिपचिपी न हों इसलिए गाय के गोबर के उत्तम कण्ड़ों को जलाकर राख बनानी चाहिए। फिर उसे बारीक कपड़े से छान लेना चाहिए। इस राख का कुछ रंग पलटने के लिए शुद्ध गेरू 1–100 भाग पीसकर मिलाना चाहिए। ताकि कुछ रंग सुधर जाए। फिर बारीक कपड़े से छानना चाहिए। इन गोलियों को इस छने हुए राख के पाउडर में ही रखना चाहिए। यह राख का पाउडर इन गोलियों का शोषक है। जिससे मौसम की नमी या गर्मी दोनों का प्रभाव नहीं होता। फिर प्लास्टिक की शीशी में गोलियों को बंद करके रखना चाहिए। जितनी मात्रा पैक करनी हो, उतनी ही शीशी में सुरक्षित रखे। जब गोलियां खाली हो जायें तो फिर इस पाउडर को फेंक दें। नमी व गर्मी से बचाने का दूसरा उपाय यह है कि सूखे हुए घन तत्व को पीसकर चौथाई भाग छोटी हरडे चूर्ण मिलाकर गोली बनायें।

4. बालपाल रस

बालक के अपचन, अफारा पेट के कीटाणु, दूध फैंकना, उल्टी, दूध का दूषित होने पर पाचन न होना, रोग निरोधनी शक्ति की कमी, ग्रोथ फैक्टर की कमी, दाँत निकलने के समय में कष्ट, मानसिक दुर्बलता, अविकसित मस्तिष्क तथा अन्य बाल रोगों से बचाव व उनकी चिकित्सा होती है। नित्य देते रहने से बालक निरोग और स्वस्थ बना रहता है। एक दिन से एक वर्ष तक के बच्चों के लिए 1 छोटा चम्मच पानी से 1 वर्ष से 5 वर्ष तक 2 छोटे चम्मच पानी से लेना है।

निर्माण विधिः कढ़ाई में चीनी व गौमूत्र अर्क को मिलाकर उबालकर, शक्कर के झाग या मैल को बाहर निकालते जायें। षर्बत की चाशनी एक तार की होने पर नीचे उतारकर नींबू का सत व खाने का लाल रंग पहले थोड़ी सी चाशनी में मिलाकर घोलकर सब में मिलाकर ठंडा होने पर छानकर कपड़े से बोतलों में भर लें।

5. नारी संजीवनी

महिलाओं के मासिक धर्म की किसी भी प्रकार की गड़बड़ी (Mensus Disorder) श्वेत प्रदर (Leucorrhea) रक्त प्रदर तथा उनके द्वारा होने वाली सब प्रकार की कमजोरी, कमर दर्द, हाथ पांवँलना, सरदर्द, जी घबड़ाना, चक्कर आना, दिल की कमजोरी, पेट में गैस बनना, हथेली, पगथली जलना, दिमागी गर्मी, क्रोध आना, नींद कम आना चेहरे पर छोटी फुंसिया होना आदि रोगों में हमेशा लेते रहने से स्वास्थ्य एवं सुन्दरता की रक्षा होती है। 4 छोटे चम्मच सुबह पानी से, चार छोटे चम्मच शाम पानी से, 4 छोटे चम्मच रात साते समय पानी से, इसे प्रतिदिन 3 बार लें। गौमूत्र अर्क 500 मि.ली., दानेदार शक्कर (चीनी) एक किलो, नींबू का सत (सायट्रिक एसिड) 5 ग्राम तथा खाने का (बढिया) पीला रंग आधा ग्राम।

निर्माण विधिः कढ़ाई में चीनी व गौमूत्र अर्क को मिलाकर उबालकर, शक्कर के झाग या मैल को बाहर निकालते जायें। शर्बत की चाशनी जैसा होने पर नीचे उतारकर नींबू का सत व खाने का पीला रंग पहले थोड़ी सी चाशनी में मिलाकर घोलकर सबमें मिलाकर ठंडा होने पर कपड़े से छानकर बोतलों में भर लें।

6. प्रमेहारि

स्वप्न दोष, धातु का पतलापन, शीघ्र पतन, शुक्र से शुक्राणु की कमी को ठीक कर इन रोगों से होने वाली कमजोरी, सुस्ती, आलस्य, सरदर्द, याददश्त कम होना आदि को ठीक कर नवयुवकों को बल प्रदान कर सकता है। 4 छोटे चम्मच सुबह पानी से, चार छोटे चम्मच शाम पानी से, 4 छोटे चम्मच रात सोते समय पानी से लेना चाहिए।

निर्माण विधिः कढ़ाई में चीनी व गौमूत्र अर्क को मिलाकर उबालें। फिर षर्बत की पतली चाशनी हो जाने पर, उसके झाग, मैल निकालकर चाशनी साफ कर लें। फिर कढ़ाई नीचे उतारकर नींबू का सत व खाने वाला हरा रंग खूब घोलकर पूरी चाशनी में मिला लें। कपड़े से छानकर बोतलों में भर लें।

7. कब्ज निवारण चूर्ण

यह चूर्ण कब्ज को मधुरता से निवारण कर कोष्ट वद्धता मेदाग्नि नष्ट करने में सक्षम है यह जुलाब नहीं है।

सामग्रीः छोटे हरड़े 1 किलो, काली मिर्च 250 ग्राम, बढ़िया हींग 60 ग्राम, गाय का घी 40 ग्राम, बढ़िया अजवाइन 2 किलो, जवा खार 60 ग्राम, अरण्ड तेल 100 ग्राम, सैधा नमक 600 ग्राम तथा काला नमक 400 ग्राम।

निर्माण विधिः पहले छोटी हरड़े एक किलो को पाँच दिन तक गौमूत्र में किसी लोहे के बर्तन या स्टील के बर्तन में भिगोयें। हर दिन गौमूत्र पलटे, और नया गौमूत्र डालें। छठे दिन, अरण्ड तेल एक सौ ग्राम में कढ़ाई में मन्द–मन्द आँच में गौमूत्र से निकाली हरड़ों को भूने। जब सिक जायें व गौमूत्र की चिपचिपाहट मिट जाये, तब उतार लेवें। सिकने से हरड़े सूख जायेंगी व गीलापन नहीं रहेगा। गाय का घी 40 ग्राम में हींग 60 ग्राम मन्द आँच पर सेक लें। कम से कम आंच लगायें। अब सिकी हुई हरड़े, भुनी हुई हींग तथा ऊपर सामग्री में लिखी सभी बाकी चीजें मिलाकर बारीक चूर्ण मशीन से या हाथ से कूटकर या पीसकर बारीक से बारीक चूर्ण बनायें व छलनी से छानें।

8. गौतक्रासव

सब प्रकार के बवासीर, अजीर्ण, अफारा, गैस, भूख की कमी, घबराहट, कब्ज, सभी

प्रकार के पेट रोगनाशक व स्वादिष्ट पाचक पेय है। छोटे चार चम्मच भोजन के बाद पानी में मिलाकर दो बार पीने से फायदा होता है।

सामग्रीः गाय का मट्ठा एक लीटर, राई का चूर्ण (पीसकर) 50 ग्राम, सैधा नमक (पीसकर) 50 ग्राम तथा हल्दी चूर्ण (पिसी) 50 ग्राम।

निर्माण विधिः गाय के मट्ठे में बराबर का पानी व बाकी तीनों चीजें मिलाकर रख दें। फिर किसी अमृत बान, मिट्टी का बर्तन या काँच के मर्तबान में भरकर मुँह बंद रखकर संधान करें। चौथे दिन सारा छानकर बोतलों में भरें। निथार कर छानना चाहिए ताकि राई के छिलके और हल्दी काम आ सके बाद में बोतलों में भी हल्दी जम जाने के बाद निथारते रहें।

9. पंचगव्य घृत

मिर्गी, दिमाग की कमजोरी, पागलपन एवं याददाश्त की कमी।

सामग्रीः गोबर रस 100 मि.ली., गौ दूध 100 मि.ली., गौघृत 100 मि.ली., गाय का दही 100 मि.ली. तथा गौमूत्र 100 मि.ली.।

निर्माण विधिः सबको एक कढ़ाई में डालकर आग पर चढ़ायें। मन्द–मन्द आंच दें। सिर्फ घी ही पकने के बाद शेष रहे तब ठण्डा करके छान लें।

सेवन विधिः 10 मि.ली. सुबह 10 मि.ली. शाम को गाय के दूध या पानी से लेने से आराम आता है।

10. गौदन्त मंजन

दाँतों का कीड़ा लगना, दाँतों में पानी लगना या गरम वस्तु लगना, मसूढे गलना, मुख दुर्गंध नाशक व पायरिया, मसूढ़ों से पीप आने पर पूर्ण लाभकारी है। सुबह व सोते समय मंजन करने से दन्तरक्षा होती है।

निर्माण विधिः गोबर के कण्ड़ों को पहले साफ सुथरी जगह या कढ़ाई में रखकर जला लें। आधे जल जायें तो साफ तगारी से ढक कर उसकी आस–पास की हवा बन्द करने के लिए टाट का कपड़ा किनारों पर दबा दें। लगभग आधे घंटे के बाद खोलकर काला, मजबूत पका कोयला निकाल लें। कच्चा, कण्डा या जली सफेद राख काम में नहीं लें। चाहें तो जमीन में गढढा खोदकर ईट सीमेंट से प्लास्टर कर, उसे कोयला बनाने के काम में भी लाया जा सकता है। ऊपर किसी बड़े लोहे के बर्तन से ढककर हवा बन्द की जा सकती है। पर यह ज्यादा मात्रा में बनाने पर ठीक रहता है। थोड़े मंजन के लिए तो कढ़ाई में ही बनाना चाहिए। इस तरह बने कोयले को खरल में बारीक करके, सूती कपड़े से रगड़कर छानकर सूक्ष्म पाउडर बना लें। यह बारीक पाउडर छना हुआ 1 किलो, सादा कपूर (पपड़ी का) 20 ग्राम एवं अजवाइन का सत 20 ग्राम को एक शीशी में मिलाकर भर लें।

11. तैल

आँखों की लाली, जलन, आँखों के कारण सिरदर्द, तनाव, कच्चा मोतिया बिन्दु रात्रि को कम दिखना, जाला, आँखों में खुजली होना, आँखों से पानी आना आदि में रात्रि को सोते समय, नित्य एक–एक बूँद डालने से नेत्रों की ज्योति सुरक्षित रहती है।

सामग्रीः गोबर रस 100 मि.ली. तथा तिल्ली का तैल 100 मि.ली।

गोबर का रस निकालने की विधिः देशी गायों का गौमय एक बड़ा ढ़ेर सा गीला इकट्ठा

करें, एक सूती, खादी कपड़ा लगभग 2 फीट, उस गोबर के गढढे में घुसेड़ दें। कपड़े को अन्दर फैला दें। छः घंटे के बाद, उस कपड़े को निकालकर साफ स्टील के बर्तन में निचोड़ लें। रस कम हो तो उसी कपड़े का उसी गोबर के ढेर में फिर फैला दें, 6 घंटे के बाद उसे निकालकर फिर निचोड़ लें।

निर्माण विधिः गोबर का रस और तिल्ली के तेल दोनों को स्टील की भगौनी में मिलाकर मन्द–मन्द आंच पर पकायें, जब गोबर का रस जल जाये तो साफ कपड़े से तैल को छाने व शीशी में भर लें।

12. मरहम

त्वचा पर दाद, खाज, एक्जिमा, सिरोसिस एवं दूषित घाव पर लाभकारी।

सामग्रीः गोबर के कपड़े का बारीक रगड़ा हुआ चूर्ण 500 ग्राम, गेरू मिट्टी 400 ग्राम, नीला थोथा 20 ग्राम, गौमूत्र क्षार 100 ग्राम तथा पेट्रोलियम जेली एक किलो।

निर्माण विधिः पहले नीला थोथा पीसकर फिर मन्द आंच पर छोटी कढ़ाई में हल्का भून लें। रंग सफेद होने पर उतार लें। फिर सूखी सभी चीजों को बारीक रगड़कर पेट्रोलियम जेली में मिलाकर खरल में खूब रगड़ें। बाद में शीशियों में भर लें कभी कोमल स्थान पर लगाने से जलन हो तो थोड़ा घी मिलाकर हल्का करें। उपयोग त्वचा रोग पर गौमूत्र से वह स्थान धोकर दिन में 2–3 बार लगायें।

13. काला तेल

शरीर में किसी भी जगह दर्द हो, मालिश करके सेक दें। आराम होगा। यह तेल गठिया व वातरोग नाशक है।

सामग्रीः गोबर का रस 250 मि.ली., गौमूत्र 500 मि.ली., तिल्ली का तैल 1 ली., कपूर डली 25 ग्राम तथा अजवाइन का सत 10 ग्राम।

निर्माण विधिः पहले कपूर और अजवाइन के सत को शामिल पीस कर एक शीशी में भरें। जब तक तैल बन जाये हिलायें। फिर एक कढ़ाई में गौमूत्र और गोबर को खूब मिलाकर मसलकर मजबूत कपड़े से छानें। इस छाने रस को तैल में मिलाकर मन्द–मन्द आंच पर कढ़ाई में पकायें। सिर्फ तैल रह जायें। तब ठण्डा करके छान लें। शीशी में भरें इसके बाद कपूर का तैल उसमें मिलाकर खूब हिला लें।

14. चन्दन युक्त नहाने का साबुन

दूध, दही, घी, गोमूत्र तथा गोमय रस (पंचगव्य) तथा चन्दन मिश्रित यह साबुन त्वचा के लिए बहुत सुगन्धित व लाभप्रद है। शरीर में चिकनाई तथा कितनी ही प्रकार की एलर्जियों को दूर करनें में सक्षम है। इसके प्रयोग से शरीर कांतिमय और मन प्रसन्न रहता है।

15. अंगराग स्नान टिकिया

सामग्रीः गोबर (देशी गाय का ताजा) 1250 ग्राम, मुल्तानी मिट्टी 1000 ग्राम तथा गेरू मिट्टी 200 ग्राम।

गोबर का रस निकालकर बराबर तिल्ली का तैल को मिलाया हुआ और उससे पकाया तैल 250 ग्राम, कपूर डली वाला 50 ग्राम, अजवाइन सत 10 ग्राम।

निर्माण विधिः गीले ताजे गोबर और गेरू, मुल्तानी मिट्टी को खूब पीसकर मिलाकर, दो दिन धूप में सुखायें। फिर बारीक चूर्ण करके, कपड़े अथवा बारीक छलनी से छानें। बाद

में कपूर की डली को खूब पीसकर तथा इसी में मल मिलाकर खूब मसलें। फिर नीम के पत्तों को गरम उबला हुआ काढ़ा मिलाकर छानकर मात्रा के अनुपात में मिला लें फिर डाइ या सांचे में दबाकर धूप में सुखा दें। बाद में सोप स्टोन में लपेटकर पोंछकर पैक कर दें।

16. धूप बत्ती

सभी उपासना की विधियों में धूप प्रज्जवलन को अत्यंत महत्व दिया गया है। हवा शुद्धि, वायु प्रदूषण की रोक, पर्यावरण संतुलन, दीर्घ श्वसन, स्वास्थ्य रक्षण, रोगाणुनाशक एवं मनः शांति से पूरा संबंध है। यह धूप शास्त्रोक्त, शुद्ध वनस्पतिजन्य द्रव्यों का होना आवश्यक है।

सामग्रीः गीला गोबर 1000 ग्राम, खस का कुटा हुआ बारीक बुरादा या आरा मशीन की लकड़ी का बुरादा 500 ग्राम, चांवल (अक्षत) 200 ग्राम तथा गाय का घी 200 ग्राम।

निर्माण विधिः गोबर के अलावा सभी को गाय के घी में मिलाकर हाथों से मिश्रण करें। फिर गोबर के साथ मिश्रण करके खूब आपस में मसलें। बाद में एक पाइप, जिस आकार की बत्ती बनाना हो उसी आकार के सांचे से धूप बना लें। धूप में रखकर सुखा दें, फिर डिब्बों में पैक कर दें।

17. धूप

गाय के गोबर के कण्ड़े की आग या कोयलों की आग पर धूपन करने से जीवाणु–कीटाणु, मच्छर आदि से मुक्ति मिलती है। इस वातावरण में श्वांस लेने से रोग नाश होकर प्राणवायु मिलती है। दीर्घायु एवं मानसिक शांति मिलती है। रात को पलंग के पास धूप देकर सोने से नींद गहरी आती है।

सामग्रीः लाल चन्दन 250 ग्राम, जटामासी 250 ग्राम, नागरमोथा 250 ग्राम, सूखा गोबर चूर्ण 750 ग्राम तथा कपूर काचरी 250 ग्राम।

निर्माण विधिः सबको खूब बारीक पीसकर पाउडर बना लें व उपरोक्त विधि से धूप बनायें।

18. एक्जिमा साबुन

इसे एक्जिमा, दाद, सिरोसिस में पानी में घिसकर लगाना है। यदि जलन लगे तो घी, खोपरे का तैल लगा लें।

सामग्रीः मुल्तानी मिट्टी 1 किलो, गीला गोबर 1250 ग्राम, लाल गेरू मिट्टी 200 ग्राम तथा नीला थोथा।

निर्माण विधिः नीला थोथा को बारीक से बारीक पीसकर उपरोक्त सामान में मिलाकर नीम के पत्तों का काढ़ा बनाकर छानकर उसे पानी से गीला करके टिकिया सा बनाकर डाइ या वैसे ही टिकिया बनाकर धूप में सुखा लें।

सावधानीः

1. इस टिकिया को चेहरे और आँखों पर नहीं लगाना चाहिए।
2. यह स्नान के लिए नहीं है।
3. जिस स्थान पर एक्जिमा हो वहीं लगाना चाहिए। शरीर के दूसरे हिस्सों पर न लगाए।

19. कीट नियंत्रक

वृद्ध गाय, बैल तथा सांड के मूत्र में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है। 10 किलो गौमूत्र में 2.5 किलो नीम की पत्ती को पन्द्रह दिन सड़ाकर उसे छानकर कीटनाशक औषधि बनती है। जिसको 1 किलो कीटनाशक औषधि को 100 किलो जल में मिलाकर पौधों पर

छिड़का जाता है। इस छिड़काव से प्राप्त रासायनिक छिड़काव के जहर से बच सकते हैं और बहुत कम खर्च में आपके पौधों पर छिड़काव हो जाता है। पेड़–पौधों को कई प्रकार के कीटों से छुटकारा मिलता है।

20. शेम्पू

इसे सिर में स्नान के समय बालों पर अच्छी तरह लगाएं।

सामग्रीः गौमूत्र दो किलो, अरीठा 50 ग्राम, कपूर डली 15 ग्राम तथा अजवाइन का सत 10 ग्राम।

निर्माण विधिः अरीठा बारीक कूटकर गौमूत्र में उबालें। 500 ग्राम षेश बचने पर छानकर कपूर व अजवाइन के सत को एक अलग शीशी में थोडी देर रखकर हिलाएं फिर छने गौमूत्र में मिला दें।

भारतीय गाय की कृषि, स्वास्थ्य एवं राष्ट्र विकास में उपयोगिता

रामस्वरूप सिंह चौहान
प्राध्यापक एंव विभागाध्यक्ष पशु विकृति विज्ञान विभाग
पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर–263145 (उत्तराखण्ड़)

परमात्मा सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वातर्यामी एवं सर्वव्यापी है। हम सभी उनके अंश है। जब से हम उनसे विलग हुए हैं तभी से दुःखी एवं अशान्त है। उन्होने कृपा करके हमारे योग–क्षेम एवं कल्याण के लिए अपनी दैवी शक्ति एवं दिव्य गुणों से युक्त "कामधेनु" की रचना की। भारतीय गोवंश उसी कामधेनु की संतति है, ईश्वरीय ज्ञान एवं विज्ञान की विधि वेदों, स्मृतियों, उपनिशदों एवं धर्मशास्त्रों में गोवंश की महिमा का वर्णन है। **अथर्ववेद में "धेनु सदनम् रयीणाम्" अर्थात् "गाय सम्पत्ति का भण्डार है" तथा यजुर्वेद में "गोः मात्रा न विद्यते" अर्थात "गो अनुपमेय है"** उद्घोशित है। सभी पूज्य ऋशियों, महर्शियों, मुनिगण, संतों, महात्माओं, धर्माचार्यो, तीर्थकरों, ज्ञानियों एवं विद्वज्जनों ने गोवंश का गुणगान किया है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वापर में प्रत्यक्ष गोचारण कर गोसेवा–धर्म का जगत् को शिक्षण दिया है। हमारे संस्कार, यज्ञ एवं अनुश्ठान गाय के बिना सम्पन्न नहीं होते। हमारा आरोग्य, सुख–शान्ति, समृद्धि, और दैनंदिन जीवन वस्तुतः गोवंश पर ही अधारित है।

दिव्य गुण–समुच्चय

गाय चैतन्य, प्रेम, करूणा, त्याग, सन्तोष एवं सहिश्णुता, आदि दिव्य गुणों से परिपूर्ण है। जिस परिवार में वह रहती है, अपने को उस परिवार का अंग मानती है तथा उसके सुख–दुख का अनुभव करती है। अपने परिवारजनों को तथा अपने घर के मार्ग को पहचानती है। उसे अपने प्रियजनों पर आने वाले संकट का पूर्वाभास लगभग एक माह पूर्व हो जाता है। अपने सेवकों एवं रक्षकों पर आक्रमण होने पर उनकी रक्षा के लिए वह अपने प्राणों की बाजी लगा देती है। अपने ऊपर किये गये उपकार को वह कभी भूलती नहीं है। वन में गोचारण करते हुए ग्वाले पर सिंह का आक्रमण होने पर उसके द्वारा चराई जा रही गायें ग्वाले को बीच में कर उसके चारों ओर रक्षा व्यूह बनाती हैं, अपना पृष्ठ भाग ग्वाले की और अग्रभाग सिंह की ओर करके सिंह को ग्वाले तक नहीं पहुँचने देती हैं। वह ग्वाले के प्रति उसके प्रेम, कृतज्ञता, उसकी रक्षा के लिए त्याग, चैतन्य, बुद्धिमता एवं संगठन–कौशल का अनुकरणीय उदाहरण है। गोमाता हमारी यज्ञीय दैवी संस्कृति का मूर्तिमान स्वरूप है। गाय के रोम–रोम से सात्विक विकिरण होता है। श्रद्धापूर्वक उसकी सेवा करने से अन्तःकरण में परमात्मा के स्मरण का स्फुरण होता है। वह मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली है। मन के भाव को तुरन्त जान लेती है। परमात्मा ने उसे ऐसी शक्ति दी है कि वह अपनी रक्षा करने वाले की रक्षा अपने दिव्य शरीर से भी जाकर करती है। उसके दर्शन, वन्दन और परिक्रमा करने से सभी प्रकार के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक कष्टों एवं क्लेशों का निवारण होता है। अन्तिम समय में आत्मा की मुक्ति के लिए गोदान एक अमोघ उपाय है। कल्याण के गोसेवा अंक 1995 में प्रकाशित मेरे लेख "गोमाता के अनन्त दिव्य गुण" (पृष्ठ 193) में गोमाता के दिव्य गुणों का विवेचन विस्तार से किया गया है।

जीवनी–शक्तिवर्धक दुग्धामृत

आपने नवजात "वत्स" अर्थात बछिया/बछड़े को अवश्य देखा होगा। वह जन्म से ही कीर्तिवान, बलवान एवं ओजस्वी होता है। गाय और उसके वत्स में रोगों से लड़ने की अदभुत प्रतिरोधक शक्ति होती है। ये सभी गुण गाय के दूध में भी विद्यमान हैं। गाय का दूध सुपाच्य, पौष्टिक, सात्विक एवं स्वादिष्ट होता है। वह श्रेष्ठतम पूर्ण आहार है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ चरक संहिता के दुग्ध प्रकरण में कहा गया है "प्रवरम्, जीवनीयम्, क्षीरमुक्तम्, रसायने" अर्थात दूध जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाला श्रेष्ठतम रसायन है। उल्लेखनीय है कि आयुर्वेद में जहाँ कहीं भी क्षीर, दुग्ध, पय, दधि, घृत, गोमय शब्द का प्रयोग किया गया है उससे तात्पर्य गाय के दूध, दही, घी, तथा गोबर से ही है। महाभारत में यक्ष युधिश्ठिर से पूछता है "अमृतं किम्", युधिश्ठिर उत्तर देते है "गवामृतं" अर्थात गाय का दूध ही अमृत है।

गायत्री तपोभूमि शान्तिकुंज हरिद्वार के अधिष्ठाता पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य से जब प्रश्न किया गया कि आप गृहस्थ होते हुए थोड़ी आयु में इतना अधिक कार्य कैसे कर पाए? पंडित जी ने गोदुग्ध की महिमा का वर्णन करते हुए कहा "मैने 24 वर्ष तक मात्र गोदुग्ध का सेवन करते हुए माँ गायत्री की साधना की है। इसी दुग्ध के परिणामस्वरूप लगभग 500 ग्रन्थों का लेखन, समाजसेवा एवं साधनात्मक कार्य किया जा सका है जिसे सामान्यतः 700 वर्ष के जीवन में प्रयास सहित किया जा सकता है।"

प्राचीन भारत में डेढ़–दो मन् दूध देने वाली गाय होती थी। अभी भी एक मन् अर्थात 40 लीटर दूध देने वाली गाय भारत में है। भारत की गीर नस्ल की गाय मैक्सिको, ब्राजील व इजराइल में 80 लीटर दूध प्रतिदिन दे रही है। फाह्यान आदि विदेशी यात्रियों ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि भारत में पानी मांगने पर दूध दिया जाता था। दुर्भाग्यवष गोवंश की निरन्तर उपेक्षा, शोषण एवं हत्या के परिणामस्वरूप गोवंश की संख्या देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में नगण्य रह गई है। जितना गोवंश 1947–48 में था अब उतना भी नहीं रहा। गाय के दूध का अभाव हो गया है तथा गोघृत उपलब्ध होना तो असम्भव हो गया है। फलस्वरूप देश में बीमारी, विकलांगो, मन्दबुद्धियों, तथा अपराधियों की संख्या बढ़ रही है। गरीबी और ऋण में वृद्धि हुई है, और हो रही है। देश का धन स्किम्ड मिल्क पाउडर तथा बटर आयल आयात करने में विदेश जा रहा है।

आरोग्यकारी दही

आयुर्वेद के दूसरे सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश के पूर्व खंड, मिश्र प्रकरण 14/10 में कहा गया है कि गाय के दूध से बना दही सबसे श्रेष्ठ, विशिष्ट गुणों वाला, रूचि तथा भूख बढ़ाने वाला, हृदय को बल देने वाला, पुश्टिकारक तथा वायुनाशक है। रूसी जीव वैज्ञानिक एली मेचनीकोफ, जो पास्चर इन्स्टीट्यूट, पेरिस में अनुसंधान कार्य करते रहे है, ने दही पर अनेक प्रयोग करने पर उसमें शरीर के लिए लाभकारी विलक्षण गुण पाये है। उन्होने पाया कि दही में दूध के अम्ल से उत्पन्न सूक्ष्म जीवाणु आँतों से विषाणुओं की उत्पत्ति को रोकते हैं। दही भूख तथा पाचन शक्ति को बढ़ाता है। अतिसार तथा इसी प्रकार के अन्य रोगों का निदान दही से तत्काल होता है। इससे कब्जियत तथा हृदय के लिए हानिकारक कोलेस्ट्राल पर नियंत्रण होता है। दही से कैन्सर की भी चिकित्सा होती है।

सात्विक बल–बुद्धिवर्धक गोघृत

भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, मिश्र प्रकरण 18/4–6 के अनुसार गाय का घृत आँखों के लिए विशेष लाभकारी, अग्नि तथा बलवर्धक, मधुर रसयुक्त, शीतल, वात–पित्त–कफनाशक, बुद्धिवर्धक, लावण्य, कान्ति, ओज, तथा तेज की अत्यन्त वृद्धि करने वाला, अलक्ष्मी, पाप रक्षोगह को दूर करने वाला, मंगलदायक, सुगन्धयुक्त, रोचक, दीर्घजीवन प्रदान करने वाला एवं समस्त घृतों से श्रेष्ठ रसायन है। आजकल रोग में घी विष के समान माना जाने लगा है। जैसे ही रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ी कि पाश्चात्य चिकित्सक (एलोपैथी के डॉक्टर) घी वर्जित कर देते है। किन्तु गोघृत खाने से कोलेस्ट्राल नहीं बढ़ता है, इसके सेवन से हृदय पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। सभी जल कुछ दिन रखने से विकृत हो जाते हैं, उनमें दुर्गन्ध, कीड़े व काई पैदा हो जाती है। किन्तु गंगाजल वर्षो रखने पर भी विकृत नहीं होता। उसमें कोई अलौकिक शक्ति है जो प्रयोगशाला की जाँच परिधि के बाहर है। इसी प्रकार गोघृत में भी एक अलौकिक शक्ति है जो हृदय को हानि न पहुँचाकर विशेष शक्ति प्रदान करती है।

गोमूत्र, एक दिव्य औषधि

भावप्रकाश, पूर्व खण्ड, मिश्र प्रकरण, अध्याय 19 के श्लोक 1 से 6 के अनुसार गोमूत्र कटु, तिक्त, कशाय–रसयुक्त तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार (खारा) लघु अग्निदीपक, मेधा के लिए हितकर, पित्तकारक, कफ तथा वातनाशक है। शूल, उदर–रोग, अनाह (अफरा), खुजली, नेत्र तथा मुख–सम्बन्धी रोग, विलास रोग (कुष्ठ–भेद) वात, आम, वस्ति–सम्बन्धी रोग, कुष्ठ, कास–श्वांस, शोथ, प्लीहा (कामला), पाण्डु रोग का नाश करने वाला होता है।

गोमूत्र विषनाशक (एन्टीटॉक्सिन) है, विषाक्त भोजन अथवा औषध के विष को अथवा मानसिक विषादजन्य विष को समाप्त करता है, घाव में पैदा होने वाले पीव (रस) को सुखाता है, एन्टीसेप्टिक है, एन्टीबायोटिक है तथा रोगावरोधक शक्ति को बढ़ाता है। गोमूत्र में विटामिन "बी" तथा कार्बोलिक एसिड होता है जो रोगाणुओं का नाश करता है। गोमूत्र देशी नस्ल की ऐसी बछिया/गाय का होना चाहिये जो विचरण करके घास आदि वनस्पति खाने वाली तथा स्वच्छ जल पीने वाली हो। वयस्क के लिए 24 घंटे में 10 से 20 मि.ली. खाली पेट प्रातः व सायं। अल्पायु में आयु के अनुसार मात्रा कम कर लेनी चाहिये।

रोगाणुनाशक गोबर

चौरासी लाख योनियों के प्राणियों में गाय ही एक ऐसा प्राणी है जिसका पुरीश (गोबर) मल नहीं है, उत्कृष्ट कोटि का मलशोधक है, रोगाणु एवं विषाणुनाशक तथा मित्र जीवाणुओं का पोषक है।

विषैले पदार्थ जैसे भिलावाँ, केवाच आदि खाने से शरीर में छाले–फफोले, खुजली आदि हो जाते हैं। अन्य अनेक कारणों से रक्त दूषित होकर नाना प्रकार के फुन्सी–फोड़े हो जाते हैं। केवल गाय के गोबर का रस 2 तोला सुबह, 2 तोला शाम को पीने से वे नष्ट हो जाते हैं।

इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. जी.ई. बीगेड ने गोबर के अनेक प्रयोग कर सिंद्ध कर दिया है कि गाय के ताजे गोबर से तपेदिक तथा मलेरिया के रोगाणु मर जाते है। उनका कहना है कि आरम्भिक अवस्था के रोगाणु तो गोबर की गन्ध से ही मर जाते हैं। गोबर को इस आश्चर्यजनक रोगाणुनाशक शक्ति के कारण इटली के अधिकांश सेनिटोरियमो में

रोगियों के उपचार हेतु गोबर का प्रयोग किया जाता है। वहाँ हैजा व अतिसार के रोगी को ताजा पानी में गोबर का रस घोलकर देना दोषरहित चिकित्सा मानी जाती है। जिस तालाब में हैजे के रोगाणु हो जाते है उसमें गोबर डालने से उनका सफाया हो जाता है। वैद्य लोग क्षय के रोगियों को गायों के समूह में रहने तथा सोने का परामर्श देते हैं, क्योंकि गोबर व गोमूत्र की गन्ध से क्षय के रोगाणु समाप्त हो जाते है।

यवतमाल जिले के पुसद गाँव–निवासी श्री नारायण राव देवराव पांढरी पांडे उपाख्य नडेप काका ने गोबर से ऐसा साबुन (अंगराग) तैयार किया है जिसके इस्तेमाल से फोड़े–फुन्सी, खाज–खुजली व एक्जीमा आदि चर्मरोग समाप्त हो जाते है। उन्होने गोबर से ही धूप बत्तियाँ तैयार की हैं जो वातावरण को रोगाणु–मुक्त करती है।

देह–मन–बुद्धि–शुद्धिकारक पंचगव्य

धर्मशास्त्र रूप में प्रसिद्ध ग्रन्थ "धर्मसिन्धु" के अनुसार पंचगव्य की मिश्रण विधि निम्न प्रकार हैः

द्रव्य	परिमाण
गोमूत्र	आठ माशा
गोमय (गोबर)	सोलह माशा
दूध	बारह माशा
छही	दस माशा
घी	आठ माशा
कुशोदक	चार माशा

बौधाथन स्मृति में इन पाँचों द्रव्यों के सम्मिश्रण का विधान इस प्रकार हैः–

एक–एक भाग गोघृत, गोमूत्र और कुशोदक, दो भाग दही, तीन भाग गोदुग्ध तथा आधा भाग गोमय का रस होना चाहिए।

गायत्री मंत्र द्वारा गोमूत्र को, गन्ध द्वारां. मंत्र से गोदुग्ध को, दधिक्राव्णों मंत्र द्वारा गोदधि को, शुक्रमसि0 तथा ज्योतिरसी0 मंत्रों द्वारा गोघृत को, तथा देवस्य त्वा0 मंत्र द्वारा कुशोदक को अभिमंत्रित करके पंचगव्य में मिलाना चाहिए।

इसमें दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य है। एक यह है कि गोबर को त्यों का त्यों मिश्रण में नहीं डालना चाहिए, बल्कि इसका रस प्रयोग में लाना चाहिए (ताजे गोबर में सूती कपड़ा डालकर निकालने पर उसे निचोड़ने से गोबर का रस प्राप्त होता है) तथा दूसरी यह कि उपर्युक्त द्रव्य देशी नस्ल की स्वस्थ गाय के होने चाहिए।

गाय का दूध, घी, मूत्र, तथा गोबर के रस को मिलाकर उपर्युक्त विधि–विधान से तैयार किये गये पंचगव्य के नियमित प्राशन से शरीर में व्याप्त मंद विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। अन्तर्गत–संचार, जिसमें घुल–घुलकर मनुष्य का जीवन नष्ट होता है, विषैली औषधियों के सेवन से गिरता हुआ स्वास्थ्य तथा लम्बी बीमारी से संचित विष का प्रभाव निश्चित रूप से नष्ट होता है। पंचगव्य के सेवन से देह के ही नहीं, मन एवं बुद्धि के विकार भी दूर होते है। आयु, बल, तेज आदि की वृद्धि होती है।

प्रकृति त्रिगुणात्मक है। जगत् के सम्पूर्ण प्राणियों तथा पदार्थो में सत्य, रज तथा तम ये तीन गुण न्यूनाधिक मात्रा पाये जाते है, जैसे भैंस में तम तथा गाय में सत्व गुण की प्रधानता है। जिन मनुष्यों में सत्व प्रधान होता है वे शान्त, संतोषी, सत्कर्मरत तथा

लोकोपकारी होते है। सत्संग, स्वाध्याय, संध्या, योग, यज्ञ, संतसेवा, गोसेवा, दान एवं ध्यान आदि उनेक स्वाभाविक कर्म होते हैं। किसी व्यक्ति में उपर्युक्त तीनों गुणों का न्यूनाधिक होना उसके आहार पर भी निर्भर करता है। पंचगव्य मनुष्य के शरीर, मन एवं बुद्धि को सात्विक बनाता है। सात्विक मन एवं बुद्धि से ही सच्चिदानन्द परमात्मा की अनुभूति की जा सकती है।

गोबर की खादः स्वस्थ मिट्टी–पौष्टिक आहार

मिट्टी दिखती तो जड़ पदार्थ जैसी है किन्तु वस्तुतः वह एक सजीव सेन्द्रीय पदार्थ है। ई.वी. वाफर की प्रसिद्ध पुस्तक "दि लिविय स्वाइल" में धरती की जीवन्तता का गहरा विश्लेषण है। मिट्टी के गुण उसके कणों के आकर एवं रचना पर अवलम्बित है। कणों के साथ उसमें वनस्पतियों व प्राणियों के अवशेष तथा मित्र जीवाणु विपुल मात्रा में होते है। कृषि से इनका विघटन होता रहता है। गोबर की खाद के रूप में ये पोषक तत्व भूमि को फिर से दिये जाते हैं जिससे भूमि को उर्वरा शक्ति में वृद्धि होकर पौष्टिक एवं स्वादिश्ट अन्न, फल व सब्जी आदि की निर्मित होती है।

सन् 1904 में भारत की उन्नत कृषि–पद्धति का अध्ययन करने ब्रिटेन से भारत आए कृषि वैज्ञानिक सर एलबर्ट होवर्ड ने अपने शोध ग्रन्थ "एन एग्रीकल्चर टेस्टामेन्ट" में लिखा है "पूसा (बिहार) के आस–पास के गाँवों में उपजने वाली फसलें सभी प्रकार के कीटकों से गजब की मुक्त थीं। किसानों को अपनी परम्परागत कृषि–पद्धति में कीटनाशक–जैसी चीजों के लिए कोई स्थान था ही नहीं। भारतीय कृषि–पद्धति का ज्ञान और उसमें मेरी दक्षता ज्यों–त्यों बढ़ती गई, मेरी फसलों में भी त्यों–त्यों रोगों की कमी होती गई। मुझे दो प्रोफेसर मिले थे– एक थे वे अनपढ़ किसान और दूसरे थे स्वयं पौधों के महामारी रोग। इन नए प्रोफसर से पाँच साल तक ट्यूशन पढ़ने के बाद मैनें जान लिया कि इन सभी पौधों पर जिनकी जड़ों के लिए वहां की मिट्टी अनुकूल है, कीड़े वगैरह का आक्रमण नगण्य होता है। नुकसान पहुँचाने वाले कीट, वैक्टीरिया व महामारी रोग उन्हीं पौधों पर जाकर लगते हैं जिनकी मिट्टी रूग्ण है। स्वस्थ भूमि में उगने वाले पौधों पर ये फटकते भी नहीं। जाहिर है कि पौधों की रूग्णता भूमि की रूग्णता का ही परिणाम है। भूमि की रूग्णता क्या चीज है? यह उसकी उर्वरा शक्ति का ह्रास है जो उसे उसके वाजिब हिस्से से वंचित रखने के कारण हुआ है। भूमि का वाजिब हिस्सा क्या है? गोबर, वनस्पतियों तथा प्राणियों के अवशेष जो गोबर की खाद में होते है, वहीं उसका वाजिब हिस्सा है। वह उसे मिलना चाहिए तभी भूमि स्वस्थ रह सकती है जिससे पौधे स्वस्थ होंगे तथा प्राणी भी स्वस्थ रहेंगे।

गोबर की खाद भूमि का आहार है जो आज हमारे देश से आवश्यकता का मात्र 2.5 प्रतिशत उपलब्ध है। फलस्वरूप भूमि भूखी रहती है। गोबर की खाद की कमी को गोवंश रक्षण–संवर्धन तथा नडेप काका द्वारा प्रणीत कम्पोस्ट खाद उत्पादन पद्धति से, जिससे 8 किलोग्राम गोबर से 2 क्विंटल खाद बनती है, पूरा किया जा सकता है।

न्यूजीलैड के मि0 पीअर प्रोक्टर भारत आए थे। उन्होने बायोडायनेमिक कृषि पद्धति का आविश्कार किया है। वह गाय या बैल के सीगों में गाय का गोबर सितम्बर माह में भरकर उन्हें जमीन में गाड़ देते हैं। 5 या 6 महीने बाद बसंत ऋतु के पहले उन्हें निकालते है और उस गोबर को हवाबन्द डिब्बों में रखते है। उसमें से केवल 35 ग्राम संचित गोबर लेते हे और उसे 10 लीटर वर्षा के पानी में अच्छी तरह मिलाते हैं। फिर उसे एक एकड़

भूमि में छिड़कते है। इस छिड़काव से उन्हें कृषि उत्पादन बढ़ाने में काफी सहायता मिलती है। गोबर से तरल खाद बनाकर प्रयोग करने से पौधों को बहुत लाभ मिलता है। गाय के गोबर को किसी मोटे कपड़े में बाँधकर पानी के ड्रम में लटका देते हैं। 15–20 दिन में गोबर के तत्व पानी में आ जाते है। इस पानी को क्यारियों में देने से पौधे स्वस्थ रहते है और कृषि उत्पादन अधिक होता है।

अफ्रीका में गाय के गोबर का प्रयोग मरूस्थल को रोकने के लिए भी किया गया है। थोड़ी–थोड़ी दूर, पर छोटे–छोटे गड्डे खोदकर उनमें गाय का गोबर भर देते हैं ताकि वहाँ सूक्ष्म जीवाणु पनप सके। इससे भूमि की उर्वरा शकित बढ़ी है और मरूस्थल का बढ़ना रूक गया है।

गोबर व गोमूत्र श्रेष्ठतम उर्वरक होने के साथ–साथ सशक्त मल शोधक भी है। उनमें निहित मित्र जीवाणु हानिकारक शत्रु जीवाणुओं एवं विषाणुओं का नाश करते है तथा भूमि व उसमें उगने वाली फसल तथा उससे प्राप्त अन्न आदि का उपभोग करने वालों में भी वे एक प्रतिरोधक शक्ति का निर्माण करते हैं।

रासायनिक खादः रूग्ण मिट्टी – विषाक्त आहार

स्वस्थ रहने के लिए हमें आरोग्यकारी अन्न, सब्जी, फल आदि चाहिए, किन्तु आजकल हमें सामान्यतः विषैला आहार मिल रहा है। जब से भारतीय कृषि में रासायनिक खाद का चलन हुआ है खाद्यानों की गुणवत्ता, पौष्टिकता एवं स्वाद में भारी कमी आई है और वे लगभग सारहीन हो गये हैं। रासायनिक खाद से आरम्भ में उपज अवश्य बढ़ी थी, किन्तु हर वर्ष रासायनिक खाद की मात्रा बढ़ानी पड़ी और उपज अनुपात में कम होती गई।

रासायनिक खाद का केवल 30 प्रतिशत ही मिट्टी में घुलमिल पाता है शेष पत्थर की भाँति वहां बना रहता है, जो भूमि को बंजर बना रहा है।

जिन खेतों में रासायनिक खाद का प्रयोग हुआ, उनमें पानी की खपत दुगुनी हो गई तथा उनकी फसलों में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक शक्ति न होने पर रोगाणुओं और कीटाणुओं ने उन पर आक्रमण किया। फलस्वरूप कीटनाशकों की आवश्यकता हुई। कीटनाशकों के छिड़काव के फलस्वरूप खाद्यान्न तो विषैला हुआ ही, पशु–चारा और भी अधिक विषैला हो गया। उनका उपयोग करने से अनेक रोग पैदा हुए। हममें से अधिकांश, हमारा गोवंश एवं पशुधन सभी बीमार रहने लगे है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारतीय माताओं के स्तनों के दूध में अन्तर्राश्ट्रीय मानक से 21 गुना विष पाया गया है जो एक भयावह स्थिति है। कीटनाशकों का विष भूमि में व्याप्त होकर अपना प्रभाव कई वर्षो तक रखता है। वह विष पानी के साथ मिलकर पृथ्वीतल के नीचे जल के स्रोतों तक पहुँच जाता है। फलस्वरूप हमको पेयजल भी विषयुक्त मिल रहा है। पश्चिमी देशों में रासायनिक खाद के प्रयोग को धीरे–धीरे कम किया जा रहा तथा 35 कीटनाशकों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया हैं पश्चिम के कुछ सम्पन्न देशों में तो खाद्यान्न, सब्जी, फल, शुगर, चाय आदि को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है। गोबर की जैविक खाद के प्रयोग से उत्पन्न किये गये खाद्यान्नों को "हेल्थँड" तथा "न्यूटिशियसँड" का नाम दिया गया है तथा रासायनिक खाद तथा कीटनाशकों के प्रयोग से उत्पन्न किए गये खाद्यान्नों को साधारण श्रेणी का माना जाता है। "हेल्थँड" का मूल्य सामान्य के मूल्य से दुगुना होता है। हेल्थँड का इस्तेमाल करने से मेडिकल बिल में भारी कमी होती है, बीमारी से नष्ट होने वाला समय एवं शक्ति भी बच जाती है।

इस संदर्भ में पर्यावरण मंत्रालय की नीति का पैरा 8.3 काफी महत्वपूर्ण है। उसे वहाँ उद्घृत कर रहा हूँ– "नगरों और उद्योगों सहित विशिष्ट स्रोतों से होने वाले प्रदूषण की ओर तो ध्यान दिया गया है किन्तु कीटनाशकों तथा रासायनिक उर्वरकों–जैसे कृषि –निवेशों से होने वाले प्रदूषणकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। यह स्थिति दिनों दिन बिगड़ती जा रही है। इससे हमारी भूमि और जल संस्थान तो प्रदूषित हो रहे है, मानव जाति का स्वासथ्य भी खतरे में है। कीटनाशकों के प्रयोग से संबन्धित एक दीर्घावधि नीति संबन्धित मंत्रालय के सहयोग से तैयार की जायेगी जिससे पर्यावरण रक्षा की दृष्टि से स्वीकार्य कीटनाशकों, विषाक्त और स्थायी कीटनाशकों के प्रयोग पर रोक लगाना शामिल है। उर्वरकों के प्रयोग के बारे में भी इस तरह की नीति बनाए जाने की आवश्यकता है।"

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में भी चेतावनी दी गई है– "शहरी औद्योगिक अवशिश्ट एवं रासायनिक उर्वरक के कारण पृथ्वी के सम्पूर्ण जलाशय प्रदूषित हो रहे है जो मानव जाति के अस्तित्व के लिए एक गम्भीर खतरा है।"

जल संसाधन मंत्रालय की 1986 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के लगभग सभी प्रान्तों में भू–जल में नाइट्रेट एवं नाइट्राइट की मात्रा इतनी अधिक बढ़ गई है कि कुओं और नलकूपों का पानी पीने योग्य नहीं रहा।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिशद के सेवा–निवृत्त महानिदेशक श्री एन0 एस0 रंधावा ने चेतावनी दी है कि खेती की वर्तमान प्रणाली (ट्रैक्टर, रासायनिक खाद व कीटनाशक से खेती) चलती रही तो वह दिन दूर नहीं जब पंजाव भी मरूस्थल हो जायेगा।

हमारा दुर्भाग्य है कि केन्द्र सरकार का कृषि मंत्रालय अभी भी रासायनिक खाद तथा कीटनाशकों के प्रयोग को ही प्रोत्साहन दे रहा है।

प्रदूषण–रहित ऊर्जा के नैसर्गिक स्रोतः बैल एवं गोबर

भारत में बछड़े के जन्म पर उत्सव मनाया जाता है। बछड़ा शब्द संस्कृत के "वत्स" शब्द से बना है। वत्स शब्द से वात्सल्य शब्द बना है। बछड़ा पैदा होते ही "माँ"शब्द का उच्चारण करता है। गोमाता उसकी रक्षा अपने प्राण देकर भी करती है। तीन वर्ष की आयु होने पर बंध्यकरण करके बैल बनाया जाता है। कृषि–कार्य, जुताई–बुआई, सिंचाई, गन्ना पिराई, सरसों पिराई आदि सभी काम करता है। गाड़ी में लगकर बोझा ढोता है। भाई की तरह प्रेम करता है। जो कार्य हम अपने लिए स्वयं नहीं कर सकते वह हमारे लिए करता है। केन्द्रीय कृषि यांत्रिक अनुसंधान संस्थान, नवीबाग, भोपाल ने बैल–चलित एक मिनी ट्रैक्टर बनाया है, जो परम्परागत हल से 2–3 गुनी जुताई करता है तथा किसान उस पर बैठकर कार्य कर सकता है। अब तक बैलगाड़ियों के पहिये लकड़ी के बनते रहे और उस पर लोहे की पटरी चढ़ाई जाती रही। कुछ वर्ष पूर्व डनलप कम्पनी ने गाड़ियों में मोटर–वाहन की तरह के टायर–टयूब भी लगाये लेकिन उतनी सफलता नहीं मिली जितनी आशा थी। उसका मुख्य कारण यही रहा कि जहां कहीं पहियों की हवा निकल जाये बेचारा किसान असहाय हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए केन्द्रीय कृषि यान्त्रिकी अनुसंधान संस्थान, भोपाल ने बस और ट्रक के पुराने टायरों को लेकर उनमें नारियल की जटा भरकर उन्हें पंचर–रहित बना दिया है।

व्यवहारिक विज्ञान संस्थान, सांगली ने परम्परागत बैलगाड़ी को विकसित करके "बलवान" नाम से एक नया स्वरूप प्रदान किया "बलवान" नामक इस विकसित गाड़ी का पूरा स्वरूप लोहे का बनाया गया है। एकदम नए ढंग से बनायी गई इस गाड़ी के पहिये

का व्यास तो परम्परागत गाड़ी जितना ही है लेकिन गोलाकार धुरी से जुड़े कोणों से बनाया गया है। पहिये में अलग–अलग धुरियाँ हैं। बलवान नामक इस मॉडल में सामान लादने के लिए 30 वर्गफुट स्थान रखा गया जबकि परम्परागत गाड़ियों में यह सिर्फ दस वर्गफुट ही है। इस नए मॉडल में चेसिस के नीचे जो बियरिंग ब्लाक लगाया गया है यह आसानी से झटके सह लेता है। इसमें स्टब एक्सल का प्रयोग भी हुआ है। गाड़ी का ढांचा इस ढंग से बनाया गया है कि उसे गाड़ी की लम्बाई के हिसाब से व्यवस्थित किया जा सकता है। गाड़ी के पहिये में सपोर्टर खास तौर से लगाए गये है। ये सपोर्टर अधिकांश भार को सीधा अपने ऊपर वहन कर लेते हैं। इस बैलगाड़ी में ब्रेक की भी व्यवस्था की कई है। वह बैलगाड़ी किसानों के लिए अधिक उपयोगी और कारगर साबित हुई है। इस नई गाड़ी की भर–क्षमता परम्परागत गाड़ियों से दुगुनी है। इसकी मरम्मत आदि पर खर्च भी न के बराबर होता है। गति को बढ़ाने के लिए इसके पहियों पर रबड़ चढ़ाई गई है। इससे सड़क की भी नुकसान नहीं पहुँचाता है।

इधर "ग्रामलक्ष्मी" नाम की एक विकसित बैलगाड़ी हाल ही में सामने आई है। पिछले दिनों भारत सरकार के जहाजरानी मंत्रालय की प्रेरणा से पूर्ण रूप से इस्पात से बनाई गई इन गाड़ियों का प्रदर्शन भारतीय प्रबंध संस्थान, बैंगलूर की विज्ञान और प्रोद्योगिकी शाखा ने एक कृषि मेले में किया था। इसमें दो बैलों के स्थान पर एक ही बैल से काम चलाया जा सकता है। इस गाड़ी में भी ब्रेक की व्यवस्था है। यह दुगुना माल ढो सकती है।

नेशनल इन्स्टीट्यूट फार ट्रेनिंग इन इन्डस्ट्रीयल इन्जीनियरिंग (नाइटी), बम्बई ने ऐसा उपकरण बनाया है जिससे रहट के साथ बैल के घूमने पर विद्युत–धारा उत्पन्न होती है। उस उपकरण से दो बैल एक हार्स–पावर अर्थात् 786 वाट बिजली लगातार पैदा करते है।

भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने नैरोबी में 10 अगस्त, 1981 को हुए अन्तर्राश्ट्रीय ऊर्जा सम्मेलन में स्वीकार किया था कि हमारे बिजलीघरों, जिनकी अधिष्ठापित क्षमता 22 हजार मेगावाट है, से अधिक ऊर्जा हमारे बैल प्रदान करते है। यदि उनको हटा दिया जाये तो बिजली–उत्पादन पर 2,540 अरब डालर की पूंजी–निवेश करना पड़ेगा। इस पर भी कृषि अर्थव्यवस्था को गोबर की खाद और कंड़े के रूप में इस्तेमाल किए जाने वाले सस्ते इर्धन की हानि होगी।

1993 में लगाये गये एक अनुमान के अनुसार भारत में एक हजार मेगावाट बिजली के उत्पादन की लागत लगभग एक हजार करोड़ रूपये आ रही है। 5 मार्च, 1994 को आयोजित पशु ऊर्जा सम्मेलन में भारत के कृषि मंत्री भी बलराम जाखड़ का कहना था कि देश में 7 करोड़ 40 लाख बैलों और 80 लाख भैंसों (भैंस का पुलिंग) से प्रतिवर्ष 10 हजार करोड़ रूपये की चार हजार करोड़ हार्सपावर ऊर्जा प्राप्त होती है।

वैदिक वाड्मय में "शिव" शब्द "कल्याण" का पर्याय है। भगवान् शिव भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं लोक कल्याण की साक्षात मूर्ति है। लोककल्याण की भावना अर्थात शिव का ब्रह्मविद्यास्वरूपा माँ पार्वती वरण करती हैं। दोनों के सानिध्य से गणेश जी अर्थात लोक कल्याण के कार्य में निर्विघ्नता का प्रादुर्भाव होता है। कामधेनु के वत्स नन्दी जी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग द्वेश एवं अहंकार से विरत रहकर जीवनभर लोक कल्याणरत रहते है अर्थात भगवान् शिव का वहन करते हैं, उनके वाहन है।

अष्टैश्रर्व्यमयी लक्ष्मी वसते गोमये सदा–महाभारत

गाय का गोबर श्रेष्ठतम उर्वरक एवं मलशोधक तो है ही, ऊर्जा के अविरल स्रोत के

रूप में भी उसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। खाद के रूप में उसका प्रयोग करने से पूर्व गोबर गैस संयंत्र के माध्यम से उससे गोबर गैस, जिसे बायोगैस भी कहते हैं, प्राप्त की जा सकती है, जिससे रसोई के चूल्हे तथा प्रकाश के लिए हन्डे जलाए जा सकते हैं, जनरेटर सेट तथा हल्के वाहन चलाए जा सकते हैं। गोबर गैस संयंत्र से गैस–उत्पादन करने के पश्चात गोबर की जो स्लरी बाहर निकलती है, उर्वरक के रूप में उसकी गुणवत्ता और भी बढ़ जाती है। बायोगैस का लाभ छोटे बड़े दोनों स्तर पर उठाया जा सकता है। कैलिफोर्निया में एक महानुभाव ने ऐसे गोवंश, जिसे अनुपयोगी समझकर कत्लखानों को बेचा जा रहा था, की खरीद कर बड़े–बड़े बाड़ों में रखना आरम्भ कर दिया। हजारों की संख्या में एक हुए गोवंश के गोबर से उन्होने बायोगैस तथा जैविक खाद का उत्पादन करके उसकी बिक्री आरम्भ कर दी। कुछ ही समय में वह उद्योग लाभकारी उद्योग के रूप में विकसित हो गया। भारत सरकार के गैर–परम्परागत ऊर्जा तथा पर्यावरण मंत्रालय ने ऊर्जा के इस स्रोत को लोकप्रिय बनाने के लिए गोबर गैस संयंत्र की स्थापना हेतु व्यक्तियों को 70 प्रतिशत तथा संस्थाओं को 90 प्रतिशत सब्सिडी का प्रावधान किया हुआ है। अनेक व्यक्तियों तथा संस्थाओं ने इसका लाभ उठाया है, किन्तु फिर भी सरकारी तंत्र की शिथिलता के कारण यह योजना उतनी लोकप्रिय न हो सकी जितनी होनी चाहिए थी। अभी तक कुल 20 लाख गोबर गैस संयंत्र लगाए गये है। मझली क्षमता के गोबर गैस संयन्त्र से गैस का चूल्हा, प्रकाश के लिए हंडा, सिंचाई पम्प व आटे की चक्की आदि को चलाने के लिए 5 से 10 हार्सपावर का इंजन चलाने–योग्य गैस मिल जाती है। गोबर गैस संयंत्रों के माध्यम से 139 लाख टन केरोसिन/डीजल के मूल्य के बराबर बचत देश में हो सकती है। इससे स्वावलंबन बढ़ेगा तथा पर्यावरण प्रदूषित होने से बचेगा।

गोबर के कंडे (उपले) भी ऊर्जा का एक बड़ा स्रोत है। भोजन पकाने, दूध गर्म करने, आयुर्वेदिक की औषधियाँ तैयार करने, जच्चाओं के सेंक, पूजा, यज्ञ तथा दाह संस्कार करने में भी कंडों का उपयोग बड़ी मात्रा में होता है। जर्मनी के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक जुगनर लेस भारत आए। उन्होने भारतीय जीवन में गोवंश के योगदान पर अध्ययन करके अपनी पुस्तक "भारत में गाय क्यों पूजनीय है" में लिखा कि यदि जलाने के लिए कोयला या लकड़ी का ही इस्तेमाल किया जाये तो साढ़े तीन करोड़ टन कोयला अथवा 6 करोड़ 80 लाख टन लकड़ी की आवश्यकता होगी। उतनी बड़ी मात्रा में न तो कोयला ही उपलब्ध है और न लकड़ी। कोयला एवं लकड़ी से गोबर के कंडे के जैसी मंद–मंद, प्रदूषण–रहित आग भी नही मिल सकती।

ट्रैक्टर से खेती महँगी, प्रदूषणकारी तथा परावलम्बी

कृषि के आधुनिकीकरण के नाम पर भारत में विदेश का अंधानुकरण करते हुए ट्रैक्टर से खेती को भारत सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया गया। यह विचार नहीं किया गया कि अमेरिका, जिसकी हम नकल कर रहे हैं, के पास पृथ्वी का 2 प्रतिशत क्षेत्रफल है और जनसंख्या मात्र 5 प्रतिशत है। हमारे पास ढाई प्रतिशत क्षेत्रफल है जबकि जनसंख्या 16 प्रतिशत है। वहाँ पर आबादी के दो प्रतिशत लोग खेती करते है जबकि यहाँ पर 70 प्रतिशत से अधिक लोग खेती पर निर्भर है। अमेरिका दुनिया भर के 33 प्रतिशत खनिज तेलों के इस्तेमाल करने की क्षमता रखता है। हमारी क्षमता उसका सौवां भाग इस्तेमाल करने की भी नहीं है। भारत से अधिकांश जोतें छोटी–छोटी है। हजारों वर्षों से बैलों द्वारा खेती यहाँ पर सफलतापूर्वक होती चली आई है। ट्रैक्टर से खेती को सरकारी प्रोत्साहन

के बावजूद आज भी भारत से 80 प्रतिशत कृषि–कार्य बैलों के माध्यम से होता है। इन्स्टीट्यूट आँ डकोनोमिक ग्रोथ, दिल्ली ने एक विशेष अध्ययन में पाया है कि देश में लगभग 8 करोड़ बैल कृषि कार्य में लगे है। वे जुताई, बुआई दॉय चलाने, पानी खींचने, कृषि उत्पादों का परिवहन करने आदि सभी कार्य करते है। उनके बदले यदि हमें ट्रैक्टर से ही ये सभी कार्य करने हों तो 2 करोड़ से अधिक ट्रैक्टरों की आवश्यकता होगी। दो करोड़ ट्रैक्टरों की लागत का अनुमान लगभग 40 खरब रूपये है। 8वीं पंचवर्षीय योजना कुल 80 खरब रूपये है फिर इतनी बड़ी धनराशि ट्रैक्टर खरीदने के लिए कहां से उपलब्ध होगी? 2 करोड़ ट्रैक्टरों के लिए पैट्रोलियम पदार्थो का आयात करना होगा, उसका मूल्य 20 अरब अमेरिकन डालर के लगभग होगा अर्थात 7 खरब रूपये वार्शिक। जबकि आज भारत मात्र 6 अरब डालर का पेट्रोलियम आयात करता है। यह आयात मुख्यतः अरब देशों से होता है।

पाकिस्तान की भमिका शत्रु देश के रूप में स्पष्ट है। सभी खाड़ी देश इस्लामिक देश है। पाकिस्तान के साथ कभी भी युद्ध हो सकता है। युद्ध के समय पाकिस्तान के दबाव में आकर यदि उन देशों ने भारत को पेट्रोलियम पदार्थ देना बन्द कर दिया, तो उसका परिणाम समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये। वैज्ञानिकों का कहना है कि खाड़ी देशों में पेट्रोलियम के भण्डार 20 वर्ष में समाप्त होने वाले है। ऐसी स्थिति में पेट्रोलियम पदार्थो पर अपनी निर्भरता बढ़ाने में क्या बुद्धिमानी है?

यही नहीं, पेट्रोलियम पदार्थो के जलने से वायु प्रदूषण होता है। अपने देश के पर्यावरण में पहले ही काफी प्रदूषण हो चुका है। इस दृष्टि से भी विचार किये जाने की आवश्यकता है।

बैल की जगह ट्रैक्टर का उपयोग हमारे देश की परिस्थिति के अनुकूल नहीं है। अनेक किसान ट्रैक्टर खरीदने हेतु लिये गये बैंक–ऋण व उस पर ब्याज की किस्तों को अदा न कर सकने के कारण अपनी कृषि भूमि ही गँवा बैठे हैं। ट्रैक्टर में डीजल की लगातार खपत, कल–पुर्जो तथा उसके सतत ह्रास के कारण कृषि उत्पादन की लागत बढ़ गई है, फलस्वरूप महँगाई बढ़ी है। ट्रैक्टर के प्रयोग से लाखों बैल बेकार तथा खेतीहर मजदूर भी बेरोजगार हो गये है। ट्रैक्टर से गहरी खुदाई के कारण भूमि के मित्र जीवाणुओं, केंचुओं आदि का नाश हो जाता है। जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास होता है।

पर्यावरण–रक्षकः गोवंश

गोवंश का मुख्य आहार घास, भूसा, पुआल, गन्ने की अगौल, चोकर–छिलका, खली आदि वे बस्तुएं हैं जो मनुष्य का आहार नहीं है। यदि गोवंश इन वस्तुओं को अपने आहार के रूप में ग्रहण न करें, तो इनके ढेर लग जायें और इनको जलाकर नष्ट करना पड़े, उससे भारी प्रदूषण हो। दूसरी ओर गोवंश के गोबर–गोमूत्र से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है, वनस्पतियाँ उगती हैं, पौधे बड़े होते हैं और वन का रूप धारण करते हैं। वन वायु को शुद्ध करते है। जलवायु फल, जड़ी–बुटियाँ इन्ही से मिलती है। समुद्री वैज्ञानिक स्टीफन कैक्स के अनुसार, कारखानों तथा वाहनों के धुएँ से वायु में कार्बन–डाइऑक्साइड के बनने तथा वनों एवं पर्वतों के वृक्षों की अनियंत्रित कटाई होने, पर्वतों की बर्फ आवश्यकता से अधिक पिघलने तथा उस जल को रोकने के लिए वन न होने से भूमि का कटाव हो रहा है, समुद्र में जल बढ़ रहा है और समुद्र में जल बढ़ने से समुद्र किनारे बसे नगरों तथा मध्य में बसे टापुओं पर जल प्लावन का खतरा पैदा हो गया है।

गोवंश की हत्या में निरन्तर वृद्धि होने से गोवंश की संख्या कम हुई है, फलस्वरूप बढ़ती हुई आबादी के लिए अन्न उपजाने हेतु गोबर–गोमूत्र की खाद के अभाव में रासायनिक खादों एवं कीटनाशक का उपयोग बढ़ा है जो जल एवं वायु दोनों की प्रदूषित कर रहा है। यदि गोबर की खाद का उत्पादन बढ़े, तो रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों के प्रयोग से होने वाला भारी प्रदूषण रोका जा सकता है।

अमरीका के वैज्ञानिक जेम्स मार्टिन ने दुधारू गाय का गोबर, खमीर और समुद्र के पानी को मिलाकर एक ऐसा उत्प्रेरक बनाया है जिसके प्रयोग से बंजर भूमि हरी–भरी हो जाती है, सूखे तेल के कुओं में दुबारा तेल आ जाता है तथा समुद्र की सतह पर बिखरे तेल को यह सोख लेता है।

बम्बई की एक फर्म सर्वश्री एक्सल इण्डस्ट्रीज के मालिक श्री कान्तिभाई सर्राफ ने नगर निगम द्वारा लगाये गये कूड़े–कचरे के ढेर पर गोबर के घोल के छिड़काव से उसकी दुर्गन्ध को ही दूर नहीं किया बल्कि उसको बढ़िया खाद के रूप में परिवर्तित करके किसानों को देने का उद्योग चलाया है।

गत वर्ष सूरत में फैला प्लेग जब दिल्ली की सीमा को छूने लगा तब दिल्ली के चिकित्सकों की एक संगोश्ठी हुईं तथा इसमें प्लेग से बचाव के अनेक उपायों पर विचार हुआ। महामहिम राष्ट्रपति के चिकित्सक डा. वेदव्रत शर्मा ने विज्ञान और अनुभव के आधार पर बड़े गर्व से कहा था कि गाय के गोबर के कंडे के धुएँ में विषाणु और रोगाणुनाशक तत्व है। गाय के गोबर के कंडे जलाइए और प्लेग के रोगाणुओं को दूर रखिए।

गाय के गोबर के कंडे जलने के बाद अवशेष रूप में जो राख रह जाती है। वह भी एक विलक्षण दुर्गन्धनाशक एवं कीटसंहारक पदार्थ है। गाँवों में जहाँ अभी फ्लश के शौचालय नहीं है, मल की दुर्गन्ध दूर करने के लिए इस राख का ही प्रयोग किया जाता है। चेचक के व्रण, जिनमें रोगाणु बहुतायत से होते है, गोबर की राख के छिड़काव से समाप्त हो जाते हैं। खेतों में कीटनाशक की तरह से भी उसका प्रदूषणरहित एवं सस्ता क्लीनिंग पाउडर दूसरा नहीं है।

घर को गोबर व गोमूत्र से लीपने पर किसी भी प्रदूषण का, यहाँ तक कि आण्विक विकिरण का भी, प्रभाव नहीं होता। यज्ञ की वेदी को स्वच्छ एवं पवित्र करने के लिए गोबर–गोमूत्र से ही लीपा जाता है। जापान के नागासाकी और हिरोशिमा पर द्वितीय महायुद्ध से अणुबम गिराये जाने के बाद आण्विक विकिरण से जापान की अगली पीढ़ी विकलांग पैदा होने लगी। उन्होने गाय के दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र से आण्विक विकिरण से अपनी रक्षा की। रूसी वैज्ञानिक सिरोविच ने आण्विक विकिरण से रक्षा पर अपने प्रयोग के दौरान पाया कि गाय के घी की आग्नि से आहुति देने पर उसकी जो सुवास निकलती है वह जहाँ–जहाँ तक फैलती है उससे सारा वातावरण प्रदूषण एवं आण्विक विकिरण से मुक्त हो जाता है।

विभिन्न रसायनों का उत्पादन करने वाले कारखानों से निकलने वाली रसायनिक गैस से प्रकृति द्वारा आकाश में बिछाई गई ओजोन की परत में बड़े–बड़े छिद्र हो गये है जिससे सूर्य की पराबैगनी किरणों द्वारा पृथ्वी के प्राणियों के क्षतिग्रस्त होने का खतरा पैदा हो गया है। इन्सेट से लिये गये इन छिद्रों के चित्र कुछ दिन पूर्व समाचार पत्रों में छपे थे। हमारा विश्वास है कि ओजोन के इन छिद्रों को गाय के घृत को अग्नि में आहुत करने पर उससे निकले सूक्ष्म अवयवों से भरा जा सकता है। वेदों एवं शास्त्रों में यज्ञों एवं हवनों का

विधि–विधान सृश्टि के आरम्भ से ही पर्यावरण की रक्षा को ध्यान में रखकर किया गया होगा। यज्ञ से पर्यावरण तो शुद्ध होता ही है, उसमें उच्चारित मंत्रों से मनुष्य की देह, मन एवं बुद्धि सभी की शुद्धि होती है।

देवी, मानवीय, अमानवीय एवं आसुरी गोपालन

महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में महाराजा दिलीप तथा महारानी सुदक्षिणा द्वारा नन्दिनी की सेवा का वर्णन इस प्रकार किया है– "महारानी प्रातःकाल उस गौ की भलीभांति पूजा करती थी। आरती उतारकर नन्दिनी को पति के संरक्षण में वन में चरने के लिए विदा करतीं। सम्राट दिनभर छाया की भांति उसका अनुगमन करते, उसके ठहरने पर ठहरते तथा चलने पर चलते, बैठने पर बैठते और जल पीने पर जल पीते। संध्या काल में जब सम्राट के आगे–आगे सद्यप्रसूतः बालवत्सा (छोटे दुधमुहे बछड़े वाली) नन्दिनी आश्रम को लौटती, तो साम्राज्ञी देवी प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करतीं और अक्षतादि से पुत्र–प्राप्तिादि से पुत्र–प्राप्तिरूपी अभीश्ट सिद्धि देने वाली उस नन्दिनी का विधिवत् पूजन करती। अपने बछड़े को यथेच्छ पय–पान कराने के बाद दुह ली जाने पर नन्दिनी की रात्रि में दम्पति पुनः परिचर्या करते, अपने हाथों से कोमल, हरित शस्य–कवल खिलाकर उसकी परितृप्ति करते और उसके विश्राम करने पर शयन करते।"

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध (10–15–1) के श्लोक की व्याख्या पूज्य संत श्री रामचन्द्र केशव डोगरे जी महाराज इस प्रकार करते है– "बाल कृष्ण ने यशोदा माता से कहा कि माँ मैं बड़ा हो गया हूँ, मुझे गायों की सेवा करनी है।" आज तक बाल कृष्ण वत्सपाल थे। बछिया/बछड़ों को लेकर चराने जाते थे। शांडिल्य ऋशि से मुहूर्त निकलवाया गया। ऋशि ने गोपाश्टमी का शुभ दिन सुझाया। बाल कृष्ण गोपाश्टमी को ब्रह्म मुहूर्त में ही जग गये। गायों की पूजा की, उन्हें लड्डू खिलाये, प्रदक्षिणा की और साश्टांग वन्दन भी किया। यशोदा मैया ने एक ब्रजवासी से कहा– "आज तक कन्हैया बछड़ो को लेकर यमुना जी के तट तक जाता था, आज वह गायों को लेकर दूर–दूर तक जायेगा। मार्ग में काँटे, कंकड़, पत्थर होंगे। धूप से तपकर वे गर्म हो जाते है। कन्हैया के पग कोमल है। उसके लिए एक सुन्दर पनही (जूता) का जोड़ा बनाकर ले आना"। ब्रजवासी पनही बनाकर ले आता है। सबकी इच्छा है कि कन्हैया पनही पहनकर जाये। कन्हैया ने पनही पहनने से इन्कार कर दिया और कहा– "मैं गायों का सेवक हूँ। मेरी गायें नंगे पैर जाती है, मैं भी नंगे पैर ही जाऊँगा।" इस पर यशोदा मैया ने समझाया कि गाय तो पशु है। कन्हैया इस बात पर रूश्ट हो गये और कहा, "मैया आपने गाय को आज पशु कहा तो कहा, फिर कभी ना कहना। गाय पशु नहीं है, विश्व की माता है। गाय को पशु कहने वाला मुझे जरा भी नहीं सुहाता।" यह है दैवी गोपालन।

गाय को सामान्य आदर की दृष्टि से देखते हुए उसके लिए चारा–पानी की व्यवस्था करना, चारण के लिए गोचर भूमि में भेजना, उसके प्रजनन की उपयुक्त व्यवस्था करना, उन्नत सॉड तैयार करना, उसे किसी प्रकार का कष्ट न होने देना, मानवीय गोपालन है।

गाय को पशु समझकर उसके दूध का दोहन करना, उसके बछिया/बछड़े को यथेश्ट दूध न देना, इन्जेक्शन लगाकर उसको दुहना, उसके चारा–पानी की समुचित व्यवस्था न करना, दूध दुहकर उसे इधर–उधर भटकने, कूड़ा खाने, गन्दा पानी पीने के लिए छोड़ देना, आमानवीय गोपालन है।

दूध और माँस के उद्देश्य से गाय को पालना आसुरी गोपालन है। पश्चिमी देशों में

आसुरी गोपालन हो रहा है। उनके जीवन की दृष्टि ही वस्तुपरक है। वे लोग सम्पूर्ण ललचाई आंखों से देखते हैं। अपने लाभ के लिए उसका शोशण करने में उन्हें कोई हिचक नहीं है। कृतज्ञता उन्हें छू तक नहीं गयी, उनके गोवंश में ही प्रेम एवं कृतज्ञता आदि दिव्य गुण कहाँ से आवेंगे? पश्चिम के देश प्रकृति और दूसरे राष्ट्रों का शोशण करके आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हुए है। किन्तु उनके जीवन में वास्तविक सुख एवं शान्ति नहीं है। दूर्भाग्यवष पश्चिमी देशों की दासता की मानसिकता रखने वाले भारत के सत्ताधीश तथा शासनतन्त्र में बैठे उच्चाधिकारी पश्चिमी देशों के आसुरी दृष्टिकोण का ही अनुकरण कर रहे है। परिणामस्वरूप, भारत के स्वाधीन होते समय भारत में 300 कत्लखाने थे और अब 36000 से अधिक है।

भारतीय गोवंश का विदेशी नस्लों से संकरीकरण– विकास के नाम पर विनाश

पश्चिमी देशों ने अपने उपर्युक्त आसुरी उद्देश्य की पूर्ति के अनुरूप अपने यहां ऐसे गोवंश की रचना की है जो दूध और माँस के लिए ही पाला जाता है। बछड़ों को तो वह पालते ही नहीं जन्म होने के एक सप्ताह के अन्दर ही उसे माँस और चमड़े के लिए बूचड़खाने भेज दिया जाता है। गाय जैसे ही निर्धारित मात्रा से कम दूध पर आ जाती है उसे भी बूचड़खाने भेज दिया जाता है। दुर्भाग्यवष उपर्युक्त मानसिकता से उत्पन्न की गई होल्स्ट्रीयन, फ्रिजियन, जर्सी आदि नस्लें हमारी केन्द्र सरकार की तथाकथित प्रगतिशील नीति के तहत भारत में पिछले लगभग 40 वर्षो से आयात की जा रही है और गोवंश की भारतीय नस्लों को उन्नत एवं विकसित करने के नाम पर उपर्युक्त विदेशी नस्लों से संकरित कराया जाता है। परिणामतः आलमबादी, बिन्झर, खतियाली, पुलीपुलम, बरगुर एवं रायचुरी भारतीय नस्लें लुप्त हो चुकी है। स्थानीय जलवायु की अनुकूलता के अनुसार एक नस्ल को विकसित करने से हजारों वर्ष लगते हैं। छः नस्लों के लुप्त होने से न्यूनतम बीस लाख करोड़ रूपये की हानि देश को हुई है।

गोवंश की विदेशी नस्लें अपने साथ कई ऐसी बीमारियाँ लायी हैं जो भारत में कभी देखी और सुनी नहीं गयीं। जैसे गर्भ का परिपक्व होने से पहले ही गिर जाना, अकस्मात, लाल रंग का पेशाब करना और मृत्यु हो जाना। विदेशी गोवंश देशी नस्ल के गोवंश की अपेक्षा लगभग दुगुना खाता है, बीमार होने पर भी खाता रहता है और बीमारी अधिक बढ़ जाने पर उसकी मृत्यु हो जाती है। विदेशी नस्ल में देशी नस्ल की अपेक्षा मृत्यु दर कहीं ज्यादा है। रोग का प्रतिरोध करने की शक्ति उनमें बहुत कम है। विदेशी नस्ल के बछिया–बछड़े गर्मी सहन नहीं कर पाते। मई–जून की तेज गर्मी में प्रायः उनकी मृत्यु हो जाती है। विदेशी नस्ल के बछड़े के कन्धा न होने के कारण वह कृषि कार्य और परिवहन भली प्रकार नहीं कर पाता, थोड़ा ही परिश्रम करके हाँ जाता है। गोवंश के विकास के नाम पर उसका संकरीकरण वास्तव में उसका विनाश है। विदेशी नस्ल की गाय के दूध में वह पौष्टिकता, सात्विकता एवं स्वाद नहीं होता जो देशी नस्ल की गाय के दूध में होता है। उनकी आवाज भी कर्कश होती है। भारतीय गोवंश के जिन दिव्य गुणों की चर्चा ऊपर की गयी है वे विदेशी नस्ल के गोवंश में नहीं पाये जाते है। देशी नस्लों के गोवंश के गोबर और गोमूत्र की जो विशेषताएं ऊपर वर्णित हैं वे विदेशी गोवंश के गोबर व गोमूत्र में नहीं है। देशी नस्ल की गाय के दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र के मिश्रण से बनाया गया पंचगव्य ही गहण करने योग्य है।

देसी गऊ वंश द्वारा जहर मुक्त समन्वय सजीव खेती

सुरेन्द्र कुमार चौहान
पूर्व मुख्य तकनीकी अधिकारी (भाकृअप)
सलाहकार, समन्वित सजीव कृषि एवं बागवानी खेती बी–77, प्रथम तल
इन्दरापुरी, नई दिल्ली

1965 से हमारे देश को हरित और श्वेत क्रान्ति का उद्भव काल माना जा सकता है। हरित क्रान्ति का एकमात्र लक्ष्य था "अधिक से अधिक उत्पादन"। कृषि की इस नई तकनीक में प्रकृतिजन्य स्थापित सभी सिद्धान्तों को गौण मानते हुए तात्कालिक लाभ की दृष्टि से अधिक अन्न उपजाने के सिद्धान्तों को हमने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पिछले 55 सालों से निरन्तर एक ही प्रकार के फसल–चक्र के परिणामस्वरूप भूमि में अनेक प्रकार के पोषण तत्त्वों की कमी हुई है और पौधों के लिए आवश्यक सभी प्रकार के पोषण तत्त्वों, कार्बनिक पदार्थ एवं उन पर आश्रित सूक्ष्म जीवाणुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका लगभग समाप्त हो गयी।

हरित क्रान्ति के साथ साथ श्वेत क्रांति ने भी दूध को घर के उपयोग की वस्तु न मानते हुए बाजार की वस्तु बना दिया। फलस्वरूप डेयरी उद्योग का प्रचलन बढ़ा। देशी गायों के सर्वांगीण गुणों को नकारने से अधिक दूध देने वाली संकर प्रजाति की गायों का महत्त्व बढ़ गया। चारे की कमी और पशु के रख–रखाव की कठिनाई के चलते पशुपालन के प्रति किसानों के मन में अरुचि पैदा हो गयी।

रासायनिक खादों के अधिक उपयोग से केवल खेत की मिट्टी की भौतिक संरचना ही छिन्न–भिन्न नहीं हुई बल्कि पौधों के पोषक तत्तों में भी कमी आयी। उनकी कीट प्रतिरोधक क्षमता कम हुई, विभिन्न प्रकार के नये कीटों का प्रकोप दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया। मिट्टी के प्राकृतिक चक्र बिगड़ने के दुष्परिणाम अब हमारे सामने परिलक्षित होने लगे हैं। पंजाब और हरियाणा जो कृषि के अग्रदूत हुआ करते थे सबसे अधिक रासायनिक खादों के प्रयोग के चलते आज बाकी प्रदेशों की अपेक्षा वहाँ बंजर और ऊसर भूमि का प्रतिशत सर्वाधिक है। इस प्रकार देखा जाय तो कृषि योग्य–भूमि का निरंतर कम होना, भूमि की उर्वरा शक्ति में निरन्तर हास और फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न प्रकार के कीटों का बढ़ता प्रकोप आदि समस्यायें खेती और किसानी के बीच जीविकोपार्जन का सम्बन्ध न होकर खेती अब किसानों के गले का फांस बन गयी है। निरंतर, अनौचित्यपूर्ण रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग तथा भूमि में लगातार घटते जा रहे ऑर्गेनिक मैटर के स्तर से भूमि की भौतिक संरचना व गुणवत्ता नष्ट हो चुकी है। कृषि एवं बागवानी फसलों में मृदा, वायु व ताप के समुचित संचरण, नमी के रिसावन, धारण तथा फसल को आपूर्ति करने की क्षमता को बनाए रखने के लिए खेत की मिट्टी में ऑर्गेनिक मैटर का होना अति आवश्यक है।

आधुनिक कृषि प्रणाली में यह माना जाता था कि रासायनिक खाद मिट्टी की पौष्टिकता और उर्वरता की प्रतिपूर्ति कर सकते हैं।परन्तु एन.पी.के. के साथ साथ, पौधों को कुल 6 प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है और मिट्टी की जीवाणु (डपबतवइपंस) सक्रियता में जैविक तत्त्वों की भूमिका को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता था। दुर्भाग्यवश, हमारे वैज्ञानिक भी उद्योग की भाषा बोलने लगे थे। परिणामस्वरूप उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव, मिट्टी की संरचना, सूक्ष्म वनस्पतियों, जल की गुणता और आहार

उत्पादन में इसका दुष्प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। बहुत से कृषि क्षेत्रों में, भूमिगत जलों में कीटनाशकों और खादों से निकले नाइट्रेट की मात्रा मिली है। यही नहीं रासायनिक खादों के बेबाक प्रयोग ने लाभ में हास के सिद्धान्त (Law of diminishing return) को सही सिद्ध कर दिया है।

'सेवा निवृत, मुख्य तकनीकी अधिकारी, बागवानी प्रभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, मुख्यालय अन्तर्गत भारत सरकार, नई दिल्ली। वर्तमान में सलाहकार, देसी गऊ वंश द्वारा प्राकृतिक सजीव कृषि एवं बागवानी उत्पाद उद्यमिता एवं ग्रामीण युवक एवं युवतियों का कृषि प्रशिक्षण कार्य।

इस लम्बी अवधि में मृदा को निर्जीव तत्त्व (नान लिविंग एन्टीटि) मान लेने तथा तदनुरूप व्यवहार करने की सबसे बड़ी त्रुटि हुई है। जबकि वास्तव में मिट्टी पूर्णतया एक सजीव पारिस्थितिक तन्त्र है। जिसमें विभिन्न सूक्ष्म जीवो जैसे माइक्रोफ्लोरा, माइक्रोफोना तथा माइक्रोफेना सम्मिलित है, का भारी संख्या में विभिन्न समुदाय उपस्थित होते हैं। ये सूक्ष्म जीव आर्गेनिक मैटर को विघटित करके पोषक तत्त्वों का रूपान्तरण करने तथा उन्हें पौधों को एक स्थिर व टिकाऊ ढंग से उपलब्ध कराने का कार्य करते हैं जो कि अच्छी फसल लेने हेतु, भूमि को स्वस्थ बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों व खरपतवार नाशकों के प्रयोग से मृदा प्रदूषण, भूमिगत जल प्रदूषण एवं कृषि उत्पाद प्रदूषण (खाद्यान्न, फल, सब्जी आदि) की भारी समस्या पैदा हो गयी है, जो वर्तमान समय में स्वास्थ्य संकट के रूप में सामने आ रही है। भूमि की उर्वरता का टिकाऊपन समाप्त हो जाने तथा गिरती जा रही उर्वरक क्षमता (फर्टिलाइजर इफिसेन्सी) के कारण लागत के अनुपात में उत्पादन वृद्धि न मिल पाने के कारण कृषि अधिक महंगी व अलाभकारी होती जा रही है, जिससे छोटे व मंझले कृषकों की कमर टूट रही है। पूर्व की भाँति मिट्टी को जीवांशयुक्त बनाने के लिए सजीव खेती के पारंपरिक तारीकों को पुनर्स्थापित करके ही वर्तमान की इस आत्महत्या की खेती से निजात पाया जा सकता है। मिट्टी को विघटित करने वाली जीवाणु–शक्तियों को पुनः सक्रिय करने तथा मिट्टी और पौधों का नैसर्गिक सम्बन्ध

प्राकृतिक रूप से स्थापित हो सके इसके लिए आवश्यक है कि कृषि तथा पशुओं द्वारा उत्पन्न सभी प्रकार के जैविक कचरों तथा वर्ज्य पदार्थों की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति की जाय जिससे कि कार्बनिक पदार्थ मृदा की जीवाणु–शक्ति को बढ़ाकर उसे पुनःसजीव बनाया जा सके।

जैविक समन्वय सजीव खेती की आवश्यकता क्यों: प्रसिद्ध जैविक कृषि सलाहकार श्री व्ही० बी0 करमरकर वर्तमान कृषि एवं जैविक कृषि का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि आज का अन्नदाता किसान वस्तुतः किसका अन्नदाता है? वास्तविकता में आज का किसान अन्नदाता है।

- बीज व उर्वरक कम्पनियों का।
- ट्रैक्टर एवं डीजल कम्पनियों का।
- कीटनाशी, शाकनाशी एवं टानिक बनाने वाले कम्पनियों का।
- उन व्यापारी और बिचौलियों का जिसे वह फसल बेचता है।

इस प्रकार से सभी को बाँटते–बाँटते जब अंत में जब हमारा अन्नदाता किसान इस बात का आकलन करता है कि उसके पास क्या बचा है तो पाता है सिर्फ कर्ज। सचमुच

में किसान भाइयों यदि श्री करमरकर साहब की बातों पर चिन्तन करें तो हम पाते हैं कि आज हम कमाकर देने वाली खेती कर रहे हैं। हमारे किसान कर्ज के चक्रव्यू में निरन्तर फसते जा रहे हैं। ग्रामीणों का पैसा शहरों में जा रहा है। हम खेती किसके लिए कर रहे हैं? यह एक विचारणीय विषय है।

कृषि एक ऐसा विषय है जिसमें हमारा सम्बन्ध प्रकृति के समस्त घटकों से होता है। इसमें हम भूमि, जल, वायुमण्डल, वृक्ष, पौधे, गाय, भैंस, कीट संसार एवं भूमि में रहने वाले असंख्य सूक्ष्म करोड़ों जीवाणु परस्पर एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। वर्तमान कृषि पद्धति उपरोक्त घटकों के साथ न्याय करने में अक्षम साबित हो रही है जिसके भयंकर दुष्परिणाम दृश्टीगत हो रहे हैं। आज समय की मांग है कि उपरोक्त घटकों के साथ नन्यायोचित व्यवहार किया जाय। यह तभी सम्भव है जब प्रकृति के साथ संतुलन स्थापित कर उपरोक्त घटकों को संरक्षित व संवर्धित किया जाय। जैविक सजीव कृषि वास्तव में कृषि की वह पद्धति है जिसमें हम पर्यावरण के समस्त घटकों को ध्यान में रखते हुए मानव हितों के लिए खेती करते हैं। जैविक सजीव खेती ही पर्यावरण एवं पृथ्वी पर व्याप्त समस्त जीवधारियों के जीवन का आधार है। जैविक *समन्वय* सजीव खेती के प्रति हम सभी मनुष्यों को एक समग्र सोच बनाने की अवश्यकता है, क्योंकि सजीव खेती–

- सामाजिकता के विकास की एक क्रान्ति है।
- परिवर्तन का एक आन्दोलन है।
- युवा शक्ति का संगठित होकर डटे रहने का एक संघर्ष है।
- सहभागिता का एक विश्वास है।
- प्राकृतिक सम्पदा को हर हाल में सुरक्षित रखने का एक संकल्प है।
- रोजगार को बढ़ावा देने का एक प्रयास है।
- समस्त जीवधारियों के स्वास्थ्य पूर्वक जीवन जीने की कला एवं प्रेम का संदेश सिखाने की एक सकारात्मक सोच है।

जैविक समन्वय सजीव खेती के लाभ

1. **मिट्टी एवं किसान के अनुकूलः** जैविक सजीव खेती किसान और मृदा दोनों के हित में है। एक तरफ जहाँ जैविक खाद से किसानों की लागत में कमी आयेगी वहीं इसके उपयोग से मिट्टी की जीवांश–शक्ति में वृद्धि होगी। इनके प्रयोग से मिट्टी में जल धारण क्षमता, पी. एच. मान तथा जीवाष्म आदि के अनुपात में बढ़ोत्तरी होती है।
2. **स्थानीय सुलभता एवं सुग्राह्यताः** जैविक खाद के निर्माण हेतु सभी सामग्री स्थानीय स्तर पर सर्व सुलभ होती है। इसके निर्माण में किसी विशेष तकनीक का इस्तेमाल नहीं किया जाता है। अतः कोई भी व्यक्ति एक बार देखने–समझने के बाद आसानी से इसे अपने खेतों पर प्रारम्भ कर सकता है।
3. **मानव एवं पर्यावरण मित्रः** प्रदूषणविहीन, विषरहित जैविक खाद पर्यावरण को दूषित होने से बचाती है। प्राकृतिक रूप से उत्पादित पदार्थों की गुणवत्ता, पौष्टिकता से सभी जीवित प्राणियों की क्षमता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।
4. **खरपतवार एवं कीट प्रबंधनः** रासायनिक खादों के प्रयोग की तुलना में जैविक ढंग से की गई खेती में खरपतवार एवं कीटों की समस्या में कमी पायी गई है। जैविक खाद के निरन्तर प्रयोग से खेत में मित्र कीटों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है और शत्रु कीट फसलों से दूर रहते हैं।

5. **माँग व आय में निरन्तर वृद्धिः** रासायनिक खादों के दुष्परिणामस्वरूप जैविक विधियों द्वारा उत्पादित अनाज की माँग बाजार में काफी बढ़ गई है। रासायनिक उत्पादों की तुलना में जैविक खाद्य पदार्थों की बाजार में 30–40 प्रतिशत अधिक कीमत मिल रही है।

जैविक खेती व्यापार के महत्त्वपूर्ण तथ्यः आज देश–विदेश में जैविक खेती व उत्पादों का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। सन् 1990 में जहाँ विश्व व्यापार में जैविक खाद्यान्न का अंर्तराष्ट्रीय कुल व्यापार एक मिलियन यू.एस. डॉलर था, वहीं 2020 में यह व्यापार बढ़कर 211.44 बिलियन यू.एस. डॉलर का हो चुका है। जबकि 2020 में भारत का कुल जैविक खाद्यान्न व्यापार 849.5 मिलियन यू.एस. डॉलर था। आस्ट्रेलिया जैविक खेती करने वाले देशों में अग्रणी देश है। ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, इटली, डेनमार्क, न्यूजीलैण्ड आदि लगभग 100 देशों में जैविक खेती का विकास पिछले दो–तीन वर्षों से 25 से 40 प्रतिशत के अनुपात में निरन्तर बढ़ रहा है। आज जहाँ आस्ट्रेलिया में जैविक खेती 35.69 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर की जा रही है, वहीं भारत जैसे विशाल भू–भाग और कृषि प्रधान देश में मात्र 4.34 मिलियन हेक्टेयर पर जैविक खेती हो रही है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमारे किसान सजग हों तथा अतीत की गलतियों से सबक लेते हुए पुनः एक बार किसानी को नई दिशा दें।

जैविक समन्वय सजीव कृषिः जैविक समन्वय सजीव कृषि का उद्देश्य यह है कि किसान को कम लागत में टिकाऊ खेती के विभिन्न उपांगों को विज्ञान की कसौटी पर कसते हुए सरल से सरल ढंग से किसानों तक पहुँचाया जाय। इसके मुख्य अवयव निम्न हैं।

- कार्बनिक या जैविक पदार्थ भूमि की उर्वरता बनाये रखने में सहायक होते हैं।
- मृदा एक सजीव प्रक्रिया है जिसमें असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओं का वास होता है जहाँ वे पुर्नस्थापित और पोषित होते रहते हैं।
- भूमि में प्रमुख अवयवों एवं उर्जा तत्वों की पारम्परिक क्रिया द्वारा ही एक सन्तुलित व्यवस्था स्थापित होती है जिसमें पौधे स्वस्थ रूप में विकसित होते हैं। इस विधि का उद्देश्य ही संतुलित सजीव व्यवस्था बनाकर जीवन को बनाये रखना है।
- गुणवत्तायुक्त कृषि फसलोत्पादन करना।
- भूमि में केंचुएं सहित असंख्य मित्र जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ाना।
- मृदा की ह्यूमस (नमी) की वृद्धि करना।
- पौधों की पोषण सम्बन्धित सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
- मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि करना।
- मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक स्थिति को उत्तरोत्तर समृद्ध करना।
- यह पद्धति उत्पादकता में स्थिरता के साथ–साथ निरन्तर वृद्धि के पारम्परित समन्वयन सिद्धान्त पर आधारित है।

देसी गाय द्वारा प्रेरित कासमिक ऊर्जाः आदिकाल से भारतीय देसी नस्लों की गाय भारतीय कृषि अर्थतन्त्र की धुरी रही है। कृषि एवं मानव स्वास्थ्य के लिये गाय की उपयोगिता अतुलनीय रही है। प्राचीनकाल से ही गाय की मान्यता कामधेनु यानी मानव की कामना पूरी करने वाली मां के रूप में पहचान की गई है। किन्तु विडंबना है कि जब तक गाय थोड़ा भी दूध देती रहती है, तभी तक उसकी देखभाल की जाती है। दूध बंद हो जाने पर गाय को पॉलिथीन/कचरा खाकर जीवनयापन हेतु लावारिस छोड़ दिया जाता है। गाय

के प्रति मानव की उदासीनता के कारण नाना प्रकार की समस्याएं नित्य बढ़ती जा रही हैं। आज के समय में मनुष्य की इसी सोच में बदलाव लाने की आवश्यकता है। गाय मानव से बचे–खुचे जूठन एवं अन्य उत्पादों यथा भूसा, घास, हरा चारा, पुवाल, चूनी, चोकर, खली आदि का सेवन करके अमृत तुल्य दूध एगोबर एवं गोमूत्र के रूप में जो अद्भुत पदार्थ देती है वह सभी मानव स्वास्थ्य एवं संजीव खेती के लिए अति उपयोगी है। इसे न तो किसी फैक्ट्री और न ही किसी प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है।

- गाय के सींग सौर उर्जा दोहन में सक्षम है।
- देसी नस्लों की गायों की पीठ पर उठा हुआ उभार (हम्प) जो पिरामिड के आकार का होने के कारण सौर उर्जा दोहन करने में सक्षम होता है।
- देसी नस्लों की गायों के सभी पंचगव्य उत्पाद खेती के लिये अति उपयोगी है।
- गाय की बेली कासमास का लघु प्रतीक है।
- गोबर व गौमूत्र सूक्ष्म जीव तंत्र बाहुल्य है।

जैविक समन्वय सजीव कृषि के लिए केवल देसी गऊ वंश की गायों की आवश्यकता होती है। देसी गऊ वंश की गाय में ही केवल ब्रह्मांडीय उर्जाओं के दोहन की असीम क्षमता उसके पीठ पर उठे हुए उभार जिसे (हम्प) कहते हैं, वह पिरामिड के आकार का होता है और सींग दोनों ही सौर उर्जा का दोहन करने में सक्षम होते हैं। इसके कारण मात्र दो देशी गाय से 4–5 हेक्टेयर की खेती की जा सकती है। गाय की बेली कासमास का प्रतीक है। अतः इनका पालन–पोषण जैविक वातावरण में किया जाना चाहिए तथा उनसे प्राप्त उच्च गुणवत्ता युक्त उत्पादों का उपयोग कर प्राकृतिक सजीव कृषि को प्रोत्साहित करने की अति आवश्यकता है। प्राकृतिक सजीव जैविक कृषि में किसी भी प्रकार के रसायनों का उपयोग नहीं किया जाता है। जो किसान प्राकृतिक सजीव कृषि बागवानी कर रहे हैं उन्हें उच्चगुणवत्तायुक्त उत्पादन हेतु मुख्यतः पंचांग अनुसार खेती एवं गाय के पालन एवं इनसे प्राप्त उत्पाद से बनाये जाने वाले जैव नियामक का विभिन्न समय में उपयोग एक अचूक अस्त्र है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान समय में देश में प्रचलित सभी जैविक विधाओं में गाय के विभिन्न उत्पादों का उपयोग किसान अपने अनुभव के आधार पर करते हैं। सामान्यतः ये गाय से प्राप्त गोबर एवं गोमूत्र उत्पाद को विघटन कर बनाये जाते हैं। जैव नियामक की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु उर्वरक भूमि, गुड, शहद, दही, छाछ या मट्ठे का उपयोग किया जाता है, और बनाने हेतु मिट्टी अथवा प्लास्टिक के पात्र का उपयोग किया जाता है।

देसी गऊ वंश के गोबर में लक्ष्मी का निवास होता है, यह केवल शास्त्र वचन ही नहीं है, वैज्ञानिक व वानस्पतिक सत्य भी है। थोड़ा चिंतन व विश्लेषण करने पर यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि गोबर कितना बहुमूल्य जीवनोपयोगी पदार्थ है और उसका हमारी आर्थिक समृद्धि से क्या सम्बन्ध है।जगत के प्राणियों में देसी गाय ही एक ऐसी प्राणी है, जिसका उच्छिष्ट मल नहीं, अपितु मलशोधक है। ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी को पवित्रता पसंद है और गोबर शुचिताकारक है। गोबर के बिना भूमि पंत नहीं 4 होती। भूमि को गोबर के लेप से पवित्र करके ही देवी लक्ष्मी का आह्वान किया जाता है। यज्ञ की वेदी को पवित्र करने के आहान किया जाता है। यज्ञ की वेदी को पवित्र करने के लिए तथा आवास गृहों को सभी प्रकार के प्रदूषणों से मुक्त रखने के लिए हजारों वर्षों से हमारे देश में गाय के गोबर से लीपा जाता है गोबर के लेप से सभी हानिकारक कीटाणु–विषाणु नष्ठ

हो जाते है। आवास गृहों को गोबर से लीपने से हानिकारक कीटाणु व विषाणु नष्ट होने के अलावा वायु प्रदूषण एवं आणविक विकिरण से रक्षा होती है। जापान में नागासाकी तथा हिरोशिमा में आगनिय त्रासदी के बाद वहाँ के वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि गाय के गोबर से लीपे मकान पर आणविक विकिरण का प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है। यहाँ तक कि वहाँ पर अनेक लोग अपने ओढ़ने की चादर को गोबर के घोल को छानकर उसको पानी से भिगोने के पश्चात सुखाकर ओढ़ते हैं। रूसी वैज्ञानिक सिरोविध ने "आणविक विकिरण से रक्षा" पर अपने प्रयोग के दौरान पाया कि गाय के घी को अग्नि में आहुति देने पर उसक्री जो सुवास निकलती है, वह जहाँ तक फैलती है, उससे वहाँ का सम्पूर्ण प्रदूषण एवं आणविक विकिरण मुक्त हो जाता है।

गाय के गोबर में ऐसी क्षमता है कि यदि कूड़े–कचरे के ढेर पर गाय के गोबर का घोल बनाकर डाला जाय, तो वह कूड़ा–कचरा तीन– चार माह में उपयोगी खाद बन जाता है। गोबरधन केन्द्र पुसद (यवतमाल) ही में इसका सफल प्रयोग करने से ज्ञात हुआ है कि किग्रा. गाय के गोबर से 30 कि.ग्रा. अनुपात में उपयोगी खाद तैयाद हो सकती है। इसका सफल प्रयोग अन्य स्थानों पर भी किया जा सकता है। मुम्बई की एक फर्म एक्सल इंडस्ट्रीज के मालिक श्री कांतिभाई सर्राफ ने नगर निगम द्वारा लगाए गये कूड़े–कचरे के ढेर पर गोबर के घोल के छिड़काव से उसकी दुर्गंध को ही दूर नहीं किया, बल्कि उसको बढ़िया खाद के रूप परिवर्तित करके किसानों को देने का उद्योग चलाया है। फार्मयार्ड खाद कम्पोस्ट, बायोगैस डाइजेस्टेड स्लरी, जैवीय कम्पोस्ट जैसे जैविक खाद भूमि की उर्वरता बढ़ाने में सहायक है और पौधों के लिए आवश्यक 16 पौष्टिक तत्त्वों की एक संतुलित मात्रा में आपूर्ति करते हैं। जैव खादों के प्रयोग से वायु संचरण और मिट्टी की छिद्रियता (Porosity) में वृद्धि होती है। मिट्टी जीवाणु जैसे ऐजेटोबैक्टर, राइजोबीयम, पी.एस.एम. जो नाइट्रोजन संग्रहण और मिट्टी में पौष्टिक तत्त्वों के खनिजीकरण में सहायक हैं। इसके अलावा इनमें कुछ खादों जैसे बायोगैस डाइजेस्टेड सलरी और वर्मी कम्पोस्ट में इन उपयोगी सूक्ष्म जीवाणुओं की प्रचुरता होती है जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाकर लम्बे समय तक फसल उत्पादन को कायम रखने में सहायक सिद्ध होते हैं।

देसी गऊ वंश का गोबर एक सस्ता व श्रेष्ठ प्राकृतिक उर्वरक होकर एक सर्वश्रेष्ठ खाद है। यह कृषि भूमि के जीवाणुओं का प्राकृतिक आहार है। भूमि की उर्वरा शक्ति को प्राकृतिक स्थिति में बनाए रख उसे प्रदूषण रहित रखता है। इसके लिए किज्नान को परावलंबी नहीं रहना पड़ता। गोबर की खाद से उत्पादित खाद्य पदार्थ स्वादिष्ट व स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। कृषि जगत से संबंधित वैज्ञानिक व प्रसार अधिकारी इस निर्विवाद सत्य पर एकमत हैं कि रासायनिक उर्वरकों, कीटरोधकों के प्रयोग से नष्ट हुई भूमि की उर्वरा शक्ति का एकमात्र विकल्प गोबर की खाद है। गोबर की खाद से की गयी कृषि एवं बागवानी से निम्न लाभ मिलते हैं।

- भूमि में सूक्ष्म लाभकारी जीवाणु बढ़ते हैं।
- भूमि का प्राकृतिक स्वरूप बना रहता हैं।
- सिंचाई के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है। वर्षा का जल सोखने व रोकने की क्षमता भी बढ़ती है।
- खेत एवं गाँव के जैविक कूड़े–कचरे का उपयोग होता है, वह प्राकृतिक चक्र में आ जाता है।

- किसानों और बैलों को अधिक काम मिलता है।
- पर्यावरण में सुधार होता है, खाद्यान्न पौष्टिक एवं सुस्वादिष्ट होता है।
- कीटरोधकों के जहर का अंश हमारे शरीर में नहीं जमता।
- ग्रामीणों को रोजगार मिलता है, उनका अपना स्धावलंबी कृषि का आधार बनता है। विदेशी मुद्रा की बचत होती है। देश संपन्नता की ओर अग्रसर होता है।

गाय के गोबर के कंडे की राख एक विलक्षण दुर्गधंरोधी होने के साथ ही कीट संहारक पदार्थ भी है। इसका उपयोग कृषक अपने खेतों में खाद और कीटरोधक के रूप में राख पड़ने से दीमक आदि कीड़े नहीं पनपते तथा फसल अच्छी होती है। कुकुरबिट्स वर्ग के पौधों पर विशेषता कवक जनित रोगों की रोकथाम के लिए राख का छिड़काव किया जाता है।

गोमूत्रः केवल देसी गऊ वंश का गोमूत्र ही रसायन है यह बायोइनहैंसर यह बायोइनहैंसर होता है। वात, पित्त, कफ का संतुलन करके गोमूत्र त्रिदोष नाशक होता है। यह विष नाशक है। गोमूत्र रोग प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाता है। सभी रोग हिमनदाग्री और पित्त में समता की वजह से होते हैं, गोमूत्र अग्नि तीव्र करता है इससे रोग नहीं होते हैं। हमारे शरीर में मूत्र के माध्यम से कुछ आवश्यक तत्वों के निकलने की वजह से उम्र बढ़ने के साथ–साथ उन तत्त्वों की कमी होती जाती है जिससे हम वृद्ध होने लगते हैं, गोमूत्र उन एन्जाइमों की पूर्ति करता है जिससे शरीर में पुनः शक्ति का संचय होता है। गोमूत्र शरीर में लिवर की अशुद्धियों को दूर कर स्वच्छ खून बनाकर रोग प्रतिरोधत्मक शक्ति प्रदान करता है। गोमूत्र में कई खनिज तत्त्व होते हैं जो हमारे शरीर में खनिज तत्त्वों की मात्रा विशेषतः तांबा (ताम्र) की पूर्ति करता हैं। क्योंकि ताम्र विद्युत तरंगों को आकर्षित करता हैं जो हमारे शरीर को स्वस्थ रखती हैं। अतः ताम्र के अपने विद्युतीय आकर्षण की वजह से किरणें आकर्षित होकर शक्ति प्रदान करती हैं। इस तरह गोमूत्र मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है। यह पौधों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी होता है। गोमूत्र अति तीक्ष्ण होता है अतः इसका सीधा पौधों पर छिड़काव करना हानिकारक हो सकता है। एक भाग गोमूत्र को दस भाग से लेकर सौ भाग पानी में मिलाकर छिड़काव करने से पौधों का विकास अच्छा होता है। यह आवश्यक नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटास, एवं अन्य सूक्ष्म द्रव्यो की पूर्ति करता है। गोमूत्र में उपलब्ध शरीर एवं पौधों के लिए उपयोगी मुख्य तत्त्व के रासायनिक संगठन इस प्रकार हैं– नाइट्रोजन, सल्फर, अमोनिया, अमोनिया गैस, मैग्नीज, साल्ट, पोटेशियम, यूरिया, कॉपर, कैल्शियम, जल हब गलसिट, आयरन, फास्फेट, कार्बोनिक एसिड, अन्य मिनरल्स, स्वर्ण क्षार, एन्जाइम्स, यूरिक एसिड सोडियम, विटामिन– ए, बी, सी, डी, ई, दूध देती गाय में लेक्टोज एवं हिप्युरिक्त एसिड।

गोमूत्र के निरिन्द्रय लवणः

क. क्लोराइड– सोडियम क्लोराइड, पोटेशियम क्लोराइड,

ख. सल्फेट– सोडियम सल्फेट,

ग. उदासीन गंधक फास्फेट– सोडियम फास्फेट, पोटेशियम फास्फेट, मैग्नेशियम फास्फेट

गाय के गोबर एवं गोमूत्र बनाये जाने वाले प्रमुख जैव नियामकः अमृतपानी, बीजामृत, जीवामृत, पंचगव्य वर्मीवाश, काउ पैट पिट, अग्निहोत्र जल, बायोसोल आदि हैं। इनका उपयोग जैव अवशेष के विघटन, कम्पोस्टिंग, बीज तथा पौध उपचार, भूमि की उत्पादकता बढ़ाने, बीज भंडारण आदि हेतु किया जाता है। सभी जैव नियामक सूक्ष्मजीव बाहुल्य तथा

प्रचुर मात्रा में पोषण (मुख्य एवं गौण), नत्रजन दोहक एवं फास्फोरस घोलक सूक्ष्मजीव विद्यमान होते हैं। अच्छी प्रकार छनाई कर टपक तथा बाछौरी सिंचाई से इनके उपयोग को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। प्राकृतिक कृषि की विभिन्न गतिविधियों में उपयोग किये जा रहे जैव नियामकों में कुछ निम्नवत है।

1.1 बीज एवं पौध शोधनः अंकुरित कर रहा पौधा कोमल होता है। ऐसी अवस्था में बीज जनित/भूमि जनित कीट और व्याधियों के संक्रमण की अधिक सम्भावना होती है, अतः बोआई/रोपण पूर्व इनका उपचार आवश्यक होता है।उपचार हेतु बीजामृत एवं पंचगव्य आदि का उपयोग पौध शोधन के लिये किया जाता है। प्राकृतिक जैविक कृषि में बीजोपचार आवश्यक हो जाता है।

बीजामृत हेतु पांच किलो गोबर को एक कपड़े की पोटली में रख कर पानी में डुबो दिया जाये। एक हांडी में 50 ग्राम चूने को एक लीटर पानी में भिगोया जाये। अगले दिन पोटली को तीन बार पानी से मिला कर गोबर का शत जल में आ जाये। पांच लीटर गोमूत्र मिला कर अच्छी प्रकार फेंटा जाये। 200 ग्राम उर्वर मिट्टी मिलायी जाये। यदि उपलब्ध हो तो एक लीटर गाय का दूध मिलाया जाये। चूने का पानी मिलाया जाये। घोल को पानी में मिलाकर 20 लीटर बना लिया जाये। आलू एवं गन्ना के शोधन हेतु 50 लीटर पानी मिलाकर बनाया जाये।

बीजामृत व पंचगव्य से उपचार

- बीजों पर इनको छिड़ककर, निथारकर, छाया में सुखा लिया जाये।
- हल्दी/अदरक/आलू/गन्ना हेतु रोपण भाग को 20–30 मिनट तक शोधित किया जाये।
- जिन फसलों में रोपण किया जाता है, उनमें बीज तथा पौध दोनों को उपचारित किया जाये।
- उपचार हेतु ताजा बीजामृत बनाकर प्रयोग किया जाये।

1.2 जीवामृतः वर्तमान समय में प्रयोग किये जाने वाले जैव नियामक में जीवामृत का स्थान पहला है क्योंकि अन्य जैव नियामक से सस्ता तथा बनाना सरल पड़ता है। इसे मात्र 7–8 दिन में बनाया जा सकता है। बनने के बाद इसका उपयोग 8–10 दिनों में ही किया जाना चाहिए। इसका उपयोग फसल अवशेष के शीघ्र विघटन हेतु प्रभावी पाया गया है। इसे प्रत्येक सिंचाई के साथ बनाकर भूमि में दिया जा सकता है। अच्छी प्रकार छानकर टपक अथवा बौछारी सिंचाई द्वारा इसका प्रयोग किया जा सकता है।

जीवामृत बनाने की विधिः 200 लीटर प्लास्टिक के ड्रम में 20 किलो गोबर, 20 किलो गोमूत्र, 1 किलो पीपल या बरगद के पेड़ के नीचे की उपजाऊ मिट्टी जहां कोई रसायन न पड़ा हो, 1 से 2 लीटर छाछ या दही, एक किलो गुड़ का घोल, इसमें 50–70 लीटर साफ पानी अच्छी प्रकार मिलायें। ड्रम को मोटे कपड़े या जूट के बोरे से ढक कर पेड़ के नीचे छांव में रखे। प्रतिदिन 3–5 मिनट तक अच्छी प्रकार घड़ी की दिशा में एवं विपरीत दिशा में मोटे डंडे से चलाते रहें। 7–8 दिन बाद इसमें ऊपर तक शुद्ध पानी मिला दें। इस प्रकार जीवामृत तैयार हो जाता है तथा इसे 8–10 दिनों में उपयोग कर लिया जाना चाहिये।

जीवामृत का उपयोगः 200 लीटर मिश्रण को धीरे–धीरे एक एकड़ में सिंचाई के पानी के साथ खेत की तैयारी के समय फैलाव विधि से दिया जाये। फलों में बाहरी फैलाव के नीचे 50–60 से.मी. चौड़ी एवं 25–30 से.मी. गहरी नाली बनाकर 15–20 दिन खुला छोड़ने के बाद जैव अवशेष भरकर जीवामृत से तर कर दिया जाये। टपक/बौछारी सिंचाई के पानी के साथ अच्छी तरह से छनाई कर प्रयोग किया जाये।

1.3 घन जीवामृतः जहां पानी की समस्या हो वहां घन जीवामृत सतल एवं उपयोगी होगा। 100 किलो देसी गाय, बैल, भैंस, बकरी जिसका भी गोबर उपलब्ध हो, प्रयोग में लिया जाये। इसे छांव में टाट पर फैलाकर इस पर 5 लीटर गोमूत्र का छिड़काव किया जाये। इसमें एक किलो गुड़ और दो किलो छाछ या दही एवं 1 किलो पीपल या बरगद के पेड़ के नीचे की उपजाऊ मिट्टी मिलाएं। जहां कोई रसायन न पड़ा हो, दो दिन तक छांव में थोड़ा पानी छिड़क कर सूक्ष्म जीवों द्वारा विघटन हेतु रखा जाये। बाद में इसे इतना घना बनायें कि आसानी से लड्डू का आकार दिया जा सके। अथवा इसे सुखाकर 6 माह तक पाउडर का उपयोग हेतु रखा जा सकता है। घन जीवामृत का उपयोग पौध के थावले के पास रखकर अथवा नाली के मुहाने या पौध के बाहरी किनारे नाली बना कर पलवार भर कर सिंचन किया जाये।

1.4 पंचगव्यः गाय के विभिन्न उत्पादों से बना अति उपयोगी जैव नियामक है जिसमें पौधों की बढ़वार प्रोत्साहित करने एवं रोग प्रतिरोधक बढाने की अदभुत क्षमता होती है। पंचगव्य बनाने की सामग्री व विधा इस प्रकार है – पांच कि.ग्रा. ताजा गाय के गोबर में 500 ग्राम गाय का घी अच्छी प्रकार फेंटकर तीन दिन तक पात्र के मुँह को ढक कर रखा जाये। मिश्रण में चौथे दिन 3 लीटर गोमूत्र, 2 लीटर दूध, 2 लीटर दही, 2 लीटर नारियल पानी, 3 लीटर गन्ने का रस तथा 12 पके केले को मसल कर अच्छी प्रकार मिलाया जाये। पात्र के मुख को कपड़े अथवा महीन जाली से ढके रखा जाये तथा प्रत्येक दिन नियमित तीन बार अच्छी तरह फेंटा जाये। इस प्रकार 8 दिन में पंचगव्य तैयार हो जाता है। अगर गन्ने का रस उपलब्ध नहीं हो तो 500 ग्राम गुड़ को 2 लीटर पानी में घोल कर उपयोग किया जा सकता है।

पंचगव्य का उपयोग निम्नलिखित विधियों से किया जाये।

- 3 किलो पंचगव्य का 100 लीटर पानी में छिड़काव (3 प्रतिशत) हर फसल में प्रभावी पाया गया है।
- बीज संस्कार तथा पौध पर छिड़काव में उपयोग किया जाना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि खेती के सभी कार्यक्रम हेतु जैव नियामक उपलब्ध हैं। आवश्यकतानुसार बनाकर उपयोग किया जाना चाहिए। इसका संक्षिप्त उल्लेख निम्नानुसार है।

क्र.	खेती के कार्य	उपयोगी जैव नियामक
1	अनाज एवं बीज भंडारण	पंचगव्य, काऊ पेट पिटे; सीसीपी), अग्निहोत्र भस्म आदि
2	बीज व पौध उपचारण	अमृत पानी, बीजामृत, पंचगव्य, काऊ पेट पिटे; सीसीपी), अग्निहोत्र भस्म आदि
3	जैव अवशेष के विघटन	जीवामृत, काऊ पेट पिटे; सीसीपी), अग्निहोत्र भस्म आदि
4	भूमि की उर्वरता बढ़ाना	जीवामृत, का काऊ पेट पिट; सीसीपी), अग्निहोत्र भस्म आदि

5	पौध की बढ़वार बढ़ाना	अमृत पानी, पंचगव्य, काऊ पेट पिट; सीसीपी), अग्निहोत्र भस्म बायोसोल आदि
6	कीट एवं व्याधि नियंत्रण	पंचगव्य, अग्निहोत्र भस्म, बायोसोल आदि

जैव नियामक के प्रचलन को अपनाने के सूत्रः ध्यान रखना चाहिए कि खेत में पर्याप्त मात्रा में जैव अवशेष होने पर ही जैव नियामक प्रभावी होगा। अतः खेत में अधिक से अधिक जैव अवशेष की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। किसी भी अवस्था में खेत में जैव अवशेष नहीं जलाना चाहिए। समयानुसार हरी पत्तियों के खाद, फल–वृक्ष के अवशेष, खर–पतवार, जंगल से प्राप्त एवं आसपास से एकत्र कृषि अवशेष की व्यवस्था खेत में की जा सकती है।

जैविक सजीव कृषि के मुख्य आयाम

- चयनित 'गांव' में पेड़ पौधे के 'साधन' रोपण से हरियाली बढ़ाकर जैविक वातावरण बनाने में सहयोग।
- दलहनी फसलों को मुख्य फसल 'फसल' हरी खाद बहू फसली फसल के रूप में प्रोत्साहन।
- आसपास उपलब्ध जैव अवशेष को जलाने के प्रचलन को रोककर खेत में ही विघटन हेतु अभियान चलाकर।
- बरसात के जल संचयन हेतु उपलब्ध ताल पोखर की क्षमता बढ़ाकर जैविक वातावरण बनाने में सहयोग।
- किसानों को प्रेरित कर जल को अपने खेत की 'मेडबंदी' कर अधिक से अधिक पानी रोककर।
- देसी बीज का चयन एवं 'कॉस्मिक' प्राकृतिक विधि के उत्पादन और उपयोग प्रोत्साहन।
- इस निमित्त 'कास्मिक' बीज गोवंश का स्थापन और प्रोत्साहन अहम भूमिका निभा सकता है।
- देसी गाय के पालन पोषण को प्रोत्साहित कर इन के उत्पाद से गैस कंपोस्ट जब नियामक एवं जैव कीटनाशक तैयार कर आवश्यकतानुसार उपयोग।
- सामूहिक अथवा अलग–अलग गोबर गैस से घर में रोशनी तथा इंधन की व्यवस्था।
- प्रयास किया जाए कि अकेले एवं आपस में मिलकर होमा जैविक प्राकृतिक कृषि को प्रोत्साहित किया जाए।

वर्तमान समय में जैव अवशेष के निवारण कि समस्या भयावह हो गई है। धान काटने के बाद बोआई हेतु फसल अवशेष में आग लगा दी जाती है। किसान बंधुओं के संज्ञान में ले आने कि आवश्यकता है कि सूक्ष्म जीव तंत्र अन्य जीव जंतु व केंचुएँ आदि सामान्यतः भूमि में 20 से 30 सेंटीमीटर गहराई तक पाये जाते हैं। अतः आग से फसल अवशेष के जलाने पर इसके क्या दुष्परिणाम होंगे? यह विचारणीय है। पर यदि भूमि पर इनकी पलटाई कर जीवामृत से सिंचन अथवा छिड़काव कर तर कर दिया जाये तो इनका विघटन होकर भूमि कि उर्वरता बढ़ाने में अहम योगदान होगा।

इस समय देसी गऊ वंश की कमी की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अब समय आ गया है कि पूर्वजों कि वैदिक पद्धति को अपनाकर देसी गऊ वंश की गाय को

किसान के परिवार का मुख्य सदस्य बनाने का है। गाय का कासमिक प्राकृतिक कृषि में प्रभावी योगदान होता है। गाय अन्तिम दिनों तक गोबर एवं गोमूत्र देती रहती है। अतः इसका पालन पोषण कर इससे प्राप्त गौ–उत्पाद के उपयोग कर कासमिक प्राकृतिक कृषि को व्यापक स्तर पर अपनाने एवं प्रचार–प्रसार कि आवश्कता है। किसानों का यह प्रयास पूरे विश्व को कासमिक प्राकृतिक कृषि विधा अपनाने हेतु प्रेरित करेगा।

अनुभव के आधार पर देखा गया है कि जीवामृत का भूमि की उर्वरता बढ़ाने तथा पंचगव्य का उपयोग पौधों की बढ़वार एवं उत्पादन पर अधिक प्रभावी होता है।पंचगव्य के अभाव में जीवामृत को अच्छी प्रकार छनाई कर फुव्वारे से छिड़काव भी किया जा सकता है।उल्लेखित विधाओं को अपनाकर प्राकृतिक जैविक कृषि एवं बागवानी की जा सकती है। परन्तु वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या नित्य बढता चारों तरफ प्रदूषण है। परिणामतः पंच महाभूतत्व के तीन तत्व भूमि, जल व आसपास की वायु प्रदूषित हो रहे है। इस कारण जैविक खेती की विभिन्न विधाएँ जो प्रभावी हुआ करती थी, इस समय कारगर नहीं रह गयी हैं। पर अनुभवों से विदित होता है कि होमा थीरेपी जो बढ़ते प्रदूषण निवारण की चमत्कारी विधा है, विश्व में सफलता के अनेक उदाहरण उपलब्ध हो रहे है। प्राकृतिक जैविक विधाओं के साथ समन्वय कृषि को अग्निहोत्र द्वारा कासमिक खेती के नाम से प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस विधा का विवरण निम्नानुसार है।

अग्निहोत्र कृषिः अग्निहोत्र वेद में उल्लेखित प्राण ऊर्जा सिद्धान्त पर आधारित विज्ञान है जो लाखों वर्ष पूर्व मानव सभ्यता के साथ प्रचलित था। "अग्निहोत्र कामधेनु है विश्व में इसका पर्याय नहीं है। पौराधिक काल में इसका प्रत्येक घर में नियमित पालन होता था। वर्तमान समय में प्रदूषण की समस्या भयावह हो गयी है। इससे पूरा विश्व परेशान है। इसके निदान हेतु कोई कारगर उपाय नहीं निकल पाया है। इस समस्या के निदान हेतु सोलापुर महाराष्ट्र के स्वामी श्री गजानंद जी ने जिन्हें कालकी अवतार (प्रदूषण निवारण) हेतु अवतार लिया था उन्होंने होमा थीरेपी जिसमें अग्निहोत्र प्रमुख है का मानकीकरण किया। इस विधा में ताबें के विशेष आकार के पात्र में सूर्योदय व सूर्यास्त के समय घी लेपित अक्षत की मंत्रोचारण के साथ आहुति दी जाती है। अग्निहोत्र वेद में उल्लेखित प्राण ऊर्जा सिद्धान्त पर आधारित विज्ञान है जो लाखों वर्ष पूर्व मानव सभ्यता के उदय के समय मौजूद होने के साथ घर–घर अपनाया जाता था। चिन्तन करने पर स्पष्ट होता है कि हम मानव ही पर्यावरण प्रदूषण के लिये उत्तरदायी हैं। अतः जो भी प्रदूषण, मानवीय गतिविधियों द्वारा की जाती थीं, उसके निवारण हेतु प्रत्येक परिवार में अनिवार्य रूप से अग्निहोत्र करने की प्रथा प्रचलित थी। सूर्योदय के समय सूर्य से विभिन्न प्रकार की अग्नि, विद्युत तरंगे व अन्य सूक्ष्म शक्तियां निकलती हैं। पृथ्वी इन सभी शक्तियों के प्रभाव से आच्छादित होती जाती है। इन शक्तियों के रास्ते में आने वाली प्रत्येक चीज शोधित और अनुप्राणित हो उठती हैं और इस जागरण काल में जो अशुद्ध (दूषित) चीजें होती हैं उनका विनाश हो जाता है। इन्हीं शक्तियों के कारण जीवन वेगवान और आनन्दित बना रहता है। सूर्योदय काल के समय संगीत को सुना जा सकता है। प्रातःकाल का अग्निहोत्र मन्त्र इस संगीत का एक अंग है। मन्त्रों की उच्चारित ध्वनि उपरोक्त आच्छादित शक्तियों में सर्वोत्कृष्ट ध्वनि मानी जाती है। नियमित अग्निहोत्र करने के कारण वायुमंडल शुद्ध रहता था तथा पंच महाभूतत्व (अग्नि, वायु, आकाश, पुथ्वी व जल) अपनी ऊर्जा बिना किसी परिश्रम के उपलब्ध कराते थे। प्राचीनकाल में चारों तरफ सुख–शान्ति का वातावरण बना रहता था। पर धर्म

के ठेकेदारों ने कालान्तर में इसे आम जनता तक न पहुँचने देने के लिये इस पर कई बन्धन डाल दिये। परिणामतः आज यह विधा धरती से लुप्तप्राय हो गयी है। इसका परिणाम आज पूरा मानव समाज भुगत रहा है। प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने से इसकी महत्ता की अनुभूति की जा सकती है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यों यज्ञः कर्मसमुद्भवः।
कर्म योगए श्री मद्भगवत्त गीता।

सारे प्राणी अन्न पर आश्रित हैं जो वर्षा से उत्पन्न होता है। वर्षा यज्ञ सम्पन्न करने से होती है और यज्ञ कमों से उत्पन्न होता है। अग्निहोत्र का मुख्य आधार "यज्ञ, दान, तपः, कर्म स्वाध्याय निरतो भवेत"। एशः एवहि श्रृत्युक्त सत्यधर्मः सनातनः।। ये पांच साधन हैं। इनका अभिप्राय निम्नवत है।

यज्ञः आहर, विहार, उच्चार से वातावरण प्रदूषित होता है। वातावरण परिशोधन हेतु अग्निहोत्र का नित्य आचरण अनिवार्य है।

दानः बिना किसी स्वार्थ के अपनी अर्जित धन का दान करते रहने इससे मनुष्य का मोह और आसक्ति कम होती है।

तपः अपने इंद्रियों पर संयम और प्रभुत्व पाना इसका नित्य अभ्यास करना ही तप है।

सत्तकर्मः आत्मशुद्धि हेतु सत्तकर्म कर, यह महावाक्य हैं, सबसे प्रेम करो, निष्काम कर्म करो इससे निश्चित शान्ति की सुखद अनुभूति होती है।

स्वाध्यायः यानी नित्य स्वाध्याय का अभ्यास सार–असार। हम क्या हैं इसी की अनुभूति को स्वध्याय कहते हैं।

अग्निहोत्र की प्रकृतिः प्राचीन विज्ञान परम्परा में अग्निहोत्र के बारे में उल्लेखित है कि अग्निहोत्र के समय ताबें के पात्र के आसपास प्रचण्ड मात्रा में विशिष्ट ऊर्जा क्षेत्र का निर्माण होता है तथा पात्र के पास चुंबकीय सदृश्य क्षेत्र का निर्माण होता है। जो नकारात्मक ऊर्जा को निष्क्रिय कर देता है तथा सकारात्मक ऊर्जा क्षेत्र को प्रबल बनाता है। परिणामस्वरूप अग्निहोत्र किये जाने वाले स्थान के आसपास एक सकारात्मक ऊर्जा क्षेत्र का निर्माण हो जाता है जिससे सिर्फ अग्निहोत्र करने वाले व्यक्ति को ही नहीं अपितु उस सकारात्मक क्षेत्र में आने वाले सभी वनस्पतियों एवं जीवों को इसका लाभ पहुँचता है। जब अग्निहोत्र किया जाता है तब वातावरण में सिर्फ अग्नि की ऊर्जा ही नहीं रहती अपितु अग्निहोत्र से उत्पन्न सूक्ष्म ऊर्जा वायुमण्डल में 12 किलोमीटर ऊंचाई तक प्रक्षेपित होकर यहां पर विद्य मान प्राण ऊर्जा को अवशोषित कर पुनः अग्निहोत्र भस्म में समाहित कर देती है। भस्म में प्रभावी ऊर्जा पाई जाती है। इसे खेती, मानव एवं पशु स्वास्थ हेतु उपयोग में लाया जाता है। वायुमंडल से ऊर्जा के दोहन का सबसे सशक्त माध्यम अग्निहोत्र है। स्थान विशेष पर नियमित अग्निहोत्र करने से वहां का वातावरण दिव्य बना रहता है। इसका संबंध किसी जाति, देश, अथवा पढ़ाई से नहीं है। आजकल विश्व के 100 से अधिक देशों में यह प्रचलित है।

अग्निहोत्र की सामग्रीः पिरामिड आकार का ताम्र पात्र– अग्निहोत्र करने के लिए तांबे के विशिष्ट आकार के पात्र जिसके ऊपरी किनारे 14.5×14.5 सेमी, तली 5.25×5.25 सेमी और

ऊंचाई 6.5 सेमी होती है। इसमें तीन सोपाल होते हैं। अग्निहोत्र पात्र अपने आप में संसार का अनूठा ऊर्जा संचय के लिये एक आश्चर्यजनक पात्र है। पिरामिड सौर ऊर्जा के दोहन की एक क्रांतिकारी पहल प्रमाणित हो सकती है। ग्रीक भाषा के श्च्लतवश अर्थात अग्नि और श।उपकश अर्थात मध्य स्थान होता है, यानि ऐसा आकार जिसके मध्य अग्नि प्रज्जवलित होती है। अग्निहोत्र करने हेतु गोवंश के पतले उपले, गाय का घी एवं अक्षत की आवश्यकता पड़ती है। स्थान विशेष पर ठीक सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय विशेष मंत्रों को लय में उच्चारण के साथ आहुतियां दी जाती है।

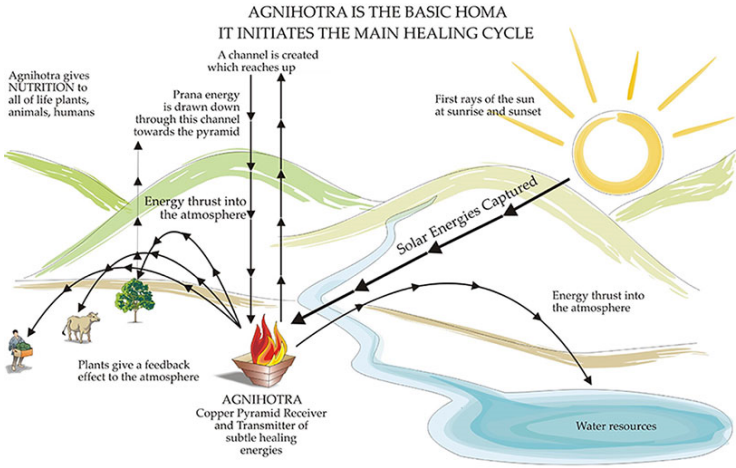

आहुति के लिये अग्नि कैसे तैयार करें: गोवंश के पतले सूखे उपले का एक टुकड़ा पिरामिड की पेंदी में रखें और उसके ऊपर सूखे उपले इस तरह रखें जिससे हवा का संचार अच्छी तरह हो सके। एक छोटे से उपले पर घी लगाकर अग्नि प्रज्जवलित करें और उसे पिरामिड में रखें जिससे सभी कण्डे अच्छी तरह से प्रज्ज्वलित हो जायें। उपलों को हवा करने के लिए हाथ पंखे का उपयोग किया जा सकता है लेकिन मुंह से ँक नहीं लगाना है, क्योंकि मुंह के कीटाणु अग्नि में जाने की संभावना होती है। अग्नि प्रज्जवलित करने के लिए केवल देसी गऊ वंश के शुद्ध घी का ही प्रयोग करें।

मंत्र ऊर्जा: सम्पूर्ण विश्व में स्पन्दन का अस्तित्व है। अगर गहराई से अध्ययन किया जाये तो विदित होता है कि सब कुछ स्पन्दन ही है। जहाँ–जहाँ स्पन्दन है वहाँ–वहाँ ध्वनि है। जब मंत्र का उच्चारण किया जाता है तो स्थान पर विशिष्ट स्पन्दन सक्रिय हो जाते हैं। परिणामस्वरूप विशिष्ट वातावरण का सृजन होता है। इस तरीके से मंत्र शक्ति से अपेक्षित परिणाम प्राप्त होते हैं। स्पन्दन का अस्तित्व हर एक वस्तु और हर एक घटना के लिये होता हैं।

अग्निहोज प्रक्रिया: थोड़े से अक्षत चावलों को तांबे या बांयी हथेली में लें उसमें घी की कुछ बूँदे अच्छी तरह चुपड़ लिया जाये। ठीक सूर्योदय और सूर्यास्त के समय मंत्रोच्चारण के साथ स्वाहा शब्द के साथ दाहिने हाथ से श्रद्धापूर्वक अग्नि में आहुति अर्पित की जाये। दूसरे मंत्रोच्चारण के साथ स्वाहा शब्द के साथ दूसरी आहुति अर्पित की जाये।

अग्निहोत्र मंत्रः सूर्याय स्वाहा, सूर्याय इदम् न मम। प्रजापतेय स्वाहा, प्रजापतये इदम् न मम। (सूर्योदय के समय)। घी चुपड़े अक्षत चावलों को स्वाहा उच्चारण के साथ अग्नि में अर्पित किया जाये। अग्नये स्वाहा, अग्नये इदम् न मम। प्रजा पतेय स्वाहा, प्रजापतेय इदम् न मम। (सूर्यास्त के समय)। घी चुपड़े अक्षत चावलों को स्वाहा उच्चारण के साथ अग्नि में अर्पित किया जाये।

सावधानीः ठीक समय पर अग्निहोत्र प्रक्रिया नहीं हो सकी तो वह अग्निहोत्र नहीं है। अग्निहोत्र के बाद अग्नि शान्त होने तक पिरामिड पात्र के सामने मौन होकर बैठना चाहिए। दूसरे अग्निहोत्र के समय भस्म को मिट्टी या कांच के बर्तन में ही संभालकर रखना चाहिए। इसका उपयोग वनस्पति, जानवर तथा मानवीय व्याधि उपचार के लिए औषधि के रूप में किया जा सकता है।

अग्निहोत्र भस्मः अग्निहोत्र से प्राप्त भस्म ऊर्जा का मुख्य आधार है। जिसका उपयोग खेती के विविध कार्य यथा बीज भंडारण, बीज तथा पौध उपचार, पलवार पर छिड़काव करने में किया जाना चाहिए। अग्निहोत्र भस्म को जल के स्रोत में नियमित मिलाते रहने से जल की उपलब्धता तथा गुणवत्ता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। पशुओं को पानी या चारे के साथ देने से स्वास्थ ठीक रहता है। भस्म के उपयोग से भूमि में मौजूद फॉस्फोरस नत्रजन की घुलनशीलता तथा नत्रजन की उपलब्धता बढ़ने के कारण पर पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाता है। अग्निहोत्र भस्म का उपयोग बायोसाल बनाने हेतु भी किया जाता है।

उपयोग विधियाँः फार्म प्रक्षेत्र पर यदि किसी कारण से नियमित अग्निहोत्र नहीं हो सके तो एक किग्रा, भस्म का छिड़काव प्रति एकड़ किया जा सकता है। भस्म का प्रयोग अनाज तथा दलहनों के भंडारण हेतु भी किया जा सकता है। फसल पर व्याधि संक्रमण होने पर 200 लीटर पानी में 250 ग्राम भस्म एवं 5 लीटर गोमूत्र को अच्छी प्रकार मिलाकर 2–3 दिन बाद छिड़काव किया जाये। तीसरे दिन भस्म नीचे पात्र की तलहटी में बैठ जाती है। बिना पात्र हिलाए घोल 'निथारकर' अथवा कपड़े से छानकर छिड़काव किया जाए। इस घोल के छिड़काव से पूर्व 10 मिनट तक घड़ी की सुई की दिशा तथा विपरीत दिशा में 'ब्यावर' बनाकर मिलाने से प्रभाव में गुणात्मक असर पड़ता है।

बायोडायनमिक कृषिः बायोडायनमिक शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों से बना है–बायो अर्थात् जीव तथा डायनमिक अर्थात गति या ऊर्जा। यह पद्धति दर्शाती है कि इस विधा में जीव उत्पादक शक्तियों के साथ कार्य किया जाता है।बायोडायनमिक कृषि एक ऐसी प्रणाली है जिसमें मृदा, वनस्पतियां एवं जंतुओं में निहित जीवन शक्तियों व उन पर पड़ने ब्रहमाण्डीय शक्तियों के रचनात्मक प्रभाव का उपयोग मात्र एक बायोडायनमिक कैलेन्डर द्वारा किया जाता है। मृदा एवं प्रकृति के विभिन्न पहलू पहलुओं का ब्रह्मांड में व्याप्त ब्रह्मांडिय शक्तियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाए रखते हुए अधिक उत्कृष्ट उत्पादन प्राप्त करने की विधा को बायोडायनामिक कृषि के नाम से संबोधित किया जाता है। बायोडायनामिक कृषि जैविक सजीव खेती का एक नया संस्करण है। इसका सिद्धांत मूलत 3 बिंदुओं पर आधारित है।

- अन्न में जीवनदाई शक्तियों की वृद्धि।
- कृषि में धर्म एवं विज्ञान का समावेश।
- प्राकृतिक सजीव संसाधनों को पुनर्जीवित करना।

अल्प मात्रा में प्रयोग की गई बायोडायनमिक मिट्टी जीवन्त व सूक्ष्म जैविक क्रियाशीलता को उत्प्रेरित करने के लिए प्रर्याप्त होती है। इसके प्रयोग से मिट्टी की जैव व उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है जिससे पर्यावरण संतुलन बना रहता है।बायोडायनमिक कृषि पद्धति कम लागत में सरलता से अपनायी जा सकने वाली गैर रासायनिक, समन्वित, पर्यावरण मित्र और टिकाऊ कृषि प्रणाली है। इस कृषि प्रणाली को अपनाने से उत्पादन तथा कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में स्थिरता के साथ–साथ बढ़ोत्तरी होती है। बायोडायनमिक विधि से उत्पादित खाद्य पदार्थों की पौष्टिकता एवं स्वाद, रासायनिक कृषि प्रणाली के उत्पादों की तुलना में कई गुना अधिक होता है। बायोडायनमिक कृषि प्रणाली जैव विविधता पर बढ़ते दबाव को कम कर जैवीय प्रजातियों के संरक्षण एवं प्राकृतिक संसाधनों के संवर्धन में सहायक है। इस विधि से तैयार की गई खादों में सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या बहुतायत में होती है। नाइट्रोजन, फास्फेट व पोटेशियम आदि अन्य आवश्यक तत्वों की मात्रा सामान्य खाद की तुलना में कई गुना अधिक होती है। इस प्रणाली में विभिन्न अवशिष्टों का उपयोग कर ग्रह–नक्षत्रों की आकाशीय स्थिति के अनुसार कृषि क्रियाओं को निर्धारित कर मृदा एवं पौधों के स्वास्थ्य को समृद्धशाली बनाया जाता है। बायोडायनमिक खाद में मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को प्रभावित करने की क्षमता होती है। इस पद्धति में मृदा के जीवन एवं स्वास्थ्य के बारे में समग्रतापूर्वक विचार किया जाता है। पौधे, प्रकाश एवं ऊर्जा के आलोक में विकसित होते हैं, जिसमें वे रासायनिक रूप से गतिशील स्वरूपों में परिवर्तित हो जाते हैं,जो घटित होने वाली विभिन्न जीव प्रक्रियाओं के उपयोग में आते हैं।भूमि की रासायनिक अथवा जैव रासायनिक व्यवस्था के अतिरिक्त भौतिक संरचना जैसे–दानेदार, भुरभुरी, गहरी, उपयुक्त वायु संचरण लायक मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मृदा की संरचना में समृद्धि एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता वृद्धि तथा भूमि की उर्वराशक्ति को अनवरत अक्षुण्ण बनाये रखना ही बायोडायनमिक कृषि का मुख्य उद्देश्य है।

हरित क्रान्ति एवं श्वेत क्रांति ने पारम्परिक तरीके से हो रही खेती एवं पशुधन के प्रयोग का सबसे अधिक नुकसान किया है। इनके मूल में जो व्यापक रासायनिक उर्वरकों एवं जहरीले कीटनाशकों का व्यापक प्रयोग, संकर बीजों का प्रचलन एवं देसी गायों की जगह संकरीत गायों का बढ़ावा देना प्रमुख परिवर्तन अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुए हैं। इनके व्यवहार में जैसे–जैसे उपरोक्त परिवर्तन समाहित होते गये वैसे–वैसे वायु प्रदूषण, जल–प्रदूषण, मृदा–प्रदूषण, पर्यावरण–प्रदूषण तथा खाद्य सामग्रियों में उत्तरोत्तर विषाक्तता बढ़ती गई। वर्तमान में देश प्रति इकाई उत्पादकता का ग्राफ एक पठार के रूप में स्थिर हो गया है और पहले जितना उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रतिवर्ष रासायनिक आदानों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। इनके जहाँ करोड़ों मित्र जीवाणुओं एवं वैक्टीरिया का आवश्यक मृदा में ह्यूमस की प्रक्रिया भी समाप्त हो गई है। हम सभी जानते हैं कि भूमि की उत्पादकता का आधार भूमि में उपस्थित असंख्य मित्र जीवाणु हैं न कि बाहरी रासायनिक पदार्थ। केंचुएं, बैक्टिरिया, प्रोटोजोआ, काई, फँद आदि असंख्य ऐसे जीव होते हैं जो उपलब्ध कार्बनिक पदार्थों का अपने परिचालन प्रक्रिया द्वारा उस खाद में परिवर्तित करते हैं तथा अघुलनशील, अकार्बनिक तत्वों को घुलनशील बनाकर पौधों के उपयोग में आने योग्य बनाते हैं। जैसे–राइजोबियम, एजेटोबैक्टर, पी.एस. एवं कुछ ऐसे जीवाणु होते हैं जो एमिनों एसिड एवं विटामिन का निर्माण करके जड़ों के नजदीक पौधों की वृद्धि के लिए

हार्मोन स्राव करते हैं (आक्सीन, साइटोकाईनीन आदि) तो कुछ फँद एन्टीबायोटिक का निर्माण कर पौधों में रोग–प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करते हैं। केचुएं अपनी परिचालन प्रक्रिया के द्वारा जमीन में छेद करके वायु संवहन एवं खाद की मात्रा बढ़ाते हैं। इन सभी जीवों की उपस्थिति से कृषि भूमि सजीव बनी रहती है तथा ये मित्र जीवाणु ही कृषि उपज का मूलाधार ह्यूमस का निर्माण करते हैं, ह्यूमस भूमि को नरम, हवादार, नमीयुक्त तथा भुरभुरी बनाये रखता है, जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए अति आवश्यक होती है।

बायोडायनमिक कृषि के अनुसार मनुष्य और पेड़–पौधों का जीवन ग्रह–नक्षत्र और ब्रह्माण्डीय शक्तियों से प्रभावित होता है। प्रत्येक कृषि फार्म का अपना एक जीवन चक्र होता है जिसमें सृष्टि के विभिन्न प्रकार के प्राणी–मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़–पौधे, जीवित बैक्टीरिया, सूक्ष्मजीवी आदि एक निश्चित दायरे में साथ–साथ रहते हैं। इनमें मनुष्य ही एक ऐसा विवेकशील प्राणी है जो उपरोक्त सभी को अपनी भूमिका करने के लिए उन्हें एक साथ समायोजित करता है। आहार, चारा, तंतु, बीज, ईंधन रूपी सभी प्राणियों एवं पर्यावरण के केन्द्र में देसी गऊ वंश का बहुत ही महत्व है। एक गाय केन्द्रित कृषि तकनीक खेत की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

जैविक या परम्परागत कृषि में देसी गाय की केन्द्रीय भूमिका प्राचीन काल से रही है। मात्र एक गाय से मिलने वाले पंचगव्यी, गोबर, गोमूत्र का अगर वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया जाए तो एक वर्ष मे लगभग एक लाख से ज्यादा रुपये मूल्य की जैविक खाद और अन्न की प्राप्ति होती है।

बायोडायनमिक पद्धति के मूल सिद्धान्तः

- उत्पादकता वृद्धि हेतु भूमि में ह्यूमस बढ़ाने के लिए उपलब्ध कार्बनिक पदार्थों की पुर्नस्थापना करना।
- भूमि को सजीव मानते हुए जीवाश्मों की वृद्धि करना जिससे उपलब्ध कार्बनिक खाद का अधिकतम उपयोग तथा ह्यूमस वृद्धि के साथ ही जमीन की उर्वरता में वृद्धि।
- बायोडायनमिक कृषि में मिट्टी को स्वस्थ एवं उर्वरायुक्त बनाने हेतु कृषि अवशिष्ट व अन्य जैविक पदार्थों का कुशलतापूर्वक सदुपयोग।
- बायोडायनमिक कृषि में ब्रह्माण्डीय शक्तियों का मृदा सजीवीकरण हेतु प्रकृतिनुरूप सामंजस्य स्थापित करना।
- बायोडायनमिक कृषि पद्धति में सूक्ष्म जीवाणुओं की मदद से अति शुद्ध ह्यूमस के निर्माण, उपयोग तथा उत्पादन पर विशेष बल दिया जाता है। यह पद्धति कम्पोस्ट में उपस्थित जैविक पदार्थों को सूक्ष्म जीवाणुओं तक भोजन के रूप में उपलब्ध कराती है तथा इनकी संख्या वृद्धि में इनक्यूबरेटर का कार्य करता है।

बायोडायनमिक कृषि पद्धति क्यों अपनायेः क्योंकि इसमें महत्वूपर्ण नाना प्रकार के औषधीय पौधे तथा कुछ अन्य जैविक उत्पाद जैसे–देसी गाय के गोबर–गोमूत्र आदि का उपयोग कर गतिमान ग्रह नक्षत्रों के सकारात्मक प्रभाव का उपयोग मिट्टी की उर्वरता एवं पौधों की वृद्धि तथा उत्पादन की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार बायो–डायनमिक द्वारा तैयार खाद जैविक प्रभाव की उपस्थिति में

ट्रान्स–उत्परिवर्तन को बढ़ाती है। जिससे कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में वृद्धि होने के साथ ही मृदा में टिकाऊपन की प्रक्रिया अक्षुण्ण बनी रहती है। बायोडायनमिक विधि से रासायन रहित तैयार उत्पादों की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता भी अधिक होती है जिसका बाजार में 25 से 40 प्रतिशत अधिक मूल्य प्राप्त होता है। इन कृषि उत्पादों की विदेशी बाजार में सबसे अधिक माँग है जिसको निर्यात कर किसान अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते है।

विचारणीय प्रश्नः जो कृषि उत्पाद कृत्रिम रसायनिक खाद जैसे यूरिया; डीएपी एवं खरपतवार नाशक कीटनाशक) फँदी नाशक आदि मृदा में पाये जाने वाले प्राकृतिक सजीव करोड़ों सूक्ष्म जीवाणुओं तथा अत्य जीव जंतु कीटों व केचुओं को मार कर; मृत मृदा की नकारात्मक ऊर्जा द्वारा पैदा किये गए; ऐसे सभी कृषि एवं बागवानी उत्पाद तामसिक प्रकृति के होकर सभी जीव धारियों के शरीर में जाकर; विभिन्न रोगों का कारण बनेंगे। जबकि अमृत पर्याय देसी गाय के प्राकृतिक गोबर एवं गोमूत्र द्वारा की गई सजीव कृषि एवं बागवानी के प्रोत्साहन से प्राप्त सकारात्मक ऊर्जा से उत्पादित उत्पाद शुद्ध सात्विक होंगे। इनमें प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व, औषधीय गुणों से भरपूर, अच्छी भंडारण क्षमता वाले होगें–निर्णय अब सभी कृषकों पर है।

वर्तमान समय का नारा–जय गाय–जय किसान–जय भारत

गोवंश के सामान्य रोग एवं उनकी रोकथाम

सन्दीप कुमार तलवार एवं रामस्वरूप सिंह चौहान
पशु चिकित्सा एवं पशु पालन विज्ञान महाविद्यालय
गो०ब० पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर–263145 (उत्तराखण्ड़)

1. थनैला रोग

पालतु पशुओं के स्तनशोथ को थनैला कहते हैं जोकि अनेकों प्रकार के जीवाणुओं, विषाणुओं, फफूँदियों आदि द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग में थन तथा अयन कठोर एंव पीड़ायुक्त हो जाता है तथा दूध के रंग में परिवर्तन, कतरे व थक्के हो जाते हैं। चिरकालिक रोगियों में थन कठोर हो जाता है और रोग प्रभाव से थन बेकार हो जाते हैं तथा उससे दूध निकलना बन्द हो जाता है।

थनैला दुधारू पशुओं का आर्थिक दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रोग है जिसका प्रभाव डेयरी उद्योग पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। थनैला से दुग्ध उत्पादन में तो कमी आती ही है। साथ ही साथ दुग्ध में उपस्थित वसा की मात्रा में भी कमी आ जाती है। थनैला द्वारा उत्पन्न स्थायी क्षतियों के कारण बिना उत्पादन वाले पशुओं के खानपान का भार भी हमें वहन करना पड़ता है। जनस्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी इस रोग का वहुत अधिक महत्व है क्योकि इस रोग के कुछ जीवाणु जैसे *स्ट्रेप्टोकोकस पायोजेनिस* तथा *स्टैफाईलोकोकस आरियस* मनुष्यों में भी रोग पैदा कर सकते है। ये जीवाणु रोगी पशुओं के दूध से मनुष्यों तक जा पहुँचते है। कई बार क्षय रोग के जीवाणु भी थनैला रोग से प्रभावित पशुओं द्वारा दूध में पहुँचते है और यदि दूध को अच्छी प्रकार से उबाला न जाए जो मनुष्यों में क्षय रोग हेाने का भय रहता है।

कारण

संक्रामक थनैला रोग अनेकों जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। अधिकतर गोपशुओं और भैसों में यह रोग *स्ट्रेप्टोकोकस एगेलेक्सी* द्वारा होता है। अन्य जीवाणुओं से भी थनैला रोग उत्पन्न होता है जिनके नाम इस प्रकार हैं।

स्टैफाइलोकोकस आरियस, स्ट्रेप्टोकोकस डिसएग्लैक्सी, स्ट्रेप्टोकोकस यूबेरिस, स्ट्रेप्टोकोकस पायोजेनिस, स्ट्रेप्टोकोकस इक्यूसिमीलिस, इस्चीरिचिया कोलाई, एरोबैक्टर एरोजीनस, एक्अीनो माइसीज पायोजेनिस, सीडोमानास एरीजिनोसा, पास्चुरेल्ला मल्टोसिडा, ब्रूसेल्ला एबोर्टस, माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस, ऐक्टीनोंमाईसीस बोविस, ऐक्टीनोबैसीलस लिग्नीरेसी, माइकोप्लाज्मा प्रजाति, *स्फेरोफोरस, नेक्रोफोरस, नोकार्डिया एस्टीरायडिस,* इत्यादि। खुरपका मुँहपका तथा गौ चेचक के विषाणुओं तथा कुछ फफूदियों जैसे *कैनडिड़ा एल्बिकान्स* से भी थनैला रोग उत्पन्न होता है।

थनैला रोग उत्पन्न करने में अयन में लगने वाली चोटों तथा घावों का बहुत अधिक महत्व रहता है क्योंकि थनों में संक्रमण घावों या चोटों द्वारा ही होता है। कई बार दूध पीने वाले बछड़े थन को काट कर घाव कर देते है। जिनके द्वारा जीवाणुओं के आक्रमण के फलस्वरूप थनैला उत्पन्न हो जाता है। दूध निकालने वाली मषीन के कपों, ग्वालों के हाथों तथा पशुशलाओं व दुग्धशालाओं के बर्तनों द्वारा भी संक्रमण का प्रसार होता है। एक्टोनोमायसीज पायोजिनीस से एक विशेष प्रकार का थनैला रोग होता है जिसे ग्रीश्म

कालीन थनैला रोग कहते हैं। यह रोग कालांतर में उग्र रूप धारण करता है तथा अयन में मवाद पड़ जाता है। व दूध की जगह हल्के पीले रंग का गन्दा, पानी युक्त स्राव बाहर निकलता है। इस तरह का थनैला रोग उन गायों में अधिक होता है जो दूध नहीं दे रही होती हैं।

लक्षण

रोगी पशुओं के दूध में फाइब्रिन थक्के तथा दूध के रंग में परिवर्तन थनैला के सर्वप्रथम लक्षण होते हैं। दुग्ध दोहन के समय गाय को कठिनाई हेाती है। अयन में सूजन, कठोरता, अयन गर्म होना तथा लाल रंग का होना आदि लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। पशु चारा नहीं खाता तथा कभी कभी उसे बुखार भी उत्पन्न हो सकता है।

विकृति

जीवाणु थन की नली द्वारा अयन में प्रविष्ट होते हैं तथा थन की नली और अयन में संख्या में बृद्धि करते हैं संक्रमण ऊपर की ओर बढ़ता है तथा दुग्धजन शिरानाल, सुग्राही वाहिनी और कोष्ठिकाओं में पहुँच जाता है। श्वेत रक्त कोषिका जीवाणु की ओर आकर्षित होती हैं और इनका भक्षण करतीं हैं। थनैला रोग ग्रसित स्तन ऊतकों का सूक्षमदर्शी द्वारा अध्ययन करने पर विभिन्न प्रकार की सुक्ष्म विकृतियाँ पायी जाती हैं। ये विकृतियाँ तीव्र और चिरकारी थनैला रोग में भिन्न प्रकार की होती हैं। विशिष्ट कारणों के अनुसार भी अयन में ऊतक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। कई बार एक ही स्तन में भिन्न स्थानों के ऊतकों के नमूनों का अध्ययन करने पर विभिन्न प्रकार के परिवर्तन पाए जाते हैं। तीव्र प्रकार के थनैला रोग में स्तन ऊतक में गलन, रक्तस्राव तथा न्यूट्रोफिल्स का अंतः संचरण पाया जाता है। अधिस्तन लसीका गांठों में अत्यधिक रक्ताधिक्य, सूजन और रक्तस्राव उत्पन्न हो जाता है।

चिरकारी थनैला में सिर्स्टन की उपकला कोशिकाओं का अतिविकसन, विसरित क्षेत्रों की तंतुमयता तथा लसकोशिकाओं का अंतः संचरण होता है। कम तीव्र या चिरकारी प्रकार का थनैला रोग पशुओं में अधिक होता है। जिसमें अंतराल थनैला से संबंधित परिवर्तन उत्पन्न होते हैं इस प्रकार के थनैला में अन्तरालीय स्थानों में कोशिकाओं का स्थानीय या विसरित अंतः संचरण होता है। इन क्षतियों में प्रायः भक्षण कोशिकाऐं, लसकोशिकाएं, फाइब्रोसाइट, प्लाज्मा कोशिकाएं तथा कुछ न्यूट्रोफिल्स कोशिकाएं पायी जाती हैं प्रारम्भिक या हल्के प्रकार के रोगियों में स्तन ऊतक नष्ट नहीं होते हैं। परन्तु चिरकारी और तीव्र बीमारी में अत्यधिक कोशिकाओं का अंतःसंचरण और कोशिकाओं का पोषण उत्पन्न हो जाता है। जिसके फलस्वरूप कोष्ठिकाएं छोटी तथा लुप्त हो जाती हैं। प्रायः खण्डकों की संरचना नष्ट हो जाती है और इसमें केवल शोथीय कोशिकाओं के पिण्ड पाए जाते हैं। धीरे धीरे रोग बढ़ने से संयोजीऊतक का बहुत अधिक होता जाता है। इस प्रकार के परिवर्तन प्रायः स्ट्रेप्टोकोकस जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न थनैला में पाए जाते हैं। सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन करने पर स्ट्रेप्टोकोकस और स्टैफाइलेाकोकस जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न थनैला में बहुत अन्तर होता है।

स्टैफाइलेाकोकस जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न थनैला में अंतर कोष्ठिकीय ऊतक में जीवाणु पाए जाते हैं जो कि चिरकारी शोथ के केन्द्र बनाते हैं इसे बोट्रीयोमाइकोसिस कहते हैं। निःस्रावी थनैला में कोष्ठकों और वाहिनी में निःस्राव एकत्र हेाना तथा स्तन ऊतक में व्यपजननीय और गलनीय परिवर्तन देखा गया है।

एक्टीनोमइसीज पायोजेनीस द्वारा उत्पन्न पीवयुक्त थनैला में स्तन ऊतकों में गलन व्यपजनीय तथा न्यूट्रोफिल्स व संयोजी ऊतक का प्रफुलन पाया जाता है। माइकोप्लाज्मा द्वारा उत्पन्न थनैला में पीवयुक्त अंतराल थनैला होता है जिसमें कणिकामय षोध भी उत्पन्न हो जाते हैं नोकार्डिया थनैला में विसरित तंतुमयता पीव तथा कणिकामय शोथ पाया जाता है। ब्रूसेल्ला जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न थनैला में कणिकामय क्षतियां और कुछ रोगियों में अंतराल थनैला हो जाता है। क्षय रोग जीवाणु द्वारा उत्पन्न थनैला में विभिन्न प्रकार की क्षतियाँ पायी जाती हैं। छोटे छोटे टयूबरकल पाए जाते है। जिनमें गलन और कैल्षीफिकेषन हो जाता है। सभी में मोटा सम्पुट होता है। ये क्षति या खण्डकों में देखी जाती हैं। अधिस्तनीय लसीका गांठें प्रायः क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।

खुरपका और मुँहपका संक्रमण में स्तन भी प्रभावित हो जाता है। इसमें विषाणु समीप की त्वचा में दुग्धजन छिद्र में प्रतिविश्ट हो जाता है। तीव्र प्रकार के थनैला रोग में सीरमी निः स्राव पाया जाता है।

निदान

थनैला रोग के निदान हेतु अनेकों परीक्षणों का उपयोग पशु चिकित्सालयों तथा प्रयोगशालाओं में होता है। निदान के प्रमुख परीक्षण निम्न लिखित हैं।

1. **भौतिक परीक्षणः** थनैला के रोगी पशु के दूध में थक्के हों तो दूध का रंग भी परिवर्तित जैसे लाल या पीला हरा होगा ।
2. **स्ट्रिप कप परीक्षणः** इस परीक्षण द्वारा थनैला के प्रारम्भिक रोगी पशुओं का निदान किया जा सकता है। दूध की प्रथम 2 या 3 घारायें थन से कम में डाली जाती हैं। यदि किसी पशु के दूध में थक्के दिखाई पड़े तों पशु को अन्य से तुरन्त अलग कर के अन्य परीक्षण करना चाहिए।
3. **कैलीफोर्निया थनैला परीक्षणः** इस परीक्षण का आधार थनैला रोगियों के दुग्ध में श्वेत रक्त कोषाओं की गणना में तथा दूध की क्षारीयता में वृद्धि हो जाती है। शोथीय द्रव दूध में मिश्रित हो जाता है। जिससे दूध में क्षारीयता भी बढ जाती है। परीक्षण हेतु एक प्लास्टिक पैडल प्रयोग किया जाता है। जेा कि चार भागों में विभाजित होता है। जिसमें थनों से सीधे दूध डाला जाता है। दूध के नमूनों में बराबर मात्रा में थायमोल ब्लू रसायन डालकर हिला कर मिश्रित किया जाता है। रोगग्रस्त पशुओं में दूध का रंग हरा नीला हो जाता है। रेाग के फलस्वरूप क्षारीय पी0एच0 पर थाइमोल व्लू हरे नीले रंग की हो जाती है। जिससे परीक्षण में रंग परिवर्तन होता है।
4. **व्हाइट साइड परीक्षणः** यह परीक्षण भी दूध में श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या में बृद्धि के आधार पर निर्भर होता है। दूध की 5 बूँदें एक ऐसी कांच की प्लेट पर डाली जाती है जिसकी निचली सतह काली होती है। इसमें 4 प्रतिशत सोडियम हाईड्राक्साइड रसायन की दो बूँदे मिलाकर झाडू की एक सीक से डालकर 25 सेकेण्ड तक तीव्रता से मिश्रित करते हैं। तीव्र थनैला रोग में मिश्रण गाढ़ा हो जाता है तथा चिरकालिक रोगियों के दूध में परीक्षण के फलरूवरूप श्वेत कतरे बन जाते हैं।
5. **क्लोराइड परीक्षणः** यह परीक्षण थनैला रोगियों के दूध में क्लोराइड की अधिक मात्रा पर निर्भर रहता है।

6. **थनैला रोग के निदान के हेतु नमूने एकत्र करनाः** रोगी एवं मृत दोनो ही पशुओं से थनैला के निदान पदार्थ एकत्र करके प्रयोगशाला भेजे जाते हैं। रोगी पशुओं से दूध के नमूने निम्न प्रकार से एकत्र किये जाते हैं।
7. गुनगुने पानी से अयन को साफ करना चाहिए।
8. अयन की जीवाणुनाषक औषधि में भीगे एक कपड़े से खूब अच्छी तरह से पोछना चाहिए।
9. अयन को सुखाना चाहिए।
10. थन के छिद्र पर टिंचर आफ आयोडीन लगाकर इसे सुखाना चाहिए।
11. स्वच्छ परीक्षण नलियों बोतलों पर दाहिना अगला दाहिना पिछला, बाया अगला तथा बाँया पिछला का लेबल लगाना चाहिए।
12. विभिन्न थनों से दूध इन बोतलों में एकत्र करके तथा उन पर कार्क या ढक्कन लगाकर तुरन्त प्रयोगशाला परीक्षण हेतु भेज देना चाहिए। यदि परीक्षण करने में विलम्ब हो तो नमूनों को फ्रिज में रख देना चाहिए। नमनों हेतु 5 मि0ली0 दूध पर्याप्त होता है।

उपचार

थनैला रोग की चिकित्सा हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि रोग का प्रारम्भिक अवस्था में निदान करके रोग कारण का पता लगाकर उसकी चिकित्सा की जाए। ग्राम पाजीटिव जीवाणुअें का पेन्सलीन तथा ग्राम निगेटिव जीवाणुओं का स्ट्रेप्टोमाइसिन से उपचार किया जाता है। आरियोमाइसिन टेरामाइसिन तथा सल्फा औषधियों से भी रोग का उपचार किया जाता है।

जीवाणुनाषक औषधि का चुनाव औषधि संवेदनशीलता परीक्षण पर निर्भर करता है। *कारनीबैक्टीरियम पायोजेनीस* द्वारा उत्पन्न थनैला रोग को उपचार सल्फोनामाईड या किसी टेट्रासाईक्लीन द्वारा किया जाता है। इस उपचार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि थन से निस्वंर दूध भी निकाला जाय।

फफूँदीजनित थनैला की चिकित्सा हेतु आयोडीन तेल या मरथीयोलेट लाभप्रद रहता है। मरथीयोलेट के 1 प्रतिशत घोल की 20 मि०ली० मात्रा 2–3 दिनों तक देनी चाहिए। समस्त थनैला रोगियों में जिन्हें औषधि दी जाती है थन से दूध निकालना अत्यन्त आवश्यक होता है। आवश्यकता हेाने पर सायफन द्वारा भी दूध निकाला जा सकता है।

बचाव व रोकथाम

चूँकि थनैला रोग का कोई एक विशिष्ट कारक नहीं है तथा यह अनेकों जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है अतः थनैला रोग के प्रति टीका विकसित करना कठिन है लेकिन अब टीका इस रोग के लिए उपलब्ध है। थनैला रोग के नियत्रंण के लिए स्वच्छता संबंधी उपाय सर्वाधिक उपयोगी है। थनों को दूध दूहने के पूर्व तथा पश्चात् जीवाणु नाशक औषधियों से धोना चाहिए। थनैला के बचाव के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि पशुओं के थनों को चोंटों, घावों आदि से बचाना चाहिए। यदि थन या अयन पर चोट लगी हो तो उसका चिकित्सक द्वारा तुरन्त उपचार करवाना चाहिए। गोशालाओं में गायों की चेचक को भी नियंत्रित रखना चाहिए। थनैला के रोगियों का निदान करके उनका उपचार करना चाहिए। थनैला ग्रसित पशुओं का दूध बछियों या अन्य नवजात शिशुओं को नहीं पिलाना

चाहिए। पशुशालाओं में खूब स्वच्छता रखनी चाहिए। दूध दुहने वाली मशीन की भी खूब सफाई रखनी चाहिए। उत्तम प्रबन्ध व्यवस्था से थनैला को बहुत कम किया जा सकता है।

2. ढेलेदार त्वचा रोग (Lumpy Skin Disease): यह एक विषाणु जनित रोग है, जोकि चेचक के विषाणु से होता है। सीधे संपर्क के साथ ही रक्त चूस ने वाले कीडों एव किलनियों से यह फैल सकता है। बुखार, खानपान में कमी, उत्पत्ति में गिरावट, नाक, मुँह एवं आँखों से स्राव, पुरे शरीर में गांठ जैसी बन जाती हैं। यह गांठ गोल, कडी एवं उभरी हुई होती हैं, जोकि त्वचा एवं मांसपेशियों को प्रभावित कर सकती हैं। गाभिन पशओुं का गर्भपात हो सकता है, ऐसे पशु कई माह तक उत्पादन में नहीं आती हैं। साडों की प्रजनन क्षमता पर भी विपरीत असर पडता है। किलनियों एवं रक्त चूस ने वाले कीडों की रोकथाम करना आवश्यक है। साफ सफाई की उचित व्यवस्था, बीमार पशु को तुरन्त अलग कर देना चाहिए। एंटीबायोटिक का प्रयोग एवं घाव का समुचित उपचार करना चाहिए। सामान्यतः, इसमें पशु की मृत्यु नहीं होती।

3. तंत्रिका मस्तिष्क शोथ

यह मुख्य रूप से गाय के बछड़े एवं बछड़ियों का रोग है जो प्रायः हीमोफिलस नामक जीवाणु से होता है। इसमें मस्तिष्क की खून की नलियों में थक्के जम जाते हैं तथा मस्तिष्क व मस्तिष्क आवरण का शोथ होता है।

कारण

यह एक जीवाणु जनित रोग है जो अधिकांषत *हीमोफिलस सोमनस* नामक जीवाणु से होता है। वैसे तंत्रिका मस्तिष्क शोथ लिस्टिरियोसिस, कोलीवेसीलोसिस, पाश्चुरैलोसिस आदि रोगों में भी देखा गया है। कुचला जहर से भी कभी–कभी पशुओं में तंत्रिका मस्तिष्क शोथ हो जाता है।

लक्षण

तंत्रिका मस्तिष्क शोथ से प्रभावित बछडे–बछड़ियों में चक्कर आते हैं व शरीर में कम्पन होता है। बुखार 104–105^0 फा. तक होता है। इससे प्रभावित बछडे–बछड़ियां दूध नहीं पीते व सुस्त होकर जमीन पर बैठ जाते हैं। एक बार जमीन पर बैठने के बाद फिर वे उठ नहीं पाते क्योंकि तंत्रिकाओं के कमजोर होने से पैरों में अकड़न हो जाती है।

विकृति

प्रभावित बछडे–बछड़ियों के रक्त परीक्षण पर ज्ञात होता है कि इसमें न्यूट्रोफिल कोशिकाओं की संख्या काफी बढ़ गयी है। मस्तिष्क व मस्तिष्क आवरण में रक्त जमा होने से लाल/गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। ऐसे रोगी बछडे–बछड़ियों की आंते भी गहरे लाल रंग की होती हैं तथा तिल्ली का आकार भी बढ़ जाता है। मस्तिष्क द्रव में न्यूट्रोफिल की संख्या काफी बढ़ जाती है। जिसे प्लीयोसाइटोसिस कहते हैं।

निदान

रोगी पशु में इस रोग का निदान करना काफी कठिन होता है। लक्षणों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है। मस्तिष्क द्रव में सफेद रक्त कोशिकाओं की संख्या बढ़ी होती है। रक्त या मस्तिष्क द्रव से जीवाणु पृथक किये जा सकते हैं तथा उनकी पहचान की जा सकती है।

उपचार

इस रोग का उपचार लक्षण पता चलते ही एन्टीबायोटिक दवाओं से किया जा सकता है। साथ में दिमागी ताकत बढ़ाने वाली दवाऐं जैसे विटामिन–बी आदि दी जानी चाहिए।

बचाव व रोकथाम

रोग से बचाव के लिए बछडे–बछड़ियों को रखने की जगह पर सफाई रखनी चाहिए। फर्श को फिनाइल से साफ करना चाहिए। नवजात बछडे–बछड़ियों को ठन्ड से बचाने के उपाय करें तथा उन्हें भीगने से बचाऐं। दूध पिलाने के बर्तन साफ रखें व बछडों को इतनी दूर पर रखें ताकि वे एक दूसरे को नहीं चाटें।

4. न्यूमोनियां

न्यूमोनियां सभी प्रकार के पशुओं का एक गंभीर रोग है जो सर्दी लगने, भीगने अथवा कई प्रकार के जीवाणु, विषाणु, परजीवी व फफूँदी से हो सकता है तथा इसमें नांक से पानी गिरना, साँस लेने में कश्ट होना, फेफडे खराब होना आदि मुख्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। अधिकांशतः न्यूमोनियां छोटे बछडें/बछड़ियों में ही देखा गया है जिससे इनमें काफी मृत्युदर होती है।

कारण

1) जीवाणुः जैसे *पाष्चुरैला, ई. कोलाई* आदि
2) विषाणुः जैसे बी.एच.वी.–1, पी.आई.–3, आदि
3) *क्लेमाइडिया सिटेसियाई*
4) परजीवी जैसे *डिक्टायोकोलस वीवीपैरस*
5) *मायकोप्लाज्मा माइकोइड़स*
6) दवाऐं/जहर आदि से ड्रैन्चिग
7) फफूँदीः जैसे *एसपर्जीलस फ्यूमीगेटस*

न्यूमोनियां अधिकतर नवजात बछड़े/बछड़ियों में ठन्ड लगने से या भीगने से शुरू होता है जिसमें फिर विभिन्न प्रकार के जीवाणु/विषाणु फेफड़ों में क्षति करते हैं। बड़े पशुओं में फफूँदी जन्य या परजीवी जन्य न्यूमोनियां अधिक होता है मगर इसकी आवृति काफी कम होती है।

लक्षण

न्यूमोनियां से प्रभावित पशुओं में ज्वर आता है व उनकी नांक से पानी गिरता है। जानवर साँस लेने में कठिनाई महसूस करता है तथा कभी–कभी घड़–घड़ की आवाज या सीटी बजने की सी आवाज साँस लेने के साथ उत्पन्न होती है। कमजोरी के कारण प्रभावित पशु चारा–दाना खाना–पीना छोड़ देता है व जमीन पर बैठ जाता है। यदि समय से उपचार न किया जाय तो प्रभावित पशु की मृत्यु हो जाती है।

विकृति

न्यूमोनियां से मरे जानवरों के शव विच्छेदन पर पता चलता है कि उनके फेफडे अत्यन्त लाल या काले पड़ गये हैं। ऐसा इनमें खून जमने से होता है। छूने पर फेफड़े कड़े लगते हैं। स्वाँस नली में झाग युक्त या मवाद युक्त कभी–कभी खून से मिला पदार्थ मिलता है। लसिका गांठों की सूजन बढ़ जाती है। कई लम्बे समय तक चलने वाले न्यूमोनियां यथा परजीवी या फफूँदी जन्य में फेफड़ों में गांठें मिलती हैं। जिनमें गाढा चीज

जैसा पदार्थ भरा होता है। ड्रैन्चिग न्यूमोनियां में फेफड़ों में गलन के क्षेत्र मिलते हैं। नमी युक्त गैन्ग्रीन होने से फेफड़े हरे या काले रंग के दिखायी पडते हैं।

निदान

न्यूमोनियां का निदान लक्षणों व विकृति से किया जा सकता है। स्टैथस्कोप की मदद से स्वाँस में होने वाली आवाजों को सुनकर न्यूमोनियां का पता लगाया जा सकता है। इस रोग से प्रभावित पशु के रक्त का परीक्षण करने पर सफेद रक्त कोशिकाऐं बढ़ी हुई मिलती हैं।

उपचार

न्यूमोनियां का उपचार प्रतिजैविक दवाओं से किया जाता है। प्रभावित पशु को टैट्रासाइक्लिन, सिप्रोप्लोक्सिन या एम्पीसिलिन दवाऐं दी जाती हैं। साथ में कुछ ताकत की दवाऐं यथा विटामिन, आदि देनी चाहिए। प्रभावित पशु को ठन्ड से बचाने के लिए उपाय करने चाहिए।

बचाव व रोकथाम

पशुओं को ठन्ड से बचाना चाहिए क्योंकि ठन्ड लगने से न्यूमोनियां होने की संभावना काफी बढ़ जाती है। विशेष रूप से सर्दी के मौसम में पशु के ऊपर कपड़ा/कम्बल या टाट डाल देना चाहिए। पशुघर को गर्म करने के लिए लकड़ी/कोयला या हीटर प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार बरसात के मौसम में नवजात बछड़े/बछड़ियों को भीगने से बचायें। जब पशुघर की सफाई करते हैं तो प्रायः यह देखा गया है कि पानी के फव्वारे से पशु/बछड़े आदि भी भीग जाते हैं जिसको रोका जा सकता है। बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें व इनके चारे/दाने की व्यवस्था भी अलग से करें।

5. बछड़ों में दस्त (आंन्त्र शोथ एन्टराइटिस)

गोपशुओं के नवजात बछडें/बछड़ियों में प्रायः प्रथम एक मास की उम्र तक दस्त होने की शिकायत होती है जो कई प्रकार के विषाणु तथा जीवाणुओं से हो सकते हैं। इसमें प्रभावित बछड़ों में मरोड़ के साथ दस्त होते हैं। मल पतला व बार–बार होता है। पीछे पुट्ठों व पूँछ पर मल चिपका रहता है जिस पर मक्खियाँ भिन्न भिनाती हैं। अन्ततः रोगी बछड़े की मृत्यु हो जाती है।

कारण

इस रोग के कई कारण हो सकते हैं जो एकल रूप में तथा संयुक्त रूप में रोग उत्पन्न करते हैं।

1) रोटा विषाणु
2) कोरोना विषाणु
3) रियो विषाणु
4) *ईष्चैरिकिया कोलाई*
5) सालमोनैला जीवाणु

प्रायः ऐसा माना जाता है कि पहले विषाणु (रोटा या कोरोना) नवजात बछड़े/बछड़ियों की आंत की कोशिकाओं में क्षति करते हैं जिससे जीवाणुओं को उसमें घुसने का अवसर मिल जाता है व जीवाणु व इनके विश सभी मिलकर बीमारी की तीव्रता को बढ़ा देते है।

रोग व्यापकीयता

गोपशुओं के नवजात बछड़े/बछड़ियों में यह रोग अधिकांषतः देखा गया है। कई बार तो अधिक दूध पीने से भी बछड़े/बछड़ियाँ रोग ग्रसित हो जाते है। प्रायः ऐसा माना जाता है कि गन्दगी इस रोग को फैलाने में काफी सहायक होती है। फार्म पर सफाई न होने से, मक्खियों द्वारा, गन्दे बरतनों द्वारा या फिर गन्दे पानी आदि से यह रोग एक से दूसरे में शीघ्रता से फैलता है। बरसात व ठन्ड के दिनों में विषाणुजन्य तथा गर्मी के मौसम में जीवाणु जन्य दस्त अधिक देखे जाते हैं वैसे विषाणु व जीवाणु दोनों मिलकर अधिक क्षति पहुँचाते हैं। इसमें 40–50 प्रतिशत तक मृत्युदर हो सकती है। जो बछड़े बच जाते हैं उनमें वृद्धि दर कम हो जाती है व वे कमजोर रह जाते हैं।

लक्षण

इस बीमारी में बछड़ों को पीले रंग के, दुर्गन्ध युक्त पतले दस्त होते हैं। कभी–कभी मल के साथ–साथ गैस भी निकलती है। पतला गोबर पूँछ व नितम्ब पर चिपक जाता है जिस पर मक्ख्यां भिन भिनाती हैं। प्रभावित बछड़ा कमजोर हो जाता है तथा उसे भूख भी कम लगती है। रोगी बछड़े की मृत्यु निर्जलीकरण के कारण हो जाती है।

विकृति

मृत बछड़े का शव परीक्षण करने पर आँतें गहरे लाल रंग की दिखती हैं जिनमें रक्ताधिक्य हो जाता है। आँतों को काटकर खोलने से पता चलता है कि उनमें म्यूकस मिला फटा दूध या मल भरा है जिसमें कई बार रक्त भी मिला होता है। कभी–कभी आँत की दीवार की कोशिकाऐं भी मल में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त आँतों के बीच झिल्ली में उपस्थित लसिका गांठें सूज जाती हैं व रक्ताधिक्य के कारण कड़ी व मोटी हो जाती हैं।

निदान

इस रोग का निदान लक्षणों व विकृति के आधार पर किया जाता है। रोगी पशु के मल से जीवाणु/विषाणु पृथक किये जा सकते हैं या इसमें एन्टीजन की उपस्थिति पता की जा सकती है। इसके लिए एलिसा, डाट इम्यूनोबाइन्डिग ऐसे आदि परीक्षण किये जा सकते हैं।

उपचार

रोगी बछड़े/बछड़ियों का उपचार एन्टीबायोटिक दवा से किया जाता है। निर्जलीकरण की समस्या को ठीक करने के लिए ग्लूकोस सैलाइन को अन्तः षिरा विधि द्वारा दिया जाता है।

बचाव व रोकथाम

इससे बचाव के लिए फार्म पर सफाई रखें। संक्रमणहारी दवाओं से फर्श की सफाई करनी चाहिए। बछड़ों का दूरी पर रखें ताकि चाटकर एक से दूसरे से बीमारी न फैले।

6. दुग्ध ज्वर

यह मुख्य रूप से अधिक दूध देने वाली विदेशी या संकर नस्ल की गायों का रोग है जो गाय के ब्याने के कुछ समय बाद देखा जाता है। इसमें प्रभावित गाय में कम्पन होते हैं व बैठ जाती है। धीरे–धीरे उसे बेहोशी हो जाती है व मर जाती है। यह रोग कैलिषयम की कमी से होता है।

कारण

यह रोग कैल्शियम की कमी से होता है जिससे अधिक दूध देने वाली गायें अधिक

प्रभावित होती है। गर्भवती गायों में कैल्शियम भ्रूण की हड्डियों में चला जाता है तथा दूध अधिक देने के कारण दूध में भी कैल्शियम की काफी मात्रा आती है जिससे अचानक गाय की हड्डियों कमजोर हो जाती है।

रोग व्यापकीयता

यह रोग संक्रामक नहीं हैं अतः कहीं–कहीं एक–दो जानवरों में होता है। मुख्य रूप से अधिक दूध देने वाली संकर या विदेशी नस्ल की गायों में होता है। इन गायों में कैल्शियम की कमी हो जाती है जो रोग का कारण होता है। कैल्शियम गायों की हड्डियों से रक्त में आ जाता है जिससे गाय कमजोर हो जाती है व जमीन पर बैठ जाती है।

लक्षण

प्रभावित गाय में पहले उत्तेजना होती है व शरीर में कम्पन होता है। मांस–पेशियों में खिचाव होता है तथा गाय चल नहीं पाती। आंखें सूखने लगती हैं। प्रभावित गाय जमीन पर बैठ जाती है तथा लेट जाती हैं। गाय में सुस्ती होती है व सोने लगती है। कुछ समय बाद गाय बेहोश होने लगती है। कुछ समय पश्चात् रोग ग्रसित गाय की मृत्यु हो जाती है।

विकृति

इस रोग में कोई भी विकृति नहीं देखी गयी है।

निदान

इस रोग का निदान परिस्थितिजन्य साक्ष्य तथा लक्षणों के आधार पर किया जाता है। हाल की ब्यायी अधिक दूध देने वाली गाय में यह रोग होता है। निदान के लिए रोगी गाय का रक्त कैल्शियम के लिए परीक्षण किया जाता है। जिसमें इसकी कमी पायी जाती है तथा कैल्शियम का रक्त स्तर 6 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ली. रक्त तक गिर जाता है। जब यह 3 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ली. रक्त तक गिरता है तो पशु की मृत्यु हो जाती है।

उपचार

ऐसे रोगी पशु को तुरन्त कैल्ष्यिम रक्त वाहिनी के माध्यम से दे चाहिए। इसके लिए मायफैक्स दवा बहुत ही कारगर सिद्ध होती है। दवा देते ही रोगी पशु उठकर खड़ा हो जाता है।

बचाव व रोकथाम

यह रोग संक्रामक नहीं है अतः अन्य पशुओं में नही फैलतां मगर बचाव के लिए संकर या विदेशी नस्ल की गायों के दाने में कैल्शियम की मात्रा देते रहना चाहिए। विशेष रूप से जब वे गर्भवती हों तथा ब्याने वाली हों तो उन्हें अतिरिक्त कैल्शियम की आवश्यकता पड़ती है। इससे रोग ही उत्पन्न नहीं होगा।

7. अफारा

अफारा रोग में पशु के पेट में गैस भर जाती है। जिससे पेट फूल जाता है तथा उसका दबाव वक्षगुहा में फेफड़ों पर पड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप ष्वसन में बाधा आती है और जानवर मर जाता है। यह गोपशुओं तथा भैंस का मुख्य रोग है जो दाल वाली फसलों या हरा चारा ज्यादा खाने से होता है।

कारण

दाल वाली फसलों के खाने से पेट में गैस अधिक बनती है। हरे चारे जैसे बरसीम

आदि अधिक खाने से भी अफारा होता है। यदि किसी कारण यथा फोड़ा, कैन्सर आदि से खाने की नली में रूकावट हो तो गैस बाहर नहीं निकल पाती व पेट में ही एकत्रित होती रहती है।

लक्षण

इस रोग में पशु का पेट फूल जाता है। पेट में अधिक मात्रा में गैस भरी होती है। जिसे दबाने पर ढोल की तरह की आवाज करती है। रोगी जानवर को बेचेनी होती है व दर्द होता है जिससे वह बार–बार उठता बैठता है। रोगी पशु का मल मूत्र नहीं निकलता। पशु बार–बार चक्कर लगाता है व बेहोश होकर गिर पड़ता है।

विकृति

पशु का पेट फूला रहता है जिसमें काफी मात्रा में गैस भरी होती है। मरे पशु का शव परीक्षण करने पर उदर के सभी अंगों पर रक्त स्राव के चिन्ह मिलते हैं। फेफड़े सिकुड जाते हैं। रक्त काला चाकलेट जैसा हो जाता है। अधिक गैस भरी होने से कई बार आंतें, पेट, डायाफ्राम फट जाते हैं।

निदान

इस रोग का निदान लक्षणों के आधार पर किया जाता है। पेट में अत्यधिक गैस भरी होती है जिससे बजाने पर ढोल जैसी आवाज निकलती है।

उपचार

उपचार के लिए पशु को तेल पिलाया जाता है जिससे गैस बनने में कमी आती है। टिम्पोल दवा दी जाती है तथा अधिक गैस को पेट में सुई चुभोकर निकाला जा सकता है जिससे रोगी पशु को तत्काल फायदा होता है। ताकत की दवाऐं दी जा सकती हैं तथा खाने को चारा–दाना कम देना चाहिए ताकि अफारा दुबारा जल्दी न हो।

बचाव व रोकथाम

पशु को कभी भी अधिक मात्रा में हरा चारा तथा दाना नहीं देना चाहिए। विशेष रूप से चना, ग्वार आदि दाने अधिक गैस बनाते हैं। इसी प्रकार हरी बरसीम या रिजका भी बहुत गैस बनाता है। अतः ये चीजें खाने को सीमित मात्रा में ही देना चाहिए।

8. लहू मूतना (हिमेचूरिया)

लहू मूतना या हिमेचूरिया गायों का एक प्रमुख रोग है जो पहाड़ी क्षेत्रों में अधिकांषतः देखा जाता है। यह एक प्रकार की घास जिसे 'ब्रेकन फर्न' कहते हैं से होता है। इस रोग में प्रभावित पशु के पेशाब में खून आता है तथा मूत्राशय में केन्सर बन जाता है।

कारण

वैसे तो पेशाब में खून आने के कई कारण हो सकते हैं जैसे गुर्दे के रोग, पथरी, केन्सर, परजीवी, या फिर गुर्दों का संक्रमण। मगर इसका एक मुख्य कारण 'ब्रेकन फर्न' नाम की घास है जो पहाड़ी क्षेत्रों यथा उत्तरांचल के कुमाँऊ व गढ़वाल में पायी जाती है। यह घास चारे के साथ ही कट जाती है व पशु शरीर में पहुँचती है। पशुओं के जंगल में चरने से भी यह पशु में रोग उत्पन्न कर सकती है। इस घास में टाक्वीलोसाइड तथा थायमिनेज नामक रसायन होते हैं जो शरीर पर घातक प्रभाव डालते हैं व मूत्राशय का केन्सर उत्पन्न करते हैं।

लक्षण

इस रोग के प्रारम्भ में पेशाब में थोड़ा–थोड़ा रक्त आता है जो बाद में इतना बढ़ जाता है कि पेशाब बिल्कुल गहरे लाल रंग का हो जाता है। ऐसे पेशाब को यदि कुछ देर किसी बर्तन में रख दिया जाय तो रक्त कोशिकाऐं नीचे बैठ जाती हैं तथा पेशाब साफ रंग का ऊपर रह जाता है। पशु कमजोर होता जाता है व सूखने लगता है। अच्छी खासी दूध देने वाली गाय 3–4 महीने में सूखकर कर काँटा हो जाती है व मर जाती है।

विकृति

पेशाब में खून आना एक मुख्य विकृति है। मरे जानवर का शव परीक्षण करने पर पता चलता है कि मूत्राशय में केन्सर का फोड़ा बना है जिससे खून निकलता है। गुर्दे, जिगर, तिल्ली आदि पर रक्त स्राव के चिन्ह पाये जाते हैं। सूक्ष्मदर्शी द्वारा पेशाब का परीक्षण करने पर उसमें लाल रक्त कोशिकाओं की बढ़ी संख्या मिलती है तथा मूत्राशय में ट्रांजीषनल कारसीनोमा के क्षत स्थल दिखायी देते हैं।

निदान

इस रोग का निदान पेशाब का परीक्षण करके किया जा सकता है। पेशाब का रंग लाल (गहरा–चमकीला लाल) होता है। पेशाब को परखनली में थोडी देर तक रख देने पर खून की कोशिकाऐं नीचे बैठ जाती हैं तथा ऊपर साफ पेशाब रह जाता है। शीघ्र परीक्षण के लिए पेशाब को परखनली में लेकर सेन्ट्रीफ्यूज कर दिया जाता है जिससे रक्त कोशिकाऐं नीचे बैठ जाती है। इससे हीमोग्लोविन यूरिया से भी अन्तर हो जाता है क्योंकि सेन्ट्रीफ्यूज करने के बाद उसमें ऊपर का रंग समान लाल बना रहता है जबकि इसमें साफ हो जाता है।

उपचार

इस रोग के उपचार के लिए 5 ग्राम डी–ब्यूटाइल एल्कोहल 50 मि०ली० जैतून के तेल में, घोलकर 5 समान मात्राऐं त्वचा के नीचे इन्जैक्शन द्वारा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त मूत्राशय को 1–3 प्रतिशत एक्रिडिन घोल या 2 प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट घोल या 1 प्रतिशत फिटकरी के घोल से धो देना चाहिए।

बचाव व रोकथाम

बचाव के लिए खेतों व चरागाहों से 'ब्रेकन फर्न' घास को हटा देना चाहिए। चारें में घास की पहचान कर इसे चारे से अलग करना चाहिए जानवरों को यह घास चारे में न जाय इस बात की पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। ब्रेकन फर्न घास को खेत में खत्म करने के लिए 90–100 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए।

9. गठिया बा रोग

गठिया बा रोग मुख्यतयाः भैंस में होता है। इस रोग में पशु पीछे की टांगों से लंगड़ाकर चलता है व झटके से टांग उठाता है। पेशाब में कई बार हीमोग्लोविन के अंष आते हैं। यह रोग मुख्य रूप से चारे–दाने में फास्फोरस की कमी से होता है।

कारण

चारे–दाने में फास्फोरस की कमी इस रोग का मुख्य कारण है। आजकल अधिक गेहूँ की पैदावार लेने के लिए किसान यूरिया खाद का प्रयोग बहुतायत से करते हैं जिसके

परिणामस्वरूप जमीन में फास्फोरस की कमी हो गयी है। यह कमी सभी चारों व अनाजों में भी रहती है जिससे पशुओं में भी फास्फोरस कम हो जाता है। जो इस रोग का कारण बनता है।

लक्षण

गठिया बा या रूमेटिज्म लाइक सिन्ड्रोम में पशु पिछली टांगों से लगंडाकर चलता है। चलते समय पिछली टांग को झटककर आगे बढाता है। चलने तथा उठने–बैठने में प्रभावित पशु को दर्द होता है। इससे पशु का उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। विशेषरूप से भैंसे भार ढोने के काम आते हैं मगर पिछली टांगों में लंगडाहट की वजह से वे कार्य को सही नहीं कर पाते।

विकृति

इस रोग से मृत्यु नहीं होती मगर उत्पादन पर काफी असर पड़ता है। विकृति में यदाकदा जोड़ों की सूजन या ऐंठन देखने को मिलती है। कभी–कभी प्रभावित टांग सूखने लगती है। लगंडाहट के कारण यदि पशु गिर जाय तो चोट आ जाती है। यदि प्रभावित पशु के रक्त के नमूने परीक्षण किये जांय तो उनमें फास्फोरस की कमी मिलती है। साथ में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या भी कम होती है।

निदान

इस रोग की पहचान लक्षणों से की जाती हैं। प्रभावित पशु पिछली टांगों से लंगड़ाकर चलता है तथा पूर्ण निदान के लिए पशु के रक्त की जांच फास्फोरस के लिए की जाती है जो इनमें कम मिलता है। यदि उस क्षेत्र के मिट्टी, चारे व दाने की भी फास्फोरस के लिए जांच की जाय तो उनमें भी फास्फोरस का स्तर काफी कम मिलता है।

उपचार

इस रोग का उपचार बहुत ही सरल है। प्रभावित पशु को मिनरल मिक्चर देना चाहिए। पशु को सोडियम एसिड फास्फेट के या टोनोफास्फॉन के टीके लगाने से लक्षण तुरन्त दुर हो जाते हैं व रोगी पशु को तत्काल आराम आ जाता है। दीर्घकालीन चिकित्सा के दाने में मिनरल मिक्चर अवश्य मिलाते रहना चाहिए।

बचाव व रोकथाम

रोग से बचाव के लिए अपने पशुओं को मिनरल मिक्चर दाने के साथ हमेशा देते रहें। यह रोग न हो इसके लिए फसलों में फास्फेट युक्त रसायनिक या प्राकृतिक खादों का प्रयोग करना चाहिए ताकि जमीन में ही फास्फोरस तत्व की कमी न हो व पशुओं में यह रोग न हो।

10. गोपषुओं के कैंन्सर

गोपशुओं में मुख्य रूप से सींग का कैंन्सर होता है जिसे स्क्वामस सैल कारसिनोमा कहते हैं। इसके अलावा त्वचा व थनों पर पेपीलोमा तथा जिगर में पित्तनली का कैंन्सर प्रमुख हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में मूत्राशय का कैंन्सर ब्रेकन फर्न के कारण होता देखा गया है।

कारण

हाँलंकि पशुओं में कैंन्सर का कोई निश्चित कारण नहीं है। गोपशुओं में सींग का कैंन्सर धूप में उपस्थित पराबैंगनी किरणों के प्रभाव से होता है। मुख्य रूप से यह बैलों में देखा गया जिनको बधिया कर दिया जाता है। अतः कुछ वैज्ञानिक इसे हार्मोन में आयी

गड़बड़ी का परिणाम मानते हैं। हमारे यहाँ बैलों के सीगों को पेन्ट या काले तेल से रंग दिया जाता है। यह रंगाई कैंन्सर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है क्योंकि इनमें कैंन्सर बनाने वाले रसायन रहते हैं। सीगों के पास रस्सी या जूआ बंधने के कारण भी वहां लगातार काफी समय तक निंरतर दबाव/खुरचन आदि होती रहती है जो धीरे–धीरे कैंन्सर का रूप ले लेती है। थनों तथा त्वचा पर मस्से या पेपीलोमा एक प्रकार के विषाणु के प्रकोप से होते हैं। जिगर के तथा पित्तनली के कैंन्सर में अफलाटॉक्सिन तथा यकृत कृमि फेसियोला महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। जबकि मूत्राशय का कैंन्सर ब्रेकन फर्न नामक घास से पहाड़ी क्षेत्रों के गोपशुओं में देखा गया है।

लक्षण

कैंन्सर से प्रभावित जानवर कमजोर होता जाता है व सूखता रहता है। फलस्वरूप प्रभावित पशु का वजन कम हो जाता है। यदि सींग का कैंन्सर हो तो सींग टूट जाता है या कमजोर होकर गिर पड़ता है। वहाँ से खून बहता है व सींग की जड़ में कमजोर किस्म के ऊतक जो कैन्सर के होते हैं काफी बढ़ जाते हैं। जानवर का उत्पादन कम हो जाता है। चल–फिर नहीं पाता तथा कमजोर होकर एक तरफ जमीन पर गिर पड़ता है। जिगर के कैंन्सर में प्रभावित पशु को दस्त आते हैं व कुछ दिन में ही जानवर इतना कमजोर हो जाता है कि खडा नहीं रह पाता। थनों या त्वचा पर मस्से जैसे पेपीलोमा सामान्यतयाः कोई खास हानिकारक प्रभाव नहीं डालते। यदि थन के अग्र भाग में हैं तो दूध निकालने में परेशानी करते हैं।

विकृति

सींग का टूटना, सींग की जड़ में मवाद युक्त ऊतकों का बढ़ना, वहाँ से खून निकलना, मरे जानवर का माँस व भार कम होना, कैंन्सर की गांठें अन्य अंगों यथा लसिका ग्रन्थि, फेफडे, जिगर, तिल्ली आदि में बनना मुख्य क्षत स्थल होते हैं। सामान्यतयाः कैंन्सर की पहचान सूक्ष्मदर्शी द्वारा ऊतक/कोशिकाऐं देखकर की जाती है जिसके लिए सूक्ष्म विकृति विज्ञान की आवश्यकता होती है। अन्य प्रकार के कैंन्सर में भी विभिन्न अंगों में गांठे बनती हैं जिनका सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन करने पर ही कैंन्सर का पता चलता है।

निदान

लक्षण तथा विकृति के आधार पर निदान किया जाता है। पूर्ण निदान के लिए सूक्ष्म विकृति विज्ञान की आवश्यकता होती है। जिससे पता चलता है कि किस प्रकार का और कितना खतरनाक कैंन्सर है।

उपचार

शल्य चिकित्सा द्वारा कैंन्सर की गांठ को शरीर से निकाल दिया जाता है। बाद में रसायन चिकित्सा या रेडियोचिकित्सा की जाती है।

बचाव व रोकथाम

इनकी आवृति बहुत कम है तथा किसी निश्चित कारण का भी पता नहीं है। अतः कोई खास बचाव व नियन्त्रण के उपाय नहीं सुझाये जा सकते। फिर भी जिगर के कीड़ों का बचाव करना चाहिए।

11. लैक्टिक अम्लीयता (Laetice Acidtion)

यह एक पाचन की समस्या है जिसमें यदि गोवंश अधिक मात्रा में कारर्बोहाइड्रेट खा लें तो उत्पन्न होती है। प्रायरू ऐसा देखा गया है कि गौशाला में लोग गुड़ या रोटी या आटे मो लोई खिलाते हैं। कारर्बोहाइड्रोट ज्यादा मात्रा में खा लेने से गोवंश के रुमैन में अम्लीयता (एण्टीडेसिट) हो जाती है। और रुमैन का पीएच 5.0 से भी कम हो जाता है। जबकि सामान्यतरू रुमैन का पीएच 6.5–7.0 के बीच रहता है। रुमैन में अम्लीयता के कारण वहां के जीवों पर प्रभाव पड़ता है और ये मरने लगे है फलस्वरुप पाचन प्रभावित होता हैं। लैक्टिक एसिड़ रुमैन से अवशोषित होकर शरीर में फैल जाता है तथा मृत्यु हो जाती है।

कारण

- गुड़
- गैहूं जौ का आटा, रोटी, लोई
- घरे पर/दावत का बचा खाना जिसमें मीठा या गेहूँ से बनी वस्तुऐं हों।

लक्षण

- गोवंश चारा–दाना खाना कम कर देतें हैं तथा बीमारी की बढ़ी हुई अवस्था में खाना बन्द कर देते हैं।
- गोवंश का वजन कम होने लगता है।
- दस्त होते हैं।
- बुखार होता है
- गोवंश सुस्त हो जाते हैं, यदि समय रहते उपचार न किया जाय तो गोवंश की मृत्यु हो जाती है।

उपचार एवं बचाव

- एसिडोसिस पता चलते ही कार्वोहाइड्रेट डाइट से बन्द कर देना चाहिए।
- शरीर को एलकलाइन करने के लिए सोडियम बाई कारर्बोनेट से उपचार किया जा सकता है।
- रुमैन की टोनिसिटी बढ़ाने हेतु औषधियां दी जा सकती है।
- इस रोग से बचाव के लिए गोवंश को एक दिन में आधा से एक किलो आधिक कार्बोहाइड्रेट वाली डाइट नही देना चाहिए।

संन्दर्भ ग्रंथ

1. चौहान रामस्वरूप सिंह. 1999. मानव को रोग सौंपते पशु. कपीश प्रकाशन, हिसार. पृ. 184.
2. चौहान रामस्वरूप सिंह. 2000. पशु–पक्षियों से मनुष्य में प्राणिरूजा रोग (जूनोसिस). भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली. पृ. 133.
3. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2004. गोवंश एवं मानव स्वास्थ्य,. गो–चिकित्सा समिति, पन्तनगर. पृ. 218.
4. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2005. पशुओं में बीमारी की जाँचः कब, क्यों और कैसे करायें. भारतीय पशु–चिकित्सा अनुसंधान, इज्जतनगर. पृ. 26.
5. सिन्हा धर्मेन्द्र कुमार, गर्ग अनिल कुमार एवं **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2007. गोवंश एवं पंचगव्य. भारतीय पशु–चिकित्सा अनुसंधान, इज्जतनगर. पृ. 128.
6. चौहान रामस्वरूप सिंह एवं लालकृष्ण. 2007. पशुओं के रोग एवं रोकथाम. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली. पृ. 248.
7. चन्द्रा दिनेश एवं चौहान रामस्वरूप सिंह (2008). परजीवी रोग निदान. भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर पृ. 68.
8. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2010. भारत में गोवंश जैव विविधता एवं उसकी उपयोगिता. जैव प्रौद्योगिक संस्थान, पटवाडांगर, नैनीताल.
9. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2010. गौशालाओं का वैज्ञानिकरूप से प्रबन्धन. किसान गोष्ठी, जैव प्रौद्योगिक संस्थान, पटवाडांगर, नैनीताल.
10. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2010. कीटनाशकों के हानिकारक प्रभाव एवं पंचगव्य द्वारा उनका निराकरण. जैव प्रौद्योगिक संस्थान, पटवाडांगर, नैनीताल.
11. चौहान रामस्वरूप सिंह 2003. पंचगव्य से रोगप्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि। ''प्रकृति–2003'' स्मारिका. *पृ0 9.*
12. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2000. पंचगव्य द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा. *खेती संसार,* **3**: 21–23.
13. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2002. पंचगव्यः देसी गाय से प्राप्त एक अद्भुत औषधि. *पशुधन,* **17**(3): 5–7.
14. **चौहान रामस्वरूप सिंह** एवं शर्मा, रामजीत. 2002. देशी तथा विदेशी गायों की उपयोगिता का एक तुलनात्मक विवेचन. *पंचगव्य विज्ञान,* (सम्पादकः वैद्य मुकेश शर्मा) पृष्ठ 31–39.
15. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2004. देशी गाय के मूत्र से रोगप्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि. *किसान कुल,* **24**(9): 22–23.
16. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2004. गौशालाओं में बीमारियों पर नियंत्रण ऐसे पायें. *द इण्डियन काऊ,* **2**: 57–63.
17. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2005. गौशाला में गोवंश का उचित एवं वैज्ञानिक प्रबन्धन. *''गौ धन्या'' स्मारिका, गौपाष्टमी पर्व–2005, बरेली (उ0प्र0), पृ.* 24–26.
18. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2005. गोवंश के मुख्य रोग एवं उनकी रोकथाम. *''गौ धन्या'' स्मारिका, गौपाष्टमी पर्व–2005, बरेली (उ0प्र0), पृ.* 27–31.
19. **चौहान रामस्वरूप सिंह**. 2007. भारत में गोवंश जैव विविधता एवं उसकी उपयोगिता. *स्मारिका ''गौविज्ञान जैविक खेती एवं पंचगव्य संगोष्ठी''. भोपाल (म.प्र.),* अगस्त 17–19, 2007. पृ. 31–45.

सहिवाल

गिर

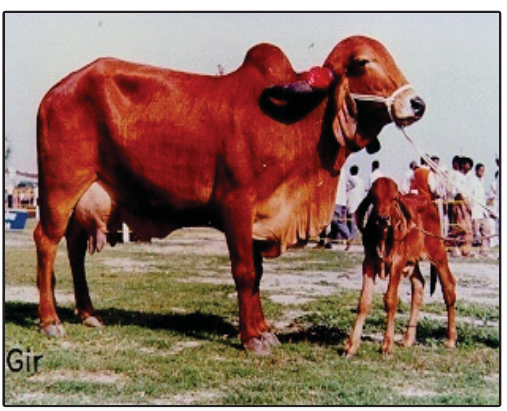

लाल सिंधी

तारपारकर

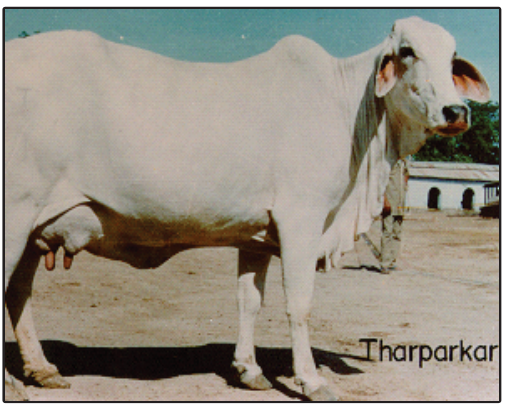

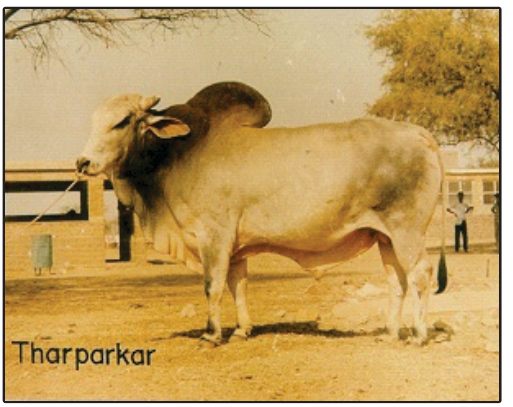

राठी

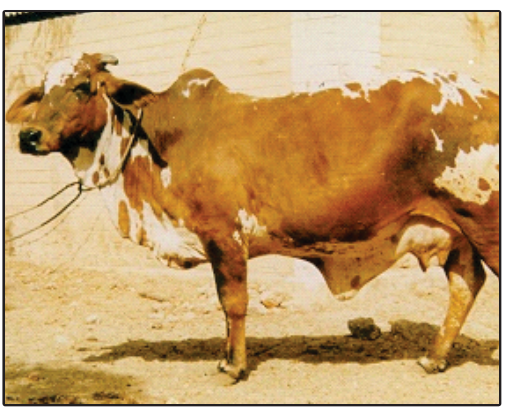

देओनी

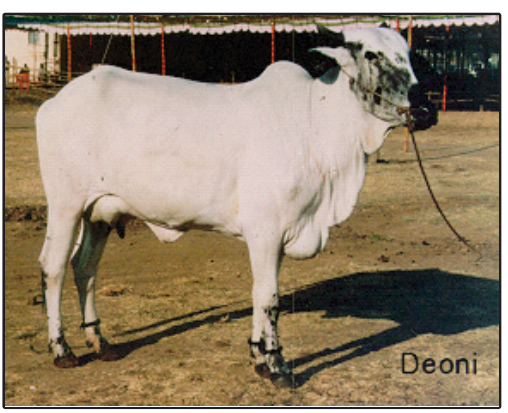

गाओलाओ

हरियाणा

कांकरेजी

मेवारी

ओंगोल

डांगी

कृष्णा घाटी

अमृतमहली

बचौरी

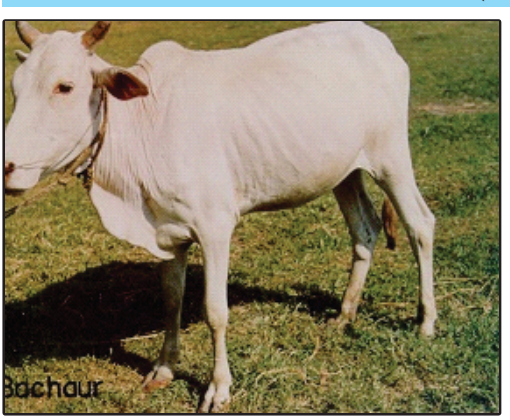

बरगुर

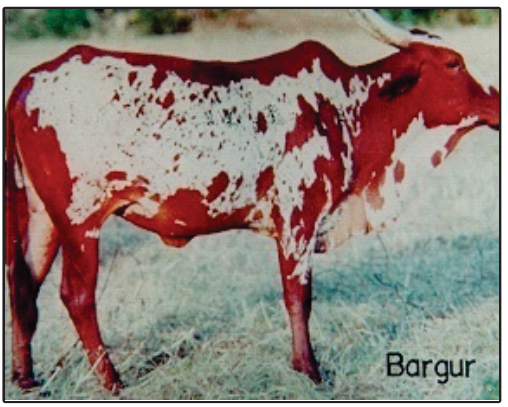

हल्लीकरी

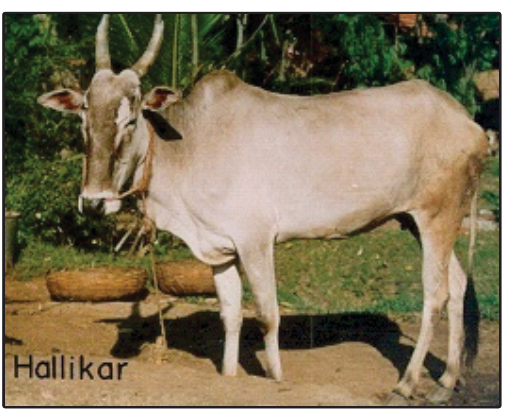

कंगायम

केंकथा

खेरीगढ़

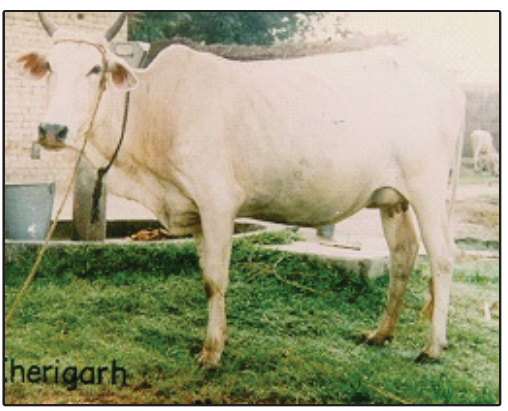

खिलारी

मालवीर

नागौरी

निमारिक

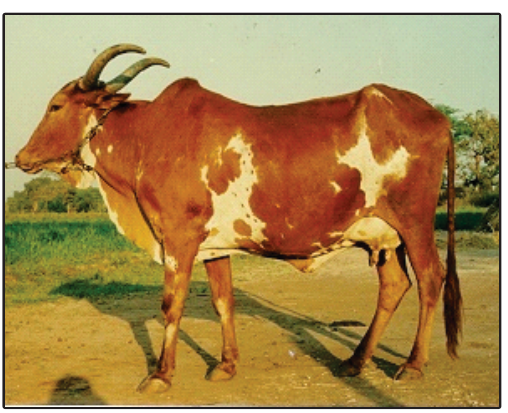

पोंवार

पुंगनुर

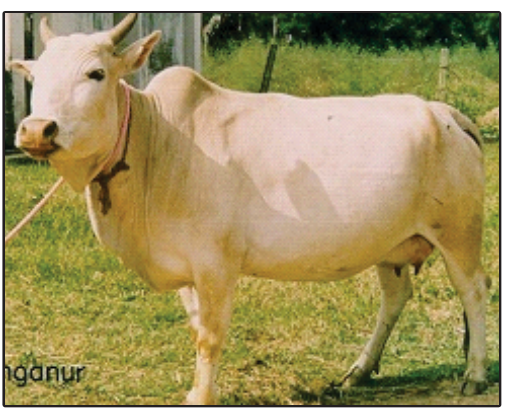

लाल कंधारी

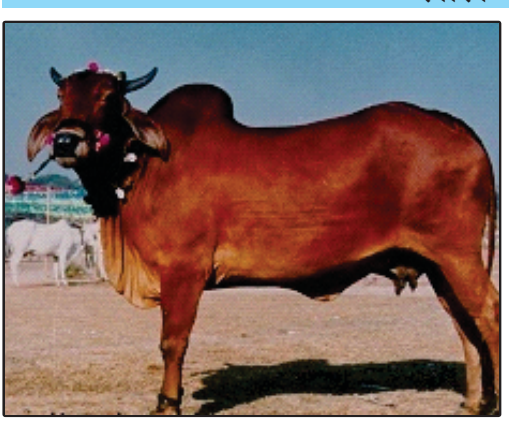

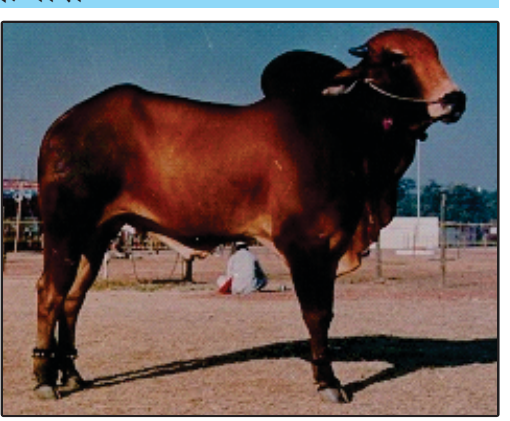

सिर्री

अम्ब्लाचेरी

वेचुरू

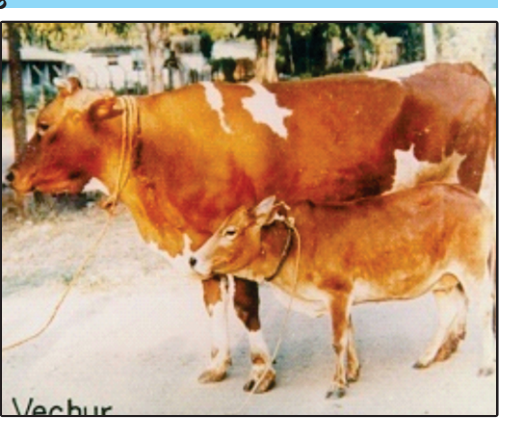

मोटु

घुमुसरी

बिंझारपुरी

खारियर

पुलिकुलम मवेशी

कोसालि

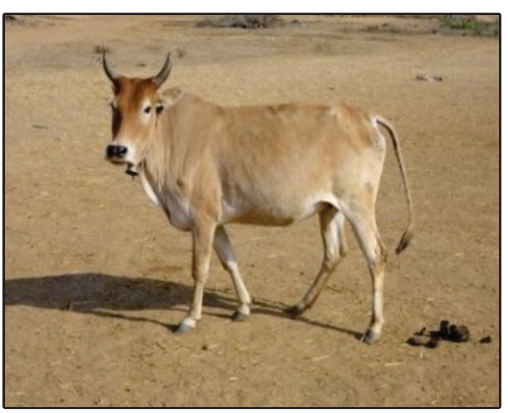

मलनाड गिद्दा

लद्दाखी

कोंकण कपिला

बद्री गाय